नेपाली और हिन्दी भक्ति-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

नेपाली और हिन्दी भक्ति-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

(पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय

भारतीय ग्रन्थ निकेतन

१३३ लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-६

सूची-पत्रक

पाण्डेय, मथुरादत्त
नेपाली और हिन्दी भक्ति काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम संस्करण
दिल्ली, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, १९७०

३१८ पृ २३ सेंमी

891 4309 0152 भा ग्र नि २८

प्रकाशक भारतीय ग्रन्थ निकेतन
१३३ लाजपतराय मार्केट, दिल्ली ६
आवरण शिल्पी पाल बन्धु
प्रथम संस्करण १९७०
मूल्य
मुद्रक विकास आर्ट प्रिंटर्स
रामनगर लोनी रोड, शाहदरा
दिल्ली ३२

NEPALI AND HINDI COMPARATIVE STUDY OF THEIR DEVOTIONAL POETRY

समर्पण

कृषक-कन्या, कृषक-पत्नी तथा कृषक-प्रसू
होकर जो आजीवन वाच्यार्थ मे
'गवेषणा'
करती रही उस श्रम-स्नेह-सौजन्य
की प्रतिमा दिवगत
मा
को
स सकोच
समर्पित

—मथुरादत्त पाण्डेय

पूर्व-पीठिका

रजत हिमानी के अधोभाग में धूपछाँही साड़ी की तरह फैली नेपाल की धरती समस्त आर्यावर्त की शोभा है—इसे कोई कदाचित् ही अस्वीकार करे। आधुनिक चकाचौंध से खिन्न मानव मन को लुभाने के लिए यहाँ कितने ही अकृत्रिम साधन हैं। शाद्वल वन हैं, क्षीरसलिला नदियाँ हैं, कलकूजित विहग हैं, चपलगति मृग हैं और इनके बीच बिखरा हुआ है मुग्ध मानव-सौंदर्य।

यहाँ मानवार्जित वैभव का एकान्त अभाव हो—यह बात नहीं है। उसकी एक दिशा तो सीमा पार कर चुकी है। नेपाल के मठ मंदिर, चैत्य और विहार यहाँ के मनुष्यों की धर्म परायणता का उद्घाटन किए बिना नहीं रहते। नग्न प्रकृति के अन्तराल स्थित विरतसाधन मानव किस तरह धार्मिक स्थानों का वह भव्य रूप दे पाया—यह जिज्ञासा नेपाल की प्रधान नगरी काठमाडू में पदार्पण करते ही मेरे मन में जाग्रत हो उठी। मैंने कभी तन्त्र शास्त्र में पढ़ा था कि नेपाल वाममार्ग का मूल स्थान है[1] और उसका प्रत्यक्ष रूप मंदिरों और महलों में काष्ठ प्रस्तरों द्वारा युगनद्ध पुत्तलियों को जो देखा तो नेपाल की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा को जानने के लिए मैं और भी उत्कण्ठित हो उठा। हिन्दी का सेवक होने के नाते उसकी बहिन नेपाली भाषा के साहित्य के अध्ययन का चाव भी कम नहीं था और यह जानकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ कि नेपाली साहित्य का प्रारम्भ भक्ति और धर्म की रचनाओं से होता है। उनका अध्ययन करते हुए मेरी पूर्व जिज्ञासा की शान्ति की भी सहज सम्भावना थी। अध्ययन प्रारम्भ हुआ। ऐसा लगा जैसे प्रादेशिक वैशिष्ट्य के साथ नेपाली और हिन्दी भक्तिकाव्य की एक ही आत्मा है। तभी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की एक धूमिल मानस प्रतिमा बनी जिसका पाँच चार सालों के सतत प्रयत्न के बाद आज यह रूप सामने आ पाया है।

नेपाल उत्तर प्रदेश और बिहार के उत्तर काली नदी से पूर्व और मेची से पश्चिम में बसा है। यह एक रमणीक भूखण्ड है। इसका क्षेत्रफल ६५००० वर्ग-

---

१ नेपाले तु इकारः स्याद् गुह्ये तन्त्रे तु पार्वति।
तस्माद्वामस्य मार्गस्य मूलस्थानं तदुच्यते।
—मेरुतन्त्र पृ० २३२ श्लोक सं० ८१८।

मील है जिसमे लगभग ८६,०० ००० लोग रहते हैं। भौगोलिक दृष्टि से नेपाल के चार विभाग किए जा सकते हैं।

(१) हिमाच्छादित हिमालय—जिसमे एवरेस्ट (सागरमाथा) कंचन जंघा मकालु धौलागिरि आदि हिमशिखर इसके प्रहरी के रूप मे उत्तर दिशा मे खडे है। इसी मे आलाइचुड हुटिया बाडवा फलाकटाड, कुती, रसुवा साल्पू, मुस्ताड आदि घाटियाँ हैं जिनमे तामाड मुर्मी और शेर्पा लोग रहा करते हैं।

(२) हरा भरा पर्वत प्रदेश—यह नेपाली संस्कृति का केन्द्र है। समुद्र की सतह से इसकी ऊँचाई ३००० से १२००० फीट तक है। ईलाम, धनकुट्टा भोजपुर, ओखलढुगा पालचोक नुवाकोट गोर्खा पोखरा मीरकोट पाल्पा तानसेन प्यूठान दलेख डोटी, बतडी जुमला आदि नेपाल के प्रमुख स्थान इसी भाग मे स्थित हैं। इनके मूल निवासी हैं—किराती (राई लिम्बू) मगराती या मगर गुरुड।

(३) तराई—भारत से लगा नेपाल का यह तराई भाग पूर्व से लेकर पश्चिम तक फैला है। इसकी ऊचाई समुद्रतल से १५०० २००० फीट है। विराट नगर राजविराज जलेश्वर मगलवा नौर बीरगज बुटवल चितौन दाड देउखुरी, कलाली, कंचनपुर आदि इसके प्रमुख स्थान हैं। इसके निवासियो मे थारू और धिमाल आदिवासी माने जाते हैं।

(४) चारभञ्ज्याड—इसे नेपाल खाल्डो भी कहते हैं। यह चारो ओर पहाडो से घिरी अत्यधिक उवर उपत्यका है। इसकी ऊचाई समुद्रतल से ४७०० फीट तक है। इसके चार प्रमुख स्थान है। १—काठमाडू—यह कभी कांतिपुर और मजुपत्तनभी पुकारा जाता रहा है। २—ललितपुर—इसका पुराना नाम ललित पत्तन था। पत्तन ही बिगड कर आजकल पाटन कहा जाता है। ३—भक्तपुर—यह आजकल भादगाऊ के नाम से विख्यात है जो नेपाली कला का घर माना जाता है। ४—कीर्तिपुर—आजकल यहा त्रिभुवन विश्वविद्यालय है। यहाँ के निवासियो का अतीत वीरतापूर्ण रहा है। चारभञ्ज्याड के प्रमुख निवासी नेवार हैं।

विक्रमीय १६वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे गोरखाधीश पृथ्वीनारायणशाह और उनके उत्तराधिकारियो ने नेपाल के उक्त विभागो के माडलिक राजाओ को परास्त कर बहन्नपाल की नींव डाली। पूर्व के किरात पश्चिम के मगरात उत्तर के तामाङ्मुर्मी दक्षिण के थारू धिमाल और चारभञ्ज्याङ के नेवार एक राजनीतिक व्यवस्था के भीतर हो गये। नेपाल का नव निर्माण हुआ। वह एक राष्ट्र बना और राष्ट्रभाषा बनी नेपाली जो पहले गोर्खाली पर्वतिया या खसकुरा कही जाती थी। जब तक नेपाल चार भञ्ज्याङ और उसका परिवेशमात्र था तब तक नेपाली भाषा [illegible] रहा। आज भी उसे बहुत से लोग नेपाल भाषा के

नाम से पुकारने हैं किन्तु नेपाल के वहत्तर होने पर नेवारी के लिए जो केवल उपत्यका भाग में ही बोली जाती है उसका प्रयोग असगत प्रतीत हुआ। फलत खसकुरा या पर्वतिया जो वहत्तर भू भाग की ही नहा, शासकवर्ग की भाषा थी, नेपाली कही जाने लगी। आज नेपाली का अर्थ या तो नेपाल निवासी होना है या गोर्खाली या खसकुरा भाषा जो आर्य भाषा परिवार की एक भाषा है और हिन्दी से अत्यधिक सम्बद्ध है।

नेपाली का साहित्य विक्रम की १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जन्म लेता है और जैसा कि पहले कहा जा चुका है—इसका प्रारम्भ भक्ति रचनाओं से होता है। इन्दिरस विद्यारण्यकेशरी वसन्त शर्मा यदुनाथ पोखर्याल रघुनाथ भानुभक्त हरिलाल, वैयाकरण नेपाल, भीमबहादुर राणा, पतंजलि गजुर्याल राजीव लोचन जोशी और इन्दिरालाल पाल्याली नेपाली साहित्य के प्रारम्भिक कवि हैं। इनसे पूर्व सुवानन्द दास्तिवल्लभ अर्ज्याल तथा उदयानन्द अर्ज्याल के नाम लिए जाते हैं किन्तु इनकी कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। जो कुछ टूटी फूटी रचनाएँ मिली हैं उनके आधार पर अवश्य ही ये ईश्वर भक्त नहीं, राजभक्त कवि सिद्ध होते हैं।

नेपाली काव्य का माध्यमिक काल भी प्रधानत भक्तिपरक है। मोतीराम भट्ट हरिहर सामिछाने वीरबहादुर मल्ल, वीरेन्द्र केसरी अर्ज्याल, गोपीनाथ लोहनी शिखरनाथ सुवेदी केदारनाथ खतिवडा रमाकान्त बराल होमनाथ खतिवडा, जगन्नाथ सेढाई चिरंजीवी पौड्याल भुवनप्रसाद ढुंगल कृष्णप्रसाद रेग्मी, दल बहादुर बार्दी बाणीविलास पाडे, रेवती रमण न्यौपाने केदार शमशेर थापा, मोजराज भट्टराय, भक्तिकुमारी राणा हरदयाल सिंह रुमाल कृष्णनाथ सिग्देल, रत्नशर्मा रिजाल, वजनाथ सेढाई, वद्रीदास पूर्णप्रसाद, मानदिलदास भजनाथ रहरसिंह राई, शम्भुप्रसाद ढुंगल पद्मप्रसाद ढुंगाना आदि कितने ही कवि ऐसे हैं जिन्होंने या तो सिर्फ ही भक्ति रचनाएँ या फिर अन्य रचनाओं के साथ-साथ भक्ति रचनाएं भी कीं।

आधुनिक काल मे जहा एक ओर नवीन काव्य को लेखनाथ पौड्याल धरणीधर कोइराला लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, बालकृष्ण सम सोमनाथ शर्मा, भवानी भिक्षु माधवप्रसाद घिमिरे केशरमान व्यथित एम० बी० शाह भीमनिधि तिवारी वासुशशी, नीर विक्रम प्यासी, माधव प्रसाद देवकोटा जगत बहादुर बूढाथोकी धमरत्न थापा, पोषणप्रसाद पाड, सुधा प्रेम राजेश्वरी महानन्द डमरुवल्लभ पौड्याल, गुमानसिंह चामलिंग युद्धप्रसाद, गोपाल पाण्डे, श्यामराजा, लक्ष्मीनन्द, ऋषभ देवहृत्यसिंह प्रधान भैपप्रसाद पाडे गोपाल प्रसाद रिमाल विजयबहादुर मल्ल, ध्रुव रामकृष्ण शर्मा, माधवलाल कर्माचार्य, जनार्दन सम भीमदर्शन, कुलमणि देवकोटा, भूपप्रमान शेरचन द्वारिका प्रसाद श्रेष्ठ आनन्द भट्ट कुमार नेपाल, वीरेन्द्र सुब्बा आदि उदित और उदीयमान कवियो ने नई उद्भावना से

समृद्ध किया वहाँ दूसरी ओर इन्हीं में से कुछ ने अपनी एक दो रचनाओं द्वारा पूर्वागत भक्तिधारा को भी अक्षुण्ण रखा। उदाहरणार्थ—लेखनाथ, सोमनाथ, धरणीधर कोइराला, माधवप्रसाद देवकोटा और नारायण शास्त्री को लिया जा सकता है। लेखनाथ आधुनिक युग के अधिष्ठाता रहे—नव विचारों के उद्गाता। साथ ही वे रामभक्ति के पुराणपन्थी कवि भी दिखाई दिए। धरणीधर जी के नवेद्य का प्रमुख विषय देशभक्ति एवं राष्ट्रीय जागरण है फिर भी उनकी हरिनामाञ्जलि प्रार्थना अर्ची, विनयावरोप आदि कविताओं में ईश्वरभक्ति का सुस्पष्ट स्वर सुनाई देता है। माधव प्रसाद देवकोटा की फुलवारी में भी भक्ति ज्ञान और वैराग्य का सौरभ उड़ता ही है। सोमनाथजी तो राम भक्ति साहित्य में महाकाव्य कर्ता हैं। नारायण शास्त्री की युग चेतना भक्ति के माध्यम में प्रकट हुई है। ऐसे कवियों की भी कमी नहीं जिन्होंने युग निरपेक्ष भक्ति रचनाएँ कीं। तुलसीप्रसाद डुंग्याल उद्दीपसिंह थापा श्रीराम शर्मा ऋषिभक्तोपाध्याय गणनमान श्रेष्ठ आदि कवियों की रचनाओं से यह बात भली भाँति सिद्ध हो जाती है।

भक्ति की यह व्यापकता हिन्दी साहित्य में भी विद्यमान है। कभी वह मन्द भले ही पड़ी हो उसका विनाश नहीं हुआ। वह समय समय पर नया नया कलेवर धारण कर सामने आई है। और तो और अतिशय शृंगारिकता से सम्पन्न हिंदी का रीतिकाल भक्ति रचनाओं का भी उत्तम समय है। आधुनिक काल में भी भारतेंदु प्रतापनारायण मिश्र मैथिलीशरण गुप्त रामचरित उपाध्याय द्वारिका प्रसाद मिश्र रूपनारायण पाण्डेय आदि की कृतियों में भक्ति भावना पाई जाती है। नेपाली और हिंदी साहित्य में भक्ति पर समान रूप से अधिक बल दिए जाने के कारण मेरे मन में इनकी इसी विशेषता को लेकर तुलना करने का विचार उठना स्वाभाविक था। नेपाल और भारत को निकट से देखने के इच्छुक के लिए उनके भक्ति साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के अतिरिक्त उपयुक्ततर एवं सरलतर साधन और क्या हो सकता है! सन् १९६१ में कोलम्बो योजना के अधीन भारत सरकार की ओर से हिंदी प्राध्यापक के रूप में नेपाल पहुँचने पर इस शोध प्रबन्ध को लिखने की अप्रत्यक्ष प्रेरणा मुझे सर्वप्रथम तत्कालीन वहाँ के भारतीय राजदूत स्वर्गीय हरीश्वर दयाल ने दी। अप्रत्यक्ष इसलिए कि उनका सुझाव स्पष्ट नहीं था। कुछ करने का आदेश था। ऐसी ही बात कई बार उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नीला दयाल ने भी कही। इसके बाद भारतीय सहायता नियोग के तत्कालीन शिक्षा सदस्य श्री एस० एस० भण्डारकर तथा पंजाब विश्वविद्यालय के तत्कालीन हिंदी विभागाध्यक्ष आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने मुझे गवेषण के लिए और भी उत्साहित किया। एतदर्थ मैं उक्त महानुभावों का ऋणी हूँ।

इस शोध प्रबन्ध की सामग्री का संकलन करने में जिनसे सहयोग प्राप्त हुआ वे हैं जगदम्बा प्रेस के अध्यक्ष श्री कमल दीक्षित और नेपाल राष्ट्रिय

पुस्तकालय सिंह दरबार, मदन पुरस्कार पुस्तकालय ललितपुर (काठमाडू), नागरी प्रचारिणी सभा काशी तथा पजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारी। मैं उनका आभारी हूँ। सामग्री को जुटाने में मेरे प्रिय शिष्य श्री रामदयाल प्राध्यापक पद्म कन्या कालेज का भी कम हाथ नहीं रहा। इसके लिए मैं उनको अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ अर्पित करता हूँ।

नेपाल के उन कलाकारों और लेखकों को धन्यवाद देना मैं अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मुझे साक्षात्कार का अवसर दिया। इनमें श्री लखनाथ पौड्याल (अब स्वर्गीय) श्री बालचन्द्र शर्मा श्री सोमनाथ शर्मा श्री धरणीधर कोइराला श्री केदारमान व्यथित श्री बालकृष्ण सम श्री भवानी भिक्षु श्री माधव प्रसाद घिमिर, श्री सिद्धिचरण श्रेष्ठ, श्री वासु शशी श्री नारविक्रम प्यासी, प्रो० चूडानाथ भट्टराय श्री नीमनिधि तिवारी श्री तुलसीप्रसाद डुग्याल, प्रा० जगत बहादुर बुढाथोकी प्रा० ढुंडिराज भण्डारी और प्रो० बालकृष्ण पोखरेल प्रभृति हैं। श्री बाबूराम आचार्य श्री कमल दीक्षित और श्री जनकलालजी का मैं अत्यधिक आभारी हूँ। उनके सकलन ग्रन्थों का मैंने उन्मुक्त उपयोग किया है। श्री जनकलालजी से तो मैं क्षमा भी चाहूँगा क्योंकि उनकी धारणाओं का मुझे खण्डन भी करना पड़ा है।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान डा० ससारचन्द्र डा० डी० डी० शर्मा, डॉ० सच्चिदानन्द चौधरी डा० इन्दुशेखर, प्रो० राजनाथ पाण्डेय का भी मैं परम कृतज्ञ हूँ जिन्होंने सहायता शुभकामना तथा आशीर्वादों से मुझे इस प्रबन्ध को पूर्ण करने का साहस प्रदान किया।

अन्त में मैं डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन के प्रति जिनके निर्देशन में यह प्रबन्ध लिखा गया है आभार प्रदर्शित करता हूँ। उनकी कृपा के बिना इसकी पूर्ति असम्भव थी।

इस प्रसंग में मैं एक और व्यक्ति को याद किए बिना नहीं रह सकता हूँ जिन्होंने मुझे इस बीच कभी निश्चिन्त नहीं होने दिया। वे हैं श्री चचलावल्लभ पन्त, अवकाश प्राप्त जिला विद्यालय निरीक्षक—उत्तर प्रदेश। उन्हें मैं अपना अभिभावक मानता हूँ। उन्हें क्या धन्यवाद दूँ। धृष्टता न कहूँ—यही बहुत है।

—मथुरादत्त पाण्डेय

विषय-सूची

अध्याय एक नेपाली और हिन्दी के पारस्परिक सम्बन्ध स्रोत १७-३८

(१) सांस्कृतिक आदान प्रदान—सांस्कृतिक यात्राएँ—हिन्दी भाषी भारत से नेपाल और नेपाल से भारत की, नेपाल भारत की कला की अभिन्नता, नेपाल और हिन्दी भाषी भारत के धार्मिक कृत्यों की समानता।

(२) राजनीतिक सम्पर्क—शरण लेने और सहायता देने के कारण नेपाल और भारत के हिन्दी क्षेत्र का सम्बन्ध। नेपाली जातियाँ मूलत भारतीय। नेपालियो का आजीविका-स्थल 'मधेश (मध्यदेश)।

(३) व्यापार सम्बन्ध—भारत के हिन्दी भाषी प्रदेश और नेपाल के बीच बहुत प्राचीन समय से आयात निर्यात।

(४) नेपाल का अध्ययन-स्थल भारतीय हिन्दी-क्षेत्र—पटना इलाहाबाद लखनऊ और काशी।

(५) लिपि की एकता तथा नेपाली और हिन्दी का पारिवारिक सम्बन्ध। नेपाल भारत की जनता मे एकता। सम्बन्धो का प्रभाव साहित्य पर।

अध्याय दो नेपाली और हिन्दी के भक्तिकाव्य की ऐतिहासिक विवेचना तथा तुलनात्मक विशेषताएँ ३९-८३

(१) राजनीतिक एव सामाजिक स्थितिया और हिन्दी भक्तिकाव्य।
(क) राजनीतिक एव सामाजिक स्थिति (ख) वे स्थितिया हिन्दी भक्ति काव्य की निर्मिति के कारण नही।

(२) सांस्कृतिक परम्परा (क) सतकाव्य की पृष्ठभूमि (ख) कृष्ण काव्य की पृष्ठभूमि (ग) रामकाव्य की पृष्ठभूमि, (घ) प्रेम-मार्गी सूफी धारा की पृष्ठ भूमि।

(३) राजनीतिक एव सामाजिक परिस्थितियाँ और नेपाली भक्ति-काव्य (क) राजनीतिक स्थिति, (ख) सामाजिक स्थिति, (ग) व

अध्याय एक

नेपाली और हिन्दी के पारस्परिक सम्बन्ध-स्रोत

हेलम्बु (हरम्ब) की जननी पार्वती की क्रीडा भूमि हिमाचल के अचल स्थित अलावत नेपाल म साहित्य सजन की दृष्टि से भारतीय आय भाषाओं म से नेपाली से भी हिन्दी का प्रथम प्रचार इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्राचीन समय से नेपाल और भारत के विशेषत उस प्रदेश के बीच, जिसे इस समय हिन्दी क्षेत्र कहा जाता है घनिष्ठ सम्बन्ध चला आ रहा है। इस सम्बन्ध के कई स्रोत हैं जिनम से कुछ प्रमुख स्रोतों का नीचे विवेचन किया जाता है—

(१) सांस्कृतिक आदान प्रदान

वर्तमान नेपाल का पूर्व रूप घटता बढता रहा है। प्राचीन नेपाल पहाडों से घिरी घाटी तक सीमित था। इसका नेपाल नाम 'ने' या निमि द्वारा पालित होने के कारण हो अथवा नय अर्थात् नीति पालने के कारण।[1] यह सही है कि यह नाम बडा प्राचीन है। चाणक्य के अर्थशास्त्र और राजतरंगिणी म नेपाल नाम आया है।[2] समुद्रगुप्त की ३८७ ४३२ विक्रमीय दिग्विजय सूचक इलाहाबाद के अशोकस्तम्भस्थ हरिषेण के लेख म नेपाल का नाम आया है।[3] किन्तु इसकी गणना भारतवर्ष या भरतखण्ड के अन्तर्गत ही रही। आज भी

---

१ द्रष्टव्य—धर्म एवं संस्कृति मुरलीधर भट्टराय, पृ० १७

२ (क) अर्थशास्त्र कौटिल्य अधिकरण २, अ० ११, पृ० ८०
अष्टप्लोति सघात्या कृष्णा भिङ्गिसी वर्षवारणमपसारक इति नेपालकम।
(ख) राजतरंगिणी कल्हण—चतुर्थ तरंग, श्लोक ५३१।
तमच्छदमि सघातु विद्या विक्रम-संयुत । मायाध्यरमुडिर्नाम राजा नेपालपालक ।

३ समतटडवाक कामरूप नेपाल कर्तृपुरादि प्रत्यन्त नृपतिभि ।
Selections from Sanskrit Inscriptions D B Diskalkar p 5

राजनीतिक दृष्टि से नेपाल की सार्वभौम सत्ता सर्वथा पृथक होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से वह भरतखण्ड ही कहा जाता है। पूजा-पाठादि कार्यों के समय नेपाली पुरोहितों के मुंह से आज भी नेपाल के लिए 'भरतखण्डे' व्यवहृत होता है। नेपाली साहित्य का भक्तकवि भानुभक्त आचार्य 'बडो दुलभ जन्म भरत भूमि को जन्म जनल'[१] कहकर भारत और नेपाल की सांस्कृतिक एकता को सिद्ध करता है। मोतीराम भट्ट ने अपने मित्र जगत नारायण को जो पत्र भेजा, उसमें 'भारतवर्ष' का प्रयोग नेपाल और भारत दोनों के लिए हुआ है।[२] नेपाल ही नहीं कितने ही अन्य स्वतन्त्र राज्य भारतवर्ष में रहे। उनका अपना पृथक अभिधान था, किन्तु उन सबका सामूहिक नाम था भारतवर्ष। शाहवंश से अधिकृत होने से पहले बहुत से वे प्रदेश जो आज नेपाल के अधीन हैं नेपाल नाम से अभिहित नहीं होते थे। इसीलिए गोरखाधीश पृथ्वीनारायण शाह को जिसे नेपाल निर्माता कहा जाता है इतिहासकारों द्वारा नेपाल पर आक्रमण करने वाला माना गया है।[३] जिसके विपरीत लड़ाई के मैदान में कूदकर अंग्रेजों ने नेपाल की सहायता करनी चाही। आज के नेपाल निवासी का यह कहना है कि गौतम बुद्ध महावीर जानकी जनक कौशिक वाल्मीकि, कपिल व्यास आदि नेपाल की विभूतियाँ हैं किसी अन्य भारतीय के राष्ट्रगौरव को कम नहीं करना है। दोनों का समान अधिकार है कि वे अपने महापुरुषों का—चाहे वे अयोध्या में हुए या तिरहुत में—स्मरण कर अपने जन्मभूमि भागी होने के सौभाग्य का स्वाद लें।

(ख) नेपाल भारतीय संस्कृति का संरक्षण-स्थल रहा है। यह शैव, शाक्त बौद्धादि सम्प्रदायों को आश्रय देता रहा है। भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों के विभिन्न तापस्वी कलाकार आदि यहाँ आये और उन्होंने ही यहाँ का सांस्कृतिक धरातल प्रशस्त किया। शाक्यसिंह से पहले ही उनके शिष्यों के साथ ८ बुद्ध नेपाल आ चुके थे जिनके नाम थे—विपश्यि शिखी विश्वभू क्रकुच्छन्द, कनकमुनि और काश्यप। इनके अतिरिक्त दीपंकर और रत्नगर्भ ने नेपाल में सांस्कृतिक वातावरण बनाने में योग दिया। क्रकुच्छन्द के साथ राजा धर्माकर भी आया जिसे धर्मकर के विरक्त हो जाने के बाद मंजुश्री ने नेपाल का राजा

१ भक्तमाला भानुभक्त पोखरेल (भानुभक्तमणिमाला वि० सं० १९९८) प्र० विद्यामाला देवी काश्मीर।

बनाया। मंजुच्छन्द ने ही भिक्षुओं के लिए केना का चत्य तैयार करवाया।[1] मुझे तो लगता है कि जिस मंजुश्री को तिब्बती या चीनी कहा जाता है वह भारतीय नहीं तो कम से कम उसकी शिक्षा दीक्षा भारत में अवश्य रही होगी। उनका अपना नाम मंजुश्री—भारतीय ग्रन्थों में मंजुघोष और मंजुनाथ—उसके द्वारा दिये गए आदिबुद्ध का नाम स्वयम्भू और शहर का नाम मंजुपतन उसके भारत के सम्बन्ध को प्रमाणित करते हैं। श्री मुरलीधर भट्टराय भारद्वाज संहिता को उद्धृत करते हुए सिद्ध करते हैं कि मंजुश्री शुद्ध वैदिक देवता मंजुनाथ है और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि भारत की उच्च संस्कृति नेपाल में जाकर सुरक्षित रह गई। वहाँ से यही भारतीय संस्कृति तिब्बत पहुंची। वहां यह भारतीय और नेपाली दोनों कहलाती है।[2] इस तरह भट्टरायजी के मतानुसार नेपाली संस्कृति भारतीय है और तिब्बतीय संस्कृति नेपाली।

वर्तमान हिन्दी प्रदेश के ऋषि मुनियों का तपस्या-स्थल हिमालय रहा है। किरातेश्वर महादेव की महिमा पुराण प्रथित है। कैलाश, मुक्तिनाथ तथा पशुपतिनाथ की यात्रा भारतीय यात्रियों का परम पवित्र कृत्य माना जाता रहा है। नेपाल सिद्धपीठ माना जाता है। भारतीय साधक नेपाल जाकर सिद्धि प्राप्त करते हैं। शैवों का वह गढ़ है। पशुपतिनाथ के अतिरिक्त कोटेश्वर सन्तानेश्वर, ऋषीश्वर, गोरक्षेश्वर आदि असंख्य शिवलिंग नेपाल में प्रतिष्ठित हैं। भैरवों की भी संख्या कम नहीं। उनमें वाग्भैरव, कालभैरव श्वेतभैरव, महाकाल भैरव वटुक भैरव टीका भैरव, उन्मत्तेश्वर भैरव तथा आकाश भैरव प्रमुख हैं। फलतः नेपाल प्राचीन समय से ही भारतीय, विशेषतः सीमावर्ती भारतीय प्रदेशों के शैवों के आवागमन का आकर्षक केन्द्र बना हुआ है। तान्त्रिकों का भी नेपाल तीर्थ है। तन्त्रोक्त देवता गणेश की 'मुद्गल पुराण' तथा 'शारदातिलक' में वर्णित कितनी ही प्रतिमाएं वहां विद्यमान हैं।

गौतम बुद्ध नेपाल गये। उनके साथ बनारस का राजा १३५० भिक्षु और अपार जनता थी। ओल्डफील्ड का कथन है कि मंजुश्री के समय से ही (गौतम बुद्ध से भी पहले) भारत के मैदानों के लोग नेपाल में बस चुके थे और भारतीय नवीन सिद्धान्तों को नेपाल उपत्यका को दे चुके थे।[3] विश्वास किया जाता है कि पाटन का चतुष्कोण स्तूप अशोक ने बनवाया। अशोक की पुत्री

---

1 Sketechs from Nepal Oldfield p 179 183

२ धर्म एवं संस्कृति मुरलीधर भट्टराय (विश्वमंत्री संघ काठमाडू) पृ० २२।

3 'Since the time of Manjushri colonists also from the plains of Hindustan had settled in Nepal and has thus brought the new doctrines to the vally direct from India

—Sketches from Nepal Oldfield p 48

रहा है। मनुस्मति मे—हिमालय और विन्ध्याचल, हस्तिनापुर तथा प्रयाग के बीच का भू भाग मध्यदेश कहा गया है।[१] यह भाग भाषाशास्त्रियो द्वारा हिन्दी का केन्द्र माना जाता है। व्यवहार रूप मे मध्यदेश (मधेस) के अन्दर बिहार तक समस्त हिन्दी भाषी प्रदेश आ जाता है। गुरु गोरखनाथ और मछेन्दरनाथ ने उत्तर भारत के हिन्दी प्रदेश की यात्राएँ की और उससे स्थान-स्थान पर शिष्य-मण्डली तैयार हुई। रत्नाकर शान्त नारोपा शान्तिया आदि नेपाली विद्वान् नालन्दा विश्वविद्यालय मे द्वारपण्डित थे वागीश्वर कीर्ति वहा अध्यापक थे। विक्रमशिला विद्यापीठ के द्वारपण्डित भी विद्वान कनकश्री नेपाली ही थे।[२] नेपाल के कितने ही साधु-सन्यासी भारत मे विशेषत प्रयाग, काशी गया हरिद्वार अयोध्या तथा मथुरा-वृन्दावन मे स्थित साधु संस्थाओ मे प्रतिष्ठित स्थान पर आसीन रहे। नेपाली साहित्यकार हिन्दी क्षेत्रो मे घूमते रहे। कई तो वहाँ रहकर ही नेपाली मे साहित्य रचना करते रहे। मोतीराम भट्ट काशी मे रहते थे। उनकी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से मित्रता थी वे भारत जीवन प्रेस के प्रबन्धक थे।[३] मानबहादुर राणा एक योगी थे। वे काशी मे रहे और रचना करते रहे। श्रीकृष्ण प्रसाद काशी के संस्कृत महाविद्यालय मे शिक्षक तथा हुतात्मा श्री शुक्रराज शास्त्री दयानन्द आर्य विद्यालय प्रयाग मे हेड पण्डित रहे। ये दोनो लेखक थे। आशुकवि शम्भुप्रसाद ढुगल बनारस रहते हुए नेपाली रचना करते रहे।[४] नेपाली साहित्यकार विद्यापति चौबीस वर्ष काशी मे रहे।[५] बहादुर सिंह बराल कागडा मे जन्मे पढे लिखे और नेपाली मे रचना करते रहे।

(ग) नेपाल और भारत का कला-कौशल आंशिक भिन्नता सहित लगभग एक ही है। अशोक-कालीन बौद्ध चैत्य नेपाल मे यत्र-तत्र देखे जाते हैं। गुप्तो द्वारा प्रचारित भागवत सम्प्रदाय के विष्णु, गरुड तान्त्रिक सम्प्रदायो द्वारा प्रचारित अनेक बौद्ध तथा हिन्दू स्वमूर्तियाँ नेपाल मे विद्यमान हैं। मथुरा की मूर्तियो मे जो कुषाण-कला विद्यमान है वह नेपाल मे भी देखी जाती

१ हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्य यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेश प्रकीर्तित । मनुस्मृति २ २१

२ द्रष्टव्य—प्राचीन काल मा हाम्रो शिक्षा प्रणाली को आदर्श प्रो० गोकुलचन्द्र शास्त्री। ('नेपाल' त्रि० वि० वि० सा० प० चत्र २०२१)।

३ मा० भ० श्रा० को सच्चा जीवन चरित्र, पृ० १५।

४ बुइगल कमल दीक्षित पृ० ४१६, ६६६, ३६१।

५ निर्णेय तीर्थाटन शुद्ध मानस काश्या चतुर्विशति वत्सरान स्थित । कुल षोडश श्लोक ४७वाँ।

६ बुइगल कमल दीक्षित, पृ० ३७८।

है। गान्धार शैली—जिसमे यूनानी और उत्तर भारतीय कला का मिश्रण है—नेपाली बुद्ध तथा सूर्य की मूर्तियों म प्रत्यक्ष दिखाई देती है। बाबूराम आचार्य पहली और दूसरी शताब्दी की नेपाली मूर्तिकला के विषय म इस तरह लिखते है—

यस काल मा कुदिए का मनुष्याकार सूर्यमूर्ति यस उपत्यकामा यत्र-तत्र पाइदे छन। केवल पशुपतिनाथ का मन्दिर का वरिपरि सात आठ मूर्ति पडि रहेका छन। अग भग हुदा न पुजिए ता पनि गान्धारकला को सौन्दर्य प्रकट गर्न वचि रहे का छन। यिनका कुषाण वशी राजाहरूके वेषभूषा अर्थात फराक्लिो टोप कमरपेटी सहित ववखु र दोचा पहिरादए को छै।[१]

उत्तर प्रदेशीय नागपथी महीपो द्वारा प्रचारित लकुलीश शैली के शिव-लिंगो की नेपाल म भरमार है। श्री जी० टुची के विचारानुसार बिहार और बगाल के बौद्ध विश्वविद्यालयो स अत्यधिक सम्बद्ध होने के कारण वहाँ की कलाम्रो को नेपाल न तिब्बत पहुचाने म मध्यस्थ का काम किया।[२] ई० तरहवी शताब्दी अर्थात मल्लकाल तक शव वष्णव बौद्ध तथा तान्त्रिक कलाकृतियाँ नेपाल म स्थानीय विशेषताओ के साथ चरम उत्कर्ष पर पहुच चुकी थी और नेपाली कलाकार अपनी कला को तिब्बत तक पहुचाने लग थे।[3] इसस पहले भी ठकुरी और लिच्छवी काल मे नेपाल ने उत्तरी भारत स विपुल सांस्कृतिक परम्पराए प्राप्त की। लिच्छवी शासित नेपाल और गुप्त साम्राज्य की कलात्मक सस्कृति सवथा अभिन्न है।

नेपाल की वास्तुकला पर उत्तर भारत की नागर शैली का प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है। मध्यकालीन राधा कृष्ण मन्दिर इस शैली के भव्य नमूने है। मुगल और राजपूत परिपाटी भी पाई जाती है।

(घ) नेपाल के धार्मिक कृत्य व्रतोत्सवादि आदि बहुत-कुछ व ही हैं जो भारत के हिन्दी प्रदेश म देखे जाते हैं मछन्दरनाथ की रथयात्रा जो नेपाल म सज धज के साथ मनाई जाती है जिसका वणन सुन्दरानन्द न अपनी रचना त्रिरत्न सौन्दर्य गाथा मे किया है—श्री नयराज पन्त की दृष्टि म सवथा वही है जो बहुत समय तक पाटलीपुत्र म चलती रही।[४] अपन कथन की पुष्टि करने

१ नेपाल—त्रि० वि० वि० सां० प० चत्र ३० गते पृ० १४ (नेपाल भारत सांस्कृतिक सम्बन्ध लिच्छवी गुप्तकालीन मूर्तिकला बाबूराम आचार्य।

2 Nepal The—Discovery of Malla G Tucci (Translation—Lovett Edwards) p 82 83

३ द्रष्टव्य—Foundation of Nepal Culture and Archeology Dr S B Dev Journal of T U 1964 p 41

४ त्रिरत्न सौन्दय गाथा सुन्दरानन्द—सम्पादक नयराज पन्त, पृष्ठ ८२।

क लिए श्री पत न फाहियान कन पाटलीपुत्र की रथयात्रा के वणन को उदधृत
किया है। इस तरह नपाल का साम्कृतिक वातावरण भारत स अभिन्न है।
यथाथत सास्कृतिक दृष्टि म भारत ग्रौर नपाल एक ही हैं। श्री क० एम० मुशी
का यह कथन सवथा सही है कि नपाल राजनातिक दष्टि स स्वतन्त्र राष्ट्र
होता हुग्रा भी सामाजिक, धार्मिक साम्कृतिक ग्रौर साहित्यिक मामला म भारत
का ही एक ग्रग है।[1] देशी विदेशी सभी विद्वानो न इस बात को स्वीकार
किया है कि सम्कृति के क्षत्र म नपाली ग्रौर भारतीय दो विभाग करना ग्रसगत
है। भारतीय सस्कृति का ग्रध्ययन किए बिना नपाली सस्कृति का ग्रध्ययन
सम्भव नही—यह जी० टुची की मान्यता है।[2] जोह्न मौरिस इस निष्कप पर
पहुँचे हैं कि नेपाल उपत्यका की सस्कृति का सीधा सम्बन्ध सदा भारत से रहा
है। उनक विचारानुसार काठमाडू के नेवारा न बौद्ध सिद्धान्त सीधे भारत स
ग्रहण किए।[3] नपाल ग्रौर भारत के बीच जो सास्कृतिक सम्बन्ध है उसक
कारण दोनो क निवासियो का परस्पर मिलन प्राचान काल स होता चला ग्रा
रहा है ग्रौर भविष्य म भी होना रहेगा। वतमान नपाल नरेश महेन्द्रवीर विक्रम
शाह के विचारानुसार नपाल क धार्मिक क्षत्र भारतीया के लिए ग्रौर भारत
के पुण्यस्थल नेपालियो क लिए दशनाभिलाषा क विषय बने रहते हैं।

> नपाल का हिन्दू को लागि गगास्नान, काशीसवन र कन्याकुमारी दखि
> काश्मीर सम्म का पुण्यस्थल हरू का दशन जीवन को एउटा ग्रभिलाषा र प्रेरणा
> भइ रह छ। भारत का हिन्दू का लागि हिमालय को ग्राकषण, पशुपतिनाथ र
> मुक्तिनाथ का दशन एउटा चिर ग्राम्था भई ने रहन्छ। ४

उक्त विचारा की सचाई कवल उद्धरणा द्वारा ही नही प्रत्यक्ष उदाहरणा
द्वारा सिद्ध है। ग्राज भी काई भी व्यक्ति नेपाल स भारत विशेषत उत्तर
भारत ग्रौर भारत से नपाल जाकर देख तो उसे इन दोना देशा का सास्कृतिक
धरातल एक दिखाइ दगा।

---

1 Though Nepal is politically an independent country in social religious and cultural and library matters it forms with India a single unit
—के० एम० मुन्शी, भानुभक्त को रामायण पृ० १४। सू० वि० ज्ञवाली—
भूमिका।

2 Nepal G Tuceis p 82

3 A Winter in Nepal John Moris p c5

४ 'नेपाल'—विश्वलाई हिन्दूधम को देन—चत्र २०२१, पृ० २ त्रि० वि०
वि० सां० प० श्री ५ महेन्द्र।

(२) राजनीतिक सम्पर्क

(क) धर्मांतर रा—जिसने सबप्रथम नपाल का शासन भार गँभाला—लेकर आजतक भारत के, विशेषत वतमान हिन्दी भाषी प्रदेश के लोग—राजा से लेकर रक तक—नेपाल म शरण पाते रहे। शरण ही नहीं राज्य भी प्राप्त करते रहे। यहा के आदिवासी किरात माने जाते हैं। उनका विस्तृत राज्य था। इन्हें महाभारत म क्षत्रिय माना गया है।[1] नवागन्तुक शरणार्थी इन्हें अपदस्थ करते रहे। यहाँ तक कि रण बहादुरशाह के मन्त्री घोकलसिंह की भी किरात देश जीतने की बात वाणीविलास रचित संस्कृत श्लोक स स्पष्ट होती है।[2] विश्वास किया जाता है कि अजातशत्रु स परास्त होकर लिच्छवी नेपाल की ओर बढे। ठकुरीवंश भी जो खसो की एक शाखा है हिन्दी प्रदेश पारकर पश्चिम से पूव की ओर बढा। खसवश आर्यों की ही एक शाखा है।[3] बस्नेत भण्डारी, कार्की, खड्का अधिकारी विष्ट कुवर, दानी वर्ती, रात्री आदि क्षत्रियों के अतिरिक्त खसा म ब्राह्मण भी हैं।[4] शाक्य भी आम रुपाय नपाल आए।[5] मल्लो की दो शाखाएँ नेपाल म पाई जाती हैं—एक वह जिसने जुम्ला मे अपना राज्य स्थापित किया। मानदेव (पाँचवी शताब्दी) क चागु नारायण के शिलालेख मे पूर्वागत मल्लो का उल्लेख है। इन्हें मध्यदेश से भागना पडा था और वे गण्डकी के किनारे आकर बसे थे। डा० रग्मी के विचारानुसार जुम्ला के मल्ल क्षत्रियो का आधिपत्य उत्तर म पश्चिमी तिब्बत तक फैला था।[6] सेंजा के राजा पुण्यमल के अभिलेख के अनुसार मल्लो का कावण कर्णाट लाट भुरल केरल हालाग वग कलिंज मिथिला मालव नेपाल गुजर और जालन्धर कर देते रहे। श्री गेसेफ टुची इन मल्लो का आगमन गढवाल से मानते है।[7] लूसियानो पटेक भी इन मल्लो को तराई के मल्लो

१ कराता दरदा दर्वा शूरा वयमक्षास्तया ! अहायु क्षत्रिया वित्त शतशो ज्जातशत्रवे। सभापव अ० ५२, श्लोक १३ से १७।

२ यो भिल्ला बहुला हलाहलबलान भल्लादिभिध्वसयन हालामाविपत किरात भजयद्देश समस्त हठात ॥ द्रष्टव्य—काजो घोकलसिंह का बयान वाणी विलास पाण्डेय भवन का शिलालेख।

3 Khas Family Law Dr L D Joshi p 26 27

४ नेपाली भाषा—लेख "नेपाली हाम्रो मात भाषा' पारसमणि प्रधान, पृ० ७२।

५ नेपाल को एतिहासिक रूपरेखा बालचन्द्र शर्मा प० ४४।

6 Modern Nepal Dr D R Regmi p 3

7 Nepal—The Discovery of Malla G Tucci p 57 Translated from the Itali n Nepal ALLA SEOPERTA DEI MALLA by Lovett Edwards

से भिन्न मानते हैं।[1] दूसरी मान्यतानुसार नेपाल उपत्यका की है जो १२२८ ई० में गयासुद्दीन द्वारा खदेड़े जाने पर सिमरौनगढ़ होती हुई नेपाल उपत्यका में पहुँची। प्रतापमल्ल के शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसके पूर्वज कर्णाटक से नेपाल आए।[2] उन्हें कुछ समय हिन्दी (मिथिला) प्रदेश में रहना पड़ा। वंशावली के अनुसार उपत्यका के नेवार दक्षिण भारत से नेपाल आए और नेपाल आने से पहले वे हिन्दी क्षेत्र में रह चुके थे।[3] हरिसिंह देव (बाबूराम आचार्य के अनुसार हरिसिंह देव) के मन्त्री मैथिल कोकिल विद्यापति के पितामह चण्डेश्वर ने नेपाल के रघुवंशी महीपों का उन्मूलन कर पशुपतिनाथ का स्वयं स्पर्श कर पूजन किया और वाङमती (वाग्मती) के किनारे आत्म-तुलादान किया।[4] स्वयं विद्यापति वर्तमान नेपाल के सप्तरी जिले में पुरादित्य के आश्रय में रहे और वहीं उन्होंने लिखनावली की रचना की।[5] शाहवंश को कुछ लोग चित्तौड़ से सम्बन्धित मानते हैं और नेपाल आने से पहले उनके पूर्वज कुम्भकर्ण को हिन्दी क्षेत्र कुमाऊँ में बसा दिखाते हैं।[6] कुछ लोग इस वंश को पश्चिमोत्तर भारत से आया मानते हैं। जो भी हो, यह वंश मुसलमानों से त्रस्त होकर नेपाल आ बसा और इसे हिन्दी प्रदेश को पार करना पड़ा। राणा लोग अपनी वंश परम्परा को सीसोदिया वंशज राणाओं से जोड़ते हैं। कतिपय विद्वान् इन्हें निरे खस मानते हैं जो हिन्दी प्रदेशीय अपनी पुरानी बस्तियों को छोड़कर नए-नए स्थलों को पार करते हुए नेपाल आ बसे। नर भूपालशाह कृत करयाल वंशावली के अनुसार कल्यालशाही राजपूताने से नेपाल आए।

बाईसी और चौबीसी राज्यों के शासक लगभग सभी हिन्दीभाषी प्रदेशों के रहे, उन्होंने समय समय पर नेपाल में आकर शरण ली और अपने स्वतन्त्र

---

1 Mediaeval History of Nepal Lucciano Patech p 57

२ तस्मात्कर्णाट चूडामणि रिव हरयुत सिंह देवोऽस्य वंशे।
भूप श्री यक्षमल्लो नरपति रतुलो रत्नमल्लोऽप्यमुष्मान ॥ प्रतापमल्ल का शिलालेख।

३ धर्म एवं संस्कृति मुरलीधर भट्टराय, पृ० १८।

४ द्रष्टव्य—कृत्यरत्नाकर। विद्यापति पदावली की भूमिका। कुमुद विद्यालंकार और जयवंशी झा पृ० १३ १४ से उद्धृत।

५ *सप्तर्षिव तनूजस्य द्रोणवार महीपते। गिरिनारायणस्याज्ञा पुरादित्यस्य पालयन।*
अल्पश्रुतोपदेशाय कौतुकाय बहुश्रुताम। विद्यापति सतां प्रीत्यै करोति लिखनावलीम। लिखनावली विद्यापति श्लोक १ २।

६ उदयपुर का इतिहास महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भाग १, पृ० ८७।

(ग) जिस तरह नेपाल भारतीयों—विशेषतः हिन्दी प्रदेशीय व्यक्तियों को शरण देता रहा उसी तरह वहां के लोग भारत के हिन्दी प्रदेश में शरण पाते रहे। प्राचीन समय से ही जबकि नेपाल वर्तमान उपत्यका तक सीमित था वहां से राजकीय, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक संकटों से मुक्ति पाने के लिए लोग हिन्दी प्रदेशों में आते रहे और उनके छूटे साथी वेदनामय स्वर में 'मादले गीता' में अपना हृदय उतारते रहे—

(क) आज मादल कहां बज्यो कोइरालो को बनमा ?
सब साथी देश गए बराग चल्छ मनमा॥
हा है रली माई बराग चल्छ मनमा।[1]

(ख) सधैंने ज्यान को झिलि न मिलि कुइरेको कारखाना।
हेर फौजे को बिरसल देश काट्यो॥
जाने लाग्यो जाने लाग्यो
दुइ दिनको लाहुरे जोबन जान लाग्यो।[2]

पृथ्वीराज शाह से पराजित रणजीत मल्ल ने बनारस जाने की इच्छा प्रकट की और वह वहां चला गया।[3] अन्य पराजित मल्लों ने भी बनारस जाने की आज्ञा प्राप्त की।[4] बेतिया नेपाल के शरणार्थियों को शरण देता रहा। बहादुरशाह ने भी वहां जाकर शरण ली।[5] कोत पर्व के बाद शाह राजा राजेन्द्र ने पटना नेपाल स्थित अंग्रेजी रेजिडेन्सी फिर बनारस में शरण पाई।[6]

डंकन फोर्ब्स के शब्दों में विश्व इतिहास में राष्ट्रीय विद्रोह का नेतृत्व करने वाले प्रथम राजा त्रिभुवन शाह[7] ने दिल्ली जाकर शरण ली। आधुनिक नेपाल के प्रथम प्रवासी नेता देवीप्रसाद सापकोटा बनारस रहे। उन्होंने वहां से साप्ताहिक 'गोरखाली' पत्र निकाला।[8] इस समय भी नेपाल सरकार की दृष्टि में अराष्ट्रीय तत्त्व समझे जाने वाले भारत में शरण पाए हैं। उनके अड्डे बंगाल और आसाम के कुछ नगरों को छोड़कर हिन्दीभाषी क्षेत्रों में हैं। नेपाल के साधारण लुटेरे डाकू तथा अपराधी तक सीमावर्ती भारतीय प्रान्तों में आश्रय ढूंढ़ते रहे।

१ ने० ज० सा० का० बन्दर का पृ० ३६ से उद्धृत।
२ नेपाली जन साहित्य काजीमान कन्दङ्वा पृ० १२०।
3 Modern Nepal Dr D R Regmi p 86
4 *Ibid* p 88
5 *Ibid* p 105
6 The Heart of Nepal Duncan Forbes p 106
7 The Heart of Nepal Duncan Forbes p 113
८ बुद्धिसार कमल दीक्षित पृ० १५२।

(३) व्यापार सम्बन्ध

चाणक्य के समय नपाल म कम्बल खालें, काचन रस, मैनसिल, हडताल और शिलाजीत अधिकतर मिलने थे। मिडिगमी तथा अपसारक नामक बरसाती कम्बर तो मिलने ही वही थे। आयुर्वेदिक औषधिया के मूल द्रव्य भी वहीं पाये जाते रहे। उन सबका निर्यात नेपाल से अवश्य होता रहा।[1] छाला वनौषधि धातु के बतन, काठ का सामान, भग, चरस कस्तूरी, हडताल आदि वस्तुएँ आज भी नेपाल स सीमावर्ती भारतीय प्रदेशो म आती हैं। कर्कपैट्रिक ने जो विवरण दिया है उसके अनुसार नपाल के नवार घरेलू उद्योग धधो म बडे निपुण रहे। उन्ह कपडा बुनने के लिए कपास मध्य देश या नुवाकोट स मिल जाता रहा। ताबा पीतल तथा काष्ठकला म नेपाली कारीगरा की निपुणता दर्शनीय रही। नेपाल से बतन भारत भेजे जाते रहे। हाथ के हथियार भी नेपाल स भारत प्राप्त करता रहा। घी, सेमर की रुई तथा तेल का निर्यात नेपाल से भारतीय सीमावर्ती प्रदेशो को होता रहा।[2]

भारत स नेपाल को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की बडी भारी सख्या है। पटना गोरखपुर, मुजफ्फरपुर रक्सौल टनकपुर आदि हिन्दी भाषी भारतीय क्षेत्रो से नेपाल के व्यापारिया का सीधा सम्बन्ध रहता आया है। लार्ड कार्नवालिस न भारत म अग्रेजी शासन स्थापित होने पर—नेपाल के साथ व्यापारिक सम्बन्ध दढ बनाने म बडी अभिरुचि ली।[3] १७६२ म कम्पनी सरकार और नेपाल के बीच व्यापारिक समझौता हुआ। १६६७ म अग्रेजा की जो लडाई नेपाल के साथ हुई उसको अग्रेजा ने प्रमुख रूप से इसलिए छेडा था कि गोरखाने नेपाल के साथ उनके व्यापार को रोक दिया था। नेपाल से उन्हें पर्याप्त सोना मिलता रहा।[4] नेपाल का भारत के साथ आयात निर्यात सबसे अधिक होना रहा है। उपलब्ध आकडो के अनुसार १६५८ ५६ म भारत सरकार के साथ नेपाल का व्यापार कुल विदेश-व्यापार का ६८ १२ प्रतिशत, रहा जिसमे आयात ६७ ६६% और निर्यात ६८ ६५ था। १६५६ ६०% मे आयात ६३ ८८% रहा—कुछ कमी आई, किन्तु निर्यात बढ गया अर्थात वह ६६ ०२ %पहुच गया।[5] इसी तरह पूववर्ती और परवर्ती समय म भी नेपाल के आयात और नियात का प्रधान स्थल भारत रहा है। उसकी तुलना म भारतेतर देशो के साथ नेपाल का व्यापार सवथा नगण्य है। भारत के साथ नेपाल का यह व्यापार प्रमुखत हिन्दी भाषी

१ द्रष्टव्य—अर्थशास्त्र कौटिल्य अधिकरण २ अध्याय ११ और १२।

२ Description of Nepal p 176 (कर्क पट्रिक, पृ० १७६)

3 Dr D R Regmi Modern Nepal p 128

4 *Idid* p 128

5 Far Eastern Review, vol 35 (16 3 1962) p 619

प्रभाव द्वारा होता आया है। १९६० के भारत नेपाल व्यापार समझौते के अनुसार नेपाल को भारत द्वारा अन्य देशों से व्यापार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है तो सही किन्तु इससे नेपाल को भारत से निर्यात की स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पड़ा है और भविष्य में पड़ने की सम्भावना भी कम है क्योंकि नेपाल के पास अन्य देशों से मार्ग की बड़ी कमी है।[1] यातायात की सीधी और सरलतम प्रबन्ध नेपाल और भारत के निकटवर्ती हिन्दी प्रदेशों के बीच बहुत पहले से विद्यमान रहा है। १९६१ में त्रिभुवन राजपथ बन जाने से यह अधिक उन्नत हो गया है जिससे टनों सामग्री नित्य नेपाल पहुंचती है। रज्जुमार्ग (Ropeway) द्वारा भी भारत से लगभग ६० टन सामग्री प्रतिदिन काठमाडू पहुंचती है।[2] १९५० से आकाश मार्ग से भी आवागमन-सुविधा हो चली है। नेपाल के विदेश व्यापार का ९० प्रतिशत से अधिक भाग भारतीयों के हाथ में है।[3] इस तरह नेपाल तथा भारत के उत्तर सीमावर्ती हिन्दी प्रदेशों का नेपाल के साथ प्राचीन काल से व्यापारिक सम्बन्ध रहा है जिसमें परस्पर एक दूसरे के ऊपर प्रभाव पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है।

(४) हिन्दी क्षेत्र नेपाल का अध्ययन स्थल

प्राचीन समय से नेपाल निवासियों का शिक्षा स्थान हिन्दी प्रदेश रहा है। नेपाल के राजनीति विशारद कलाकार साहित्य निर्माता तथा न्यायशास्त्री प्रधान रूप से हिन्दी क्षेत्रों में जाकर शिक्षित होते आए हैं। त्रिभुवन विश्व विद्यालय के अस्तित्व में आने से पहले पटना विश्वविद्यालय द्वारा ही नेपाली परीक्षार्थियों की परीक्षाएँ ली जाती थी। शिक्षा केन्द्रों की विरलता नेपाली विद्यार्थियों को सीमावर्ती भारतीय संस्थानों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य करती। त्रिभुवन विश्वविद्यालय स्थापित होने पर भी विशेष अध्ययन तथा प्राविधिक शिक्षा के लिए नेपाली विद्यार्थी आज भी प्रतिवर्ष भारत पधारते हैं। इस दिशा में राणा शासन के समाप्त होने के बाद १९५० से १९६६ तक तीन हजार से भी अधिक नेपाली छात्रों ने भारतीय शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्जन किया। एशिया में अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भ होने तक क्या भारत क्या नेपाल संस्कृत के विद्वानों के श्रद्धालु होने से वहां उसकी शिक्षा पर बल दिया जाता था। काशीपुरी प्राचीन काल से संस्कृत के विद्वानों का घर रही और नेपाली छात्र वहाँ पढ़ने जाते। बौद्ध काल में नालन्दा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में भी नेपाली शिक्षार्थी अध्ययन करते रहे। डा०

1 The Himalayan Kingdoms Pradyumna P Karan and William M Jenkins p 111
2 *Idid* 108
3 *Idid* 122

गोकुलचन्द्र शास्त्री के अनुसार नेपाल और दक्षिण-पूर्व एशिया के बहुत-से छात्र नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ते थे।[१] नालन्दा विद्याकेन्द्र चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर मिट गया, किन्तु काशी का महत्त्व विद्या की दृष्टि से अब भी अक्षुण्ण है और नेपालियों के लिए प्रो० ईश्वर बराल के विचारानुसार वह विद्या केन्द्र आज भी प्रमुख बना हुआ है।[२] औरों की बात छोड़ दें, नेपाली साहित्य के बहुत से सष्टाओं ने काशी में पढ़ा। काशीवासेच्छुक वृद्ध पिता के साथ काशी जाकर विद्यारण्य केसरी ने वहाँ विद्याध्ययन किया।[३] विद्यारण्य का पुत्र भी पीछे पिता की ताड़ना प्राप्त कर विद्याध्ययनार्थ काशी गया—यह बात पिता पुत्र के बीच पत्र व्यवहार में स्पष्ट होती है। उस पत्र में एक बात उल्लेखनीय है कि विद्यारण्य ने अपने पुत्र को लिखा कि रामायण से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है जब तक वह उसके हाथ में है तब तक उसे कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए, उसे विद्या अवश्य प्राप्त होगी —

श्री रामायण दखि ठूलो साधन केहि छैन। त्यो तेरो हातमा छदै छ। निश्चिन्त रह। तलाई अवश्यमेव विद्या हुन्या छ।[४]

वाणी विलास पाण्डेय, पदमविलास पन्त तेजबहादुर राणा, ऋषिकेश उपाध्याय ने भी काशी में ही अध्ययन किया। हरिदयालसिंह हुमाल, पदमप्रसाद ढुगाना देवीदत्त पराजुली आदि कितने ही नेपाली कवियों की शिक्षा-दीक्षा काशी में हुई।[५] कहा जाता है कि भक्त कवि भानुभक्त की शिक्षा काशी में सम्पन्न हुई। वहाँ रहते हुए उनके मन में भाषा में कविता करने की बड़ी उत्कण्ठा हुई।[६] श्री मोतीराम भट्ट ने काशी में बहुत-कुछ लिखा पढ़ा। यह पहले कहा जा चुका है कि वहाँ श्री रामकृष्ण के साथ भारत जीवन प्रेस खोलकर उन्होंने प्रबन्धक का काम किया।[७] श्री रुद्रराज पाण्डेय के कथनानुसार भट्टजी

---

१ 'नेपाल (त्रि० वि० वि० सा० प० दीक्षान्त समारोह २०२१ चैत्र) पृ० ३४। "प्राचीन काल मे हाम्रा शिक्षा प्रणाली से आदर्श प्रो० गोकुलचन्द्र शास्त्री।

२ 'काशी को विद्या केन्द्र नेपाली का निम्ति अहिले सम्म प्रमुख बने को छ।' नेपाल को सस्कृतिर स्वातन्त्र्य प्रेम प्रो० ईश्वर बराल (त्रि० वि० वि० सा० प०), प० ५।

३ पुराना कवि र कविता बाबुराम आचार्य, प० २१।

४ द्रष्टव्य—अञ्जलि फुल चन्द्रिका देवज्ञ केशरी प० २६।

५ द्रष्टव्य—बुद्गल (कवि परिचय) कमल दीक्षित प० २६६ ४३३।

६ भानुभक्त आचार्य को सच्चा जीवन चरित्र नरनाथ शर्मा आचार्य, प० ५।

७ वही, पृ० १५।

और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बीच मैत्री थी।[1] नेपाली गीतकार हरिनारायण उपाध्याय विद्याभूषण काशी में पढ़े।[2] नेपाली भाषा के भर्रोवाद (Purism) को श्री बालकृष्ण पोखरेल काशी के विद्यार्थियों की देन मानते हैं।[3] बनारस के अतिरिक्त अन्य हिन्दी क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों में भी नेपाली विद्यार्थियों की कभी कमी नहीं रही। श्री जी० टुची का निरीक्षण यह बताता है कि काठमाडू मे महाविद्यालयीय अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात आगे पढ़ने के इच्छुक नेपाली विद्यार्थी सीमावर्ती भारतीय विश्वविद्यालयों में चले जाते रहे।[4] स्वभावत समीपवर्ती होने के कारण वे पटना बनारस लखनऊ इलाहाबाद जाकर पढ़ते रहे। इस तरह देखा गया है कि नेपाल के शासक ही नहीं शासित भी अध्ययनार्थ वर्तमान हिन्दीभाषी प्रदेशों में जाकर वहाँ की रीति नीति विचार भाव भाषा रहन सहन आदि को जानना अजानता अनादिकाल से अपनाते रहे।

(५) लिपि की एकता और समान पारिवारिक सम्बन्ध

नेपाल और भारत के हिन्दी प्रदेशों के बीच अपेक्षाकृत अधिक सम्बन्ध होने का एक कारण उनकी भाषाओं की घनिष्ठता और लिपि की एकता भी है। किरातों की एक लिपि पहले रही। उसके विषय में कहा जाता है कि किरात राज श्रीजगा पर प्रसन्न होकर साक्षात सरस्वती ने उसे वह लिपि प्रदान की इसीलिए उसका नाम शिरिजगा लिपि पड़ा। इस लिपि को तिब्बती लिपि भी कहते हैं। इसका और देवनागरी का विकास एक ही लिपि से हुआ प्रतीत होता है किन्तु भारतीयों के साथ उनकी लिपि देवनागरी भी नेपाल में गई उसने किरात लिपि को अपदस्थ कर दिया और वर्षों पहले समस्त नेपाल ने उसे अपना लिया। नेपाल मे प्रचलित देवनागरी लिपि इस तथ्य को भी प्रमाणित करती है कि नेपाल आकर बसने वाले भारतीयों में से अधिक संख्या हिन्दी प्रदेश के व्यक्तियों की रही। नेपाल और भारत के हिन्दी प्रदेश की लिपि एकता के कारण हिन्दी प्रदेशीय सांस्कृतिक विशेषताओं तथा विचारधाराओं से नेपाल का प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। डा० सुकुमारसेन इस बात को स्वीकार करते हैं कि मल्ल राजाओं के समय से ही नेपाल देवनागरी लिपि हिन्दी भाषा तथा पश्चिमोत्तर

---

१ भानुभक्त स्मारक ग्रन्थ पृ० २५ २६।

२ गीतमाला स० विपिनदेव उपाध्याय पृ० ५ (विराटनगर-देवाश्रम)।

३ नेपाली भाषा र साहित्य प्रो० बालकृष्ण पोखरेल, पृ० १०१— नेपाली भाषा को क्या।'

4 Nepal—The Discovery of the Malla G Tucci p 94 Translated from the Italian Nepal by Lovett Edwards

भारतीय सस्कृति से प्रभावित हो चुका था।[1] कलकत्ता म भी नपाली जात रह किन्तु बगला भाषा और लिपि की भिन्नता बगाली और नपाली के सास्कृतिक आदान प्रदान म बाधक सिद्ध हुई। इनक बीच की सम्पक भाषा हिन्दी ही बनी चली आ रही है जिस व विवशतापूवक अपनाते है। नेपाली न जानन वाले बगाली और बगला न जानने वाले नेपाली के बीच पूछताछ टूटी फूटी एव अशुद्ध ही सही—हिन्दी म चलती है और लिखने की समस्या उपस्थित होन पर दवनागरी प्रयुक्त होती रही है। हिन्दी-क्षेत्रीय भारतीय को नेपाली से व्यवहार करन म किसी समस्या का सामना नही करना पड़ता है। दोनो की लिपि एक होती है और भाषाओ मे भी इतना पार्थक्य नही कि व एक दूसरे की बात उसकी ही भाषा म न समझ लें। इस विषय म श्री भवानी भिक्षु का निरीक्षण उद्धरणीय है। वे लिखते हैं कि हिन्दी भाषी को बगला समझने म जितनी कठिनाई होती है उतनी नपाली समझने म नही होती क्योकि नेपाली का प्रारम्भिक रूप हिन्दी ही रहा—

' मत यहा सम्म पनि के भन्न चाहन्छु भने बगला भाषा का निकट सम्पक मे न आएका हिन्दी बाल्न सुने मानिसलाई बगला बुझ्नमा जति नपाली बुझ्नुमा गाह्रारो पर्दे न। यसको यउटा विशेष कारण के छ भने (पुराना कागज पत्र हर्दा) नेपाली को प्रारम्प लगभग हिन्दी को रूप नै थियो।'[2]

श्री पारसमणि प्रधान भी नेपाली का विशुद्ध भारतीय आयभाषा ही नही हिन्दी मिश्रित भाषा कहते हैं।[3] टनर इसे हिन्दी की बोली और कुमाउनी से सम्बद्ध मानत हैं।[4] यह नेपाली नेपाल क बसी चौबीसी राज्या म उन्मुक्त रूप से प्रयुक्त होती रही।[5] श्री यनराज सत्याल का भी यही विचार है।[6] इस तरह पृथ्वीनारायण शाह के वृहत्‌नेपाल की निर्मिति के पहले ही नेपाली का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। साहित्य के क्षेत्र म उतरना अवश्य बाकी था। वह काय शाह शासनकाल म प्रारम्भ हुआ। हिन्दी और नेपाली का ऐसा

१ 'मल्ल राजादिगेर सभाय नागरी अक्षर हिन्दी भाषा एव उत्तरपश्चिम अचलेर आचार विचार प्रचलित छिल। ताइए अचलेइ हिन्दीर प्रभावे रायबार कहानीर उत्पत्ति एव विकास हइयाछिल। बागला साहित्येर इतिहास खण्ड १, पृ० ६७२।

२ नेपाली भाषा (हाम्रोराष्ट भाषा श्री भवानी भिक्षु) पृ० १५५, स० महानन्द सापकोटा, रत्न पुस्तक भण्डार, काठमाड।

३ नेपाली भाषा (नेपाली हाम्रो मातभाषा श्री पारसमणि प्रधान) पृ० १७०।

4 Nepali Dictionary Turner Introduction

5 Modern Nepal Dr D R Regmi, p 302

६ नेपाली साहित्य को भूमिका यज्ञराज सत्याल, पृ० ४।

घनिष्ठ सम्बन्ध है कि हिन्दी भाषी को काठमाण्डू या केन्द्रीय नेपाल के किसी अन्य प्रदेश में पहुंचने पर वैसा ही लगता है जैसा वहाँ के निवासी को नेपाल के ही हिन्दी क्षेत्र अर्थात तराई आने पर लगता है। बहुधा देखा गया है नेपाली और हिन्दी भाषा का सम्पर्क पन्द्रह दिन समाप्त होते होते उन्हें एक-दूसरे को पूर्णत समझने की क्षमता प्रदान कर देता है।

(६) ववाहिक सम्बन्ध

नेपाल निवासी तथा हिन्दी भाषी भारतीय के बीच उपयुक्त सम्बन्धों के अतिरिक्त भी विभिन्न सम्पर्क स्थापित होते चले आए हैं। उनमें विवाह सम्बन्ध भी एक है। नेपाल के राणा, राजा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आदि लगभग सभी के सम्बन्ध हिन्दी भाषी भारतीयों से हैं। भारत में मूलत न मिलने वाली नेपाली जातियों के विवाह भी हिन्दी प्रदेशों में पटना से बसे हुए नेपालियों से, जिनका आहार व्यवहार आचार विचार भाव भाषा आदि सब कुछ वहाँ के लोगों का सा हो चला है होते चले आए हैं। पटना गोरखपुर लखनऊ पिठौरागढ, अल्मोडा नैनीताल गढवाल देहरादून कांगडा धर्मसाला आदि अनेक हिन्दी भाषी स्थानों में नेपाल से आकर लोग बसे हैं। एक समय था उनमें से बहुत से स्थानों के शासन की बागडोर उनके हाथ में थी। वे कुमाऊं और हिमाचल प्रदेश में अपनी बर्बरता के लिए ही सही—कुछ समय के लिए छाए रहे। चंबे का एक लोकगीत आज भी इस बात का प्रमाण है—

राजा तेरे गोरखियाँ ने लुटया पहाड़
लुटया पहाड़ गोरी रा लुटया पहाड़
तीसा लुटया बरा लटया, लुटया भान्दल किहार
पांगीओ पंगवालीया लुटियाँ लूटो बाँकी नार ॥ राजा० ॥
सुना रुप्या चान्दी लुटया, लुटया जवाहरा
सेजा सुत्ती कामनी लुटियाँ—
लुटिया पहाड़ ॥ राजा० ॥[1]

इस गीत में गोरखा सैनिकों के अत्याचार की बात कही गई है नेपाली जनता की असहृदयता की नहीं। सैनिक भी जब लौट सेना धारण कर उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय जनता के बीच मिल, तब एक बनकर रहे। उनके बीच रक्त सम्बन्ध होना रहा। सम्भवत यही कारण होगा कि कुमाउनी कवि गुमानी के शासन में गोरखाधीन के अत्याचारी सिपाहियों से तंग होते हुए भी उत्त प्रदेशों के निवासियों में से किसी ने अपना स्थान नहीं त्यागा

---

१ चम्बा का पर्वतीय साहित्य मोहन मत्रेय, पृ० १०४ से उद्धृत।

भने ही राज्य कोष को इधर-उधर ले जाते हुए उनके सिर के बाल उड़ गये—

दिन दिन खजना का भारका बोक्ना ले
शिव शिव चुलिमेका बाल न एक कवा
तदपि मुलुक तेरो छोडि नै कोई भाजा
इति वदति गुमानी धन्य गोर्खालि राजा ॥[1]

बहुत प्राचीन समय से नेपाल और वर्तमान हिन्दी भाषी भारत के बीच नाना प्रकार के सम्बन्ध रहे मौर्यों और नेपालियों के बीच विद्वानों ने अनेक सम्बन्ध-सूत्रों का पता लगाया है।[2] समुद्रगुप्त लिच्छिवि दौहित्र होने का गर्व करता रहा[3], नरेन्द्र के पुत्र शिवदेव के साथ भारत के मौखरी राज्य की राजकुमारी का विवाह हुआ था।[4] नेपाल और भारत के राजवंशों के बीच के वैवाहिक सम्बन्ध को अंग्रेज अपने हितों के विपरीत मानते रहे।[5]

नेपाल और भारत की जनता में राजनीति-निरपेक्ष एकता

नेपाल और उत्तरी भारत के सम्बन्ध-स्रोतों पर विचार करते रहे तो हम नित्य कुछ-न-कुछ मिलता ही रहेगा। यथार्थतः हिन्दी भाषी भारत से नेपाल इस तरह सम्बद्ध है कि वे एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। प्रत्येक दृष्टिकोण से वे एक हैं। मातृकाप्रसाद कोइराला का यह कथन 'नेपाल और भारत का जाति और संस्कृति से सम्बद्ध समष्टि रूप में साम्य है न कि एक मात्र भाग का'[6] सर्वथा सही है। यह ठीक है कि नेपाल और भारत के शासकों के बीच कभी मनमुटाव भी रहा किन्तु इन दोनों देशों की जनता सदा एक-दूसरे की बनी रही। मिथिला में जब अर्जुन राज्य करता था उस समय तिरहुत ने मिथिला

---

१ बुइगल स० कमल दीक्षित पृ० १२ से उद्धृत।
२ (क) हमारी सांस्कृतिक निधियों का महान केन्द्र नेपाल वाचस्पति गैरोला (आजकल नवम्बर १९६३) पृ० ११।
(ख) मौर्य र नेपाल (हिमानी १ वर्ष ३ अंक, पृ० ७० ७६)— माधवप्रसाद शर्मा।
३ इलाहाबाद का हरिषेण लिखित स्तम्भ लेख (लगभग सन् ३५० में लिखा) c f Selections From The Sanskrit Inscriptions ed D B Diskalkar part I p 6
४ धर्म एवं संस्कृति मुरलीधर भट्टराय पृ० २५।
५ नेपाल को संस्कृति र स्वातन्त्र्य प्रेम स० जो० सो० शास्त्री पृ० ४०।
६ नेपाल को संस्कृति र स्वा० प्रेम स० जो० सो० शास्त्री, पृ० १२। (लेख—नेपाल और भारत को सांस्कृतिक एकता श्री मा० प्र० कोइराला)।

पर आक्रमण किया और नेपाल के राजा ने तिब्बत की सहायता की।[1] इस युद्ध से नेपाली और भारतीय जनता का कोई सम्पर्क नहीं रहा। यह अर्जुन की अदूरदर्शिता थी कि जिसने कन्नौज जाते हुए तिब्बती प्रतिनिधियों को मारकर तिब्बत से युद्ध मोल लिया। शाह शासनकाल में अंग्रेजी सरकार के नेपाल के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे, किन्तु नेपाली और भारतीय जनता का स्नेह-सम्बन्ध अविच्छिन्न रहा। प्रो० ईश्वर बराल का कथन इस विषय में युक्ति-युक्त है—

आंग्ल प्रशासन का दिन मा भारत का साथ नेपाल को सम्बन्ध शासक को दृष्टि मा उति वाञ्छनीय थिए न परन्तु नेपाली हरू ले आफनो सम्बन्ध भारत सग कहिले पनि विच्छेद गरेनन।[2]

नेपाल और भारत की जनता की एकता को दृष्टि में रखकर ही अंग्रेजो ने सिक्खो के विपरीत छिड़ी लड़ाई में जंग बहादुर राणा की सहायता के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। आर० एन० ड्रू० विशप इस विचारहीन कृत्य मानते हैं।[3] किन्तु नेपाल और भारत के गतागत सम्बन्धो को ध्यान में रखकर अंग्रेजो द्वारा नेपाल शासक की सहायता स्वीकार न करने में राजनीतिक अविचक्षणता नहीं दिखाई देती। नेपाल ने भीमसेन थापा और अमरसिंह थापा के नेतृत्व में मरहठा और सिखो से मिलकर अंग्रेजो को भारत से विदा करने की जो योजना बनाई थी उसे ४० ४२ वर्षों के बाद भी अंग्रेज नहीं भूले थे और सचमुच जब १८५७ में जंगबहादुर भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम को दबाने के लिए छ हजार गोरखाली सैनिकों को लेकर चलने वाला ही था कि एक गुरुंग और उसके साथियों ने उसकी हत्या का षडयन्त्र किया जो असफल रहा किन्तु जिसने बता दिया कि भारत की जनता के ऊपर नेपाली सिपाहियों द्वारा प्रहार नेपाल निवासियों को सह्य नहीं। सिपाहियों को विवशतापूर्वक स्वतन्त्रता-संग्राम को कुचलने में सहायक बनना पड़ा, किन्तु अंग्रेजो को उनके ऊपर विश्वास नहीं था इसलिए जंगबहादुर के ससैन्य सहायतार्थ प्रस्तुत होने पर भी उसकी सेवाओं का उपयोग करने के लिए सहमत होने में अंग्रेजो को पर्याप्त समय लगा। सच्ची बात यह है कि शासकवर्ग चाहे कुछ करे नेपाल और भारत की जनता की एकता प्राचीन है। १९६२ में नेहरूजी के यह आश्वासन देने पर भी कि भारत की सीमा से नेपाल के विरुद्ध कोई सशस्त्र कार्यवाही नहीं होगी नेपाली विद्रोही

---

1 R. K. Mookerji Ancient India 1966 p 368

२ नेपाली संस्कृति प्रो० ईश्वर बराल (नेपाल २०१६ स० त्रि० वि० सा० प० प०, ५)।

3 Unknown Nepal p 102

भारत में आकर वहाँ की जनता की सहानुभूति प्राप्त करते रहे और नेपाल सरकार की पुलिस चौकियों पर छुटपुट आक्रमण कर वापस भारत में चले जाते रहे। इससे किसी शासक के रुष्ट होने की बात ठीक नहीं। नेपाल के भी मिश्र पन्त, पाण्डेय आदि को भारत के भी मिश्र पन्त पाण्डे आदि से पृथक करना किसी के बूते में कैसे हो सकता है? ससुर से दामाद को पिता से पुत्र को भाई से भाई को और माँ से लड़की को अलग करने का प्रयत्न यदि कोई राजकीय व्यवस्था करती है तो वह अपने को छलती है। जो नेपाल है वह भारत है जो भारत है वह नेपाल। विशेषतः भारत का उत्तरी हिन्दी क्षेत्र और नेपाल के दक्षिणी तथा केन्द्रीय भाग लगभग सभी दृष्टियों से एकतान्वित हैं। उनका आपसी सम्बन्ध अच्छेद्य है।

सम्बन्धों का साहित्य पर प्रभाव

उक्त सम्पर्कों और सम्बन्धों का प्रभाव अन्यान्य बातों के साथ साहित्य पर भी पड़ा। बहुत से साहित्यकार तो हिन्दी और नेपाली दोनों में रचना करते रहे जिनमें आधुनिक काल के साहित्यकारों के अतिरिक्त विवेच्य भक्ति-काव्य के कवि गुमानी विद्यारण्य केशरी नानकप्रसाद मिश्र बालाप्रसाद उस्ताद मानदिनदास केदार शमशेर थापा क्षत्री भक्तिकुमारी राणा वसंत बहादुर जागीचा श्रेष्ठ आदि को भी गिनाया जा सकता है। हिन्दी कृष्ण भक्ति के प्रसिद्ध कवि कुम्भनदास जो 'अष्टछाप' के भक्त माने जाते हैं नेपाली ही थे।[1] नेपाली साहित्य का प्रारम्भ ही अपनी पड़ोसी हिन्दी बोलियों के साहित्य के अनुसार हुआ। नेपाल एकेडमी के उपकुलपति श्री बालचन्द्र शर्मा इस बात की पुष्टि करते हुए लिखते हैं—

फेरि यस्ता लेखकहरू ले स्वदेशी साहित्य को नवीन पथमा अग्रसर हुने प्रेरणा पनि धेरै जसो मैथिल भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि का सुन्दर रचना बाट पाए कोले उन्हीं हरू ले जानाजानी पनि यस्ता परकीय प्रभाव लाई अंगालेका छन्।[2]

नेपाली साहित्य का प्रचार करने वाली वे पत्र-पत्रिकाएँ भी जिनके कारण नेपाली साहित्य के भाव और शिल्प बने और निखरे हिन्दी के केन्द्रीय प्रदेश बनारस और देहरादून से निकलती रहीं। उनका विवरण इस तरह है—

---

1 अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय डा० दीनदयालु गुप्त पृ० १३१।
2 भानुभक्त बालचन्द्र शर्मा पृ० १०८।

पत्रिका का नाम	संवत	स्थान
सुन्दरी	१६६३	बनारस
माधवी	१६६५	बनारस
गोरखा खबर	१६७०	देहरादून
चन्द्र	१६७१	बनारस
गोखाली	१६७२	बनारस
जन्मभूमि	१६७६	बनारस
गोखा संसार	१६८३	देहरादून
तरुण गोर्खा	१६८४	देहरादून

निष्कर्ष यह है कि नेपाली और हिन्दी साहित्य की धमनियों में एक ही रक्त बहता है। उनकी साँसें एक ही हृदय से चलती हैं। प्रदेश भिन्नता के कारण उनकी आत्मा में परिलक्षित परिवर्तन सर्वथा नगण्य है।

अध्याय दो

नेपाली और हिन्दी के भक्तिकाव्य की ऐतिहासिक विवेचना तथा तुलनात्मक विशेषताएँ

राजनीतिक एव सामाजिक स्थितिया और हिन्दी भक्तिकाव्य

(क) जिस समय हिन्दी भक्ति साहित्य का निर्माण हुआ उस समय का भारतीय राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल थी। ईसवी तेरहवी शताब्दी से मुसलमान भारत म आधिपत्य जमाने की प्रवृत्ति दिखाने लग थ। इससे पहले के मुसलमान प्राय लुटेरे दिखाई दते है। अलाउद्दीन खिलजी मुहम्मद तुगलक आदि ने केन्द्रीय शासन को दृढ करना चाहा किन्तु उनकी उस इच्छा के विपरीत चौदहवी पन्द्रहवी शताब्दी म बहुत से प्रादेशिक राज्य उठ खडे हुए। १३२० ई० म गयासुद्दीन तुगलक न बगाल महाराष्ट्र और आन्ध्र तक अपने राज्य को फैलाकर केन्द्रीय शासन का विस्तार किया। अलाउद्दीन के मरणोपरान्त हम्मीर सीसोदिया स्वतन्त्र हो गया। १३३६ ई० म विजयनगर के हिन्दू राज्य का उदय हुआ। मदुरा और बगाल के सूबेदार स्वतन्त्र सुलतान बन बैठ। दक्षिणी भारत म बहमनी राज्य स्थापित हुआ। कश्मीर म शाहमीर ने सत्ता अपने हाथ म ले ली। चौदहवी शताब्दी के उत्तरार्ध म केन्द्रस्थ फिरोज तुगलक ने विद्रोहो को दबाने का प्रयत्न तो किया किन्तु संघर्ष चलते रहे और उसके बाद प्रान्तीय शासक सर्वथा स्वतन्त्र हो गये। १३९८ म तैमूर ने दिल्ली से तुर्क शासन को मिटा दिया।[1]

पन्द्रहवी शताब्दी म प्रान्तीय शासक खूब चढे। इसी समय महाराणा लाखा चूडा कुम्भा के कारण राजस्थान की खूब उन्नति हुई। मालवा, गुजरात बगाल और कश्मीर म स्वतन्त्र मुसलमानी रियासतें थी। जौनपुर म शर्की सुलतान का राज्य खडा हुआ। तिरहुत म कामेश्वर का ब्राह्मण राज्य रहा।

---

१ द्रष्टव्य—भारत का इतिहास डा० ईश्वरी प्रसाद तथा भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास एस० आर० शर्मा।

उसका पुत्र कीर्तिसिंह और पौत्र शिवसिंह स्वतन्त्र राजा रहे। गहड़वाल वंशज बुंदेले सरदार भी स्वतन्त्र होकर राज्य करते थे। दक्षिण की बहमनी सल्तनत चार भागों में विभक्त हो चुकी थी। १४५१ में पठानों ने दिल्ली ले ली और वे बिहार तक बढ़े भी किन्तु वे साम्राज्य स्थापित न कर सके। १६वीं शताब्दी में तुर्कों की नई बाढ़ लेकर बाबर भारत आया। दिल्ली का पठान राज्य निर्बल था। मेवाड़ और विजयनगर के सांगा और कृष्णदेवराय पर्याप्त सबल थे। इसीलिए बाबर को दिल्ली के अफगानों को परास्त करने में उतनी कठिनाई नहीं हुई जितनी सांगा को पराजित करने में। यदि बाबर के पास अच्छे आग्नेयास्त्र न होते अथवा सांगा के पास भी होते तो क्या पता कि बाबर के लिए सांगा को पछाड़ना सम्भव होता या नहीं।[1] पठानों ने जब भी मुगलों का विरोध चालू रखा। शेरशाह ने उनके छक्के छुड़ा दिए। प्रजा और सैनिकों का प्रिय बनकर उसने वह काम कर दिखाया कि पुर्तगालियों और मुगलों के आग्नेयास्त्र भी उसे रोक नहीं सके। हुमायूँ उससे भागा भागा फिरा किन्तु समय ने पलटा खाया। शेरशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी और हुमायूँ के योग्य एवं साहसी पुत्र अकबर के कारण पासा पलट गया। अकबर के समय मुगलिया साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में भी वह स्थिति बनी रही। महाराणा प्रताप ने अल्पसाधन होते हुए भी मुगल साम्राज्य से लोहा लिया। वह जंगलों की धूल छानता रहा किन्तु उसने अधीनता स्वीकार नहीं की। प्रताप के लड़के अमरसिंह ने १६ साल तक लड़ने के पश्चात् अन्त में हार मान ली। १७वीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड में चम्पतराय तथा महाराष्ट्र में शिवाजी ने स्वतन्त्रता-संग्राम जारी रखा।[2]

भक्तिकालीन राजनीति भारतीय समाज के लिए दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुई। हुसैनशाह बंगाली शेरशाह अकबर सिकन्दर बुतशिकन के लड़के जैनुलाबिदीन जैसे कतिपय शासकों को छोड़कर शेष मुसलमानों ने भारत के निवासियों के ऊपर समय-समय पर अत्याचार करने में कमी नहीं की। ईसा की बारहवीं शताब्दी में ही जब मुसलमानों के आक्रमण भारत पर हुए तो डा० केन के अनुसार ओदन्तपुर और विक्रमशिला के मठ विनष्ट कर दिए गए और वहाँ से भिक्षुओं को मार दिया गया। बचे हुए भिक्षु अन्य देशों को भाग गए। श्री हरिप्रसाद शास्त्री के कथनानुसार मुसलमान आक्रमणकारियों ने मन्दवानों बौद्ध मठों को ध्वस्त कर दिया। उनकी सम्पत्ति सैनिकों के उपयोग में आई। लामा की

---

१ मुगलकालीन भारत आचार्य आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव पृ० १६ २८, २६ ३०।
२ इस्लाम—भारत का इतिहास डा० ईश्वरीप्रसाद।
३ मध्युगम आर बुद्धिज्म डॉ० केन पृ० १३४।

संख्या में भिक्षुओं का वध हुआ।[1] यह प्रवृत्ति आगे भी चालू रही। गयासुद्दीन बलबन ने जीवित हिन्दुओं की खाल उतरवाई। उनमें भूसा भरकर फिर उन्हें यत्र-तत्र खड़ा किया। आठ वर्ष से अधिक आयु के बहुत से पुरुषों का वध किया, स्त्रियों को गुलाम बनाया और अपने राज्य में किसी पद पर किसी हिन्दू की नियुक्ति नहीं की।[2] फिरोज तुगलक ने हिन्दुओं पर जजिया लगाया, बहुत से मन्दिर तोड़े एवं ब्राह्मण को तो महल के सामने जीवित जला दिया गया।[3] अनेक मुसलमान शासकों ने नये मन्दिरों के निर्माण पर ही प्रतिबन्ध नहीं लगाया बल्कि पुरानों की मरम्मत करने पर रोक लगा दी। सिकन्दर लोदी ने मन्दिर नष्ट किए। सिकन्दर बुतशिकन ने मूर्तियाँ भग्न कीं। अलाउद्दीन खिलजी के और काम चाहे बुरे न हों किन्तु उसकी सर्वग्रासिनी वासना के कारण चित्तौड़ की राजमहिषी को जौहर में जलना पड़ा। गुजरात के राजा कर्ण को परास्त कर उसकी रानी से विवाह करना अलाउद्दीन का ऐसा कार्य था जिसने हिन्दुओं को सिखाया। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार उस युग में हिन्दुओं का अस्तित्व ही खतरे में था। इस समय मुसलमानों के भय से हिन्दू-कन्याओं का विवाह अल्पावस्था में होने लगा। जाति पाँति तथा विवाह सम्बन्धों में कड़ाई बरती जाने लगी।[4] यह ठीक है कि हिन्दुओं के घर मुसलमान कन्याएँ और मुसलमानों के घर हिन्दू कन्याएँ भी विवाहित होकर आई, किन्तु ऐसे विवाह अपवाद-स्वरूप ही देखे जाते हैं। उनकी संख्या अत्यल्प रही।[5]

जनता की अवस्था किसी तरह अच्छी नहीं थी। बादशाहों और मनसबदारों की पौबारह थी। वे विलासी बनते जाते थे। छुआछूत की भावना दृढ़तर बनती जा रही थी। जन्मना ऊँच नीच का भेदभाव विद्यमान था। इस दोष से मुसलमान भी बचे नहीं रहे। श्री रामबहोरी शुक्ल इसका कारण खोजते हुए लिखते हैं "इस्लाम में जन्म और वर्ग से कोई ऊँच नीच नहीं माना जाता, परन्तु वहाँ भी पैगम्बर की पुत्री के वंशज अपने को औरों से श्रेष्ठ समझने लगे। फिर पैगम्बर के देश अरब वाले अन्य देशों के मुसलमानों से श्रेष्ठतर क्यों न हों? ऐसे ही इस देश में आए शासकवर्ग के तुर्कों मुगलों आदि का यहाँ के मुसलमानों

1 The Modern Buddhism and its Followers in India N N Vashu की भूमिका में पृ० ९१, डा० हरप्रसाद शास्त्री—हि० क० न० प्र० च०।

२ भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास एम० आर० शर्मा, अनु० सत्यनारायण दुबे। पृ० ९३

३ भारत का इतिहास ईश्वरीप्रसाद पृ० १६५ (१९४६)।

४ हि० सा० का आ० इ०, पृ०१९१।

5 History of the Freedom Movement in India Dr Tara Chand p 133 4

में अपने को श्रेष्ठ समझना स्वाभाविक ही है।[१]

(ग) अब यह देखना है कि उक्त राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ भक्ति-साहित्य के उदय के लिए कहाँ तक उत्तरदायी हैं। जहाँ तक राजनीतिक स्थितियों के प्रभाव का प्रश्न है यह इस युग के साहित्य में बहुत कम पड़ा। बिलकुल न पड़ा हो ऐसी बात नहीं क्योंकि अधिकांश भक्त कवियों द्वारा अपने नायक को आदर्श भूपति या जननायक का रूप देना तथा उनकी राजकीय व्यवस्था को दिखाना अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन व्यवस्था की कटु आलोचना सिद्ध होती है। कहीं कहीं भक्त कवियों ने निन्दा स्तुति का प्रत्यक्ष ढंग भी अपनाया है। प्रेममार्गी जायसी तो शेरशाह की राज्य व्यवस्था की खुले शब्दों में प्रशंसा करते हैं।[२] तुलसीदास भी खुले शब्दों में ही तत्कालीन राज्य-व्यवस्था की निन्दा करते हैं—

> राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
> नीति प्रतीत प्रीति परिमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है।
> आश्रम बरन धरम विरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
> प्रजा पतित पाखंड पाप रत अपने अपने रंग रई है।[३]

यह सब होते हुए भी राजकीय अव्यवस्था तथा उथल पुथल को ठीक करने में कवियों की वाणी असमर्थ सिद्ध हुई है। भक्त कवियों की रचनाओं को पढ़कर भक्ति का संचार तो कितने ही पुरुषों के हृदय में हुआ किन्तु राजनीतिक चेतना का उदय कदाचित् ही किसी पुरुष में उस समय हुआ होगा। इसका कारण है इस ओर कवियों के मनोयोग का अभाव। यथार्थतः भक्त कवियों को राजनीति से कुछ नहीं लेना था। इसलिए जो लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हिन्दी भक्तिकाल को राजनीति ने प्रभावित नहीं किया[४] उनका विचार पूर्णतः नहीं तो अधिकांशतः सही है। भक्तिकालीन उथल पुथल और अत्याचारपूर्ण राजनीतिक वातावरण में राष्ट्रीय शक्तियों को उभारने के स्थान पर काव्य व्यक्ताव्यक्त ईश्वर के गुणानुवाद करने लगा—यह साहित्यिक दायित्व से पलायन है। भक्तिकाव्य के पीछे यदि तदनुकूल सांस्कृतिक परम्परा न होती तो उस विक्षुब्ध वातावरण में उसकी रचना सम्भव न होती।

भक्ति साहित्य के पीछे शासकीय अत्याचारों के बीच जनता की निराशा

---

१ हि० सा० का उ० और वि० रा० च० शुक्ल पृ० ६४।
२ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५।
३ तुलसी ग्रन्थावली पृ० ५३३।
४ हिन्दी वाङ्मय का विकास—डॉ० सत्यदेव चौधरी पृ० ८४।

को मानना[1] ठीक नहीं है। इस समय के कवि राजनीतिक परिस्थितियों से सही रूप में प्रभावित होते तो उनकी वाणी राष्ट्रीयता के उद्बोधन के लिए ओजमयी होती। जब जनता निराश होती है तभी साहित्यकार उसमें आशा का संचार करता है। शत्रुओं से लोहा लेने में बहुत-सी देशीय सत्ताओं के क्रियाशील रहते हुए कवियों को उनको उत्साह बँधाना चाहिए था। ऐसा नहीं हुआ। यह भी नहीं कहा जा सकता कि भक्तिकाल के कवि कायर थे इसलिए उनमें विपरीत प्रतिक्रिया हुई। कवि कायर नहीं होता है और विशेषतः इस युग के कवियों को कायर मानना एक दुरारूढ़ कल्पना है। जिन्हें सीकरी से कोई[2] काम नहीं, जो किसी से इसलिए नहीं डरते हैं कि राम के रक्षक होते हुए कोई उन्हें मार नहीं सकता है[3] जिन्होंने सिकन्दर लोदी जैसे अत्याचारी शासक के सामने घुटने नहीं टेके और शासित एवं सहिष्णु हिन्दुओं को ही नहीं, असहिष्णु शासक मुसलमानों को भी उनके धार्मिक विश्वासों के लिए खरी खोटी सुनाई।[4] जो अपनी रचना में फकीरों द्वारा राजा के गढ़ पर चढ़ाई करवाते हैं,[5] उन्हें भयभीत मानना संगत नहीं। भक्तिकाल के कवि निर्भीक और निस्पृह थे। भक्तिकाल के कवि पहले भक्त रहे कवि पीछे। प्रायः ये सभी सन्त साधक थे—भगवान के दरबार में जाने के इच्छुक, इस जगत को मिथ्या मानने वाले। माया में सज्जन और दुर्जन, सद्गति और दुर्गति, प्रजापालन और प्रजाशोषण—सब-कुछ स्वाँग है। इन भक्तों की दृष्टि में विवाह और शवयात्रा में कोई अन्तर नहीं। सन्तों ने जो बाह्याडम्बर का विरोध किया उसके मूल में विजित और विजेता के बाह्यासमानताजनित भेद भाव को मिटाकर वैमनस्य दूर करने की भावना नहीं है, प्रत्युत वह विरोध बहुत पुरानी परम्परा का एक अंग है। सिद्धों और नाथों के साहित्य में भी वह यत्र तत्र मिलता है।[6] सहज साधना पर बल इसलिए नहीं दिया गया है कि उससे हिन्दू और मुसलमानों के झगड़े मिट जायेंगे।

१ हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास रामकुमार वर्मा, पृ० १६२, हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६० (छठा संस्करण)।
२ कुम्भनदास का पद "सन्तन को कहा सीकरी सो काम?"—हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७८ से उद्धृत (सं० २००७)।
३ कौन की त्रास कर तुलसी जो पै राखि है राम तो मारि है को रे—तुलसीदास—तुलसी ग्रन्थावली (कवितावली) पृ० २१३।
४ हि० सा० का आ० इ० (कबीर), पृ० २३३।
५ पदमावत (गढ़ छेका खण्ड) जायसी।
६ द्रष्टव्य—रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—त्रिभुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', पृ० ५३।

सांस्कृतिक परम्परा

हिन्दी के भक्ति साहित्य के निर्माण में तत्कालीन राजनीति तथा सामाजिक वातावरण भले ही कारण रहे हों किन्तु इसका आविर्भाव आकस्मिक नहीं माना जा सकता। इसके पीछे प्राचीन काल से चली आती हुई एक सांस्कृतिक विचारधारा विद्यमान है। भारतीय धर्म-साधना क्रमशः विकसित होती हुई एक युगाबद्ध शृंखला है जो भौतिक उत्थान पतन को कहीं कहीं स्पर्श करती और कहीं तिरोहित भाव से चलती रही।

(क) भक्ति के बीज वैदिक समय में बोये गए। पीछे उसी भक्ति का नाना रूपों में विकास हुआ। डॉ० मुन्शीराम शर्मा के अनुसार मूर्ति पूजा अवैदिक है।[1] अपने मत की पुष्टि में वे श्वेताश्वेतरोपनिषद को उद्धृत करते हैं। मुझे लगता है मूर्तामूर्त सगुण निर्गुणादि प्रभावित सभी उपासनाओं का मूल वैदिक साहित्य में है। श्वेताश्वतरोपनिषद के वाक्य 'न तस्य प्रतिमा अस्ति'[2] का तात्पर्य परमतत्त्व को उपमाविहीन सिद्ध करना है। इसे सिद्धान्तवाक्य भी माना जा सकता है। साधना के लिए वैदिक साहित्य उस अनिर्वचनीय तत्त्व को नाना रूपों में झाँकता है और तत्तद्रूपों की स्तुति करता है। इन्द्र वरुण उषा पूषा उसी के नाम हैं। यदि इन्हें प्रकृति के उपकरण मात्र माना जाय तो भी वैदिक भक्ति की प्रतिमा परकता में कोई व्याघात नहीं पड़ता। आराध्य चाहे कोई हो उसकी स्थूल कल्पना वेदों में पाई जाती है। यहाँ तक लाक्षा भी यदि उसे केवल लाख ही माना जाए—वैदिक ऋषि की भक्ति की अधिकारिणी बनती है।[3] उसे परमात्मशक्ति मानने पर तो ऋषि कृत रूपकल्पना दर्शनीय है ही। वैदिक देवता के रूपविधान में ऋषियों ने उसे स्थान स्थान में अवयवपूर्ण एवं आकारवान चित्रित किया है। अवश्य ही वैदिक भक्ति में स्तुति के अतिरिक्त अर्चनादि अन्य विधाएँ भी विद्यमान थीं या नहीं—इसके विषय में कुछ कहना कठिन है। इसलिए मूर्तिपूजा के अन्तर्गत यदि स्तुति को गृहीत न किया जाय तभी डा० शर्मा के उक्त कथन की संगति बैठती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के साथ-साथ भक्तिकाण्ड की प्रचुर सामग्री विद्यमान है।[4] उपनिषदों में भक्ति के अंगों का महत्त्व वर्णित है। श्वेताश्वतरोपनिषद[5]

---

१ भक्ति का विकास—डा० मुन्शीराम शर्मा पृ० १८९।
२ श्वेताश्वतरोपनिषद ४ १९।
३ अथर्ववेद काण्ड ५ सूक्त ५ की छठी ऋचा—हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि।
४ भक्ति का विकास—डा० मुन्शीराम शर्मा पृष्ठ २०८, २३८।
५ यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ श्वेताश्वतरोपनिषद ६ २३।

का भक्ति शब्द सर्वविदित है। अवश्य ही उस समय की भक्ति म भक्तहृदय के अनुराग का वह रूप नही मिलता जो पीछे देखा जाता है किन्तु प्रेमपूर्ण प्रवर्द्धित भक्ति का मूलघु स्रोत वनन की क्षमता उसमे विद्यमान है। श्री वलदेव उपाध्याय तो वन्कि उपासना म अनुराग का सवथा अभाव मानते हुए भी भक्ति का वदिक काल म ही प्रसूत मानते हैं।[1]

महाभारत काल म अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई चतुर्व्यूही कल्पना का उदय हुआ जिसको पाचरात्र मत कहा गया। उसके अनुसार वासुदेव जीव, मन और अहकार म उत्तरोत्तर जन्य जनक सम्बन्ध माना जाता है।[2] प्रायमिक वौद्धा के निरीश्वरवाद न इस भक्ति आन्दोलन को जितना ही धक्का पहुचाया पीछे के बौद्धा ने बुद्ध की प्रतिमाएँ पूजकर उसका उतना ही हित किया। वस्तुत भक्ति आन्दोलन के कारण ही बौद्ध धम प्रतिमा-पूजक वन वठा। जनियो म मूर्तिपूजा पहले से चली आ रही थी। इस तरह बौद्ध और जन धर्मों को आत्मसात करन की क्षमता भक्ति सम्प्रदाय मे विद्यमान थी। वुद्ध को अवतार मानकर बौद्धो को अपनी ओर खीचन की मनोरम भूमिका भी भक्ना न तैयार कर ली। ऋषभदेव को भी श्रीमदभागवत म विष्णु के अवतारों म गिनाया गया है जो डा० रामकुमार वमा के शब्दो म सम्भवत जन धम के तीर्थकर नाते होते हैं।[3] उसस जैनियो के लिए भक्ति आन्दोलन म प्रवश का माग प्रशस्त हो गया। बौद्ध और जन धम हिंसा प्रधान कमकाण्ड की प्रतिक्रिया म पदा हुए थे। भक्ति आन्दोलन मे हिंसा प्रधान कम त्याज्य रहे। परिणामस्वरूप अपनी विपन्नावस्था मे भक्ति सम्प्रदाय में उनके विलीन होने की सहज सम्भावना थी।

गुप्त युग म भक्ति का चरम विकास हुआ। गुप्त शासक भागवत धम म विश्वास करते थे। इसी समय पाचरात्र सहिताएँ बनी। सगुण ब्रह्म आराध्य बना, भक्ति के नाना विधान चले। इसी भक्तियुग म दक्षिण क आलवारो और आचार्यों तक का समावश हो जाता है। इसी युग म बौद्धो का प्रच्छन्न रूप से भक्ति-सम्प्रदाय म प्रवेश हुआ। बौद्ध धम के विकास का इतिहास बताता है कि ईसा की पहली शताब्दी मे बौद्ध धम के दो भेद हुए—हीनयान और महायान। महायान निरन्तर विकृत या विकसित होता गया, मन्त्रयान वज्रयान सहजयान को पार करता हुआ या तो कालचक्रयान के रूप म सवथा अनमिल वनकर लुप्त हो गया या उसका उन सम्प्रदायो मे विलय हो गया जो उसे अपने म पचा लेन की क्षमता रखत थ। जिस समय बौद्ध धम सहजयान की स्थिति म आया उस

१ भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय (नागरी प्रचारिणी सभा) प० ६५।
२ मध्यकालीन धर्मसाधना—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प० ३६।
३ हि० सा० का आ० इ० रामकुमार वर्मा प० ४६६।

समय भक्ति आन्दोलन में माधुर्योपासना जोर पकड़ने लगी थी ।[१] विश्वास किया जाता है कि सहजिया वैष्णवों के ऊपर सहजयान का प्रभाव ही नहीं बल्कि सहजयानी भावना ही उनकी मधुर उपासना बन गई । चाहे वैष्णवी मधुरोपासना पहले आई और अपने अनुकूल पाकर बौद्धों ने उसे अपना लिया या बौद्धों ने ही वैष्णवी भक्तिमार्ग में चलकर अपने सहजिया चरणचिह्नों से उसे अंकित कर दिया यह निश्चित है कि देश के उन बौद्धों को, जो कालचक्रयान को अपनाकर अपनी मूल सांस्कृतिक परम्परा को सर्वथा त्याग चुके थे छोड़कर प्रायः सभी भारतीय बौद्ध भक्ति सम्प्रदायों में प्रविष्ट हो गए । यथार्थतः कालचक्रयान भी निचले स्तर का भक्ति सम्प्रदाय ही है जिसमें भूत प्रेतादि की पूजा होती है ।

वह समय भी था जब बौद्ध धर्म की भारत में तूती बोलती थी । युवान चुआंग के अनुसार बंगाल में ७वीं शती में एक लाख भिक्षुओं के दस हजार संघाराम थे । हरप्रसाद शास्त्री इससे अनुमान लगाते हैं कि उस विशाल भिक्षु सम्प्रदाय के निर्वाह के लिए कम से कम एक करोड़ बौद्ध गृहस्थियों की आवश्यकता थी ।[२] इतने सब बौद्ध कहाँ चले गए जिनका पता पीछे के मुसलमान इतिहासकारों की बात छोड़िए अलबरूनी तक को नहीं लगा । डा० एडवर्ड सी० सचाउ उसके वर्णन का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि अलबरूनी ने ब्राह्मण धर्मावलम्बी भारत के दर्शन किए बौद्ध भारत के नहीं । उनके विचारानुसार अलबरूनी सा विचक्षण व्यक्ति बौद्ध धर्म के विषय में न जाने या अल्पजाने—यह एक ध्यान देने योग्य तथ्य है ।[३] इससे यही अनुमित होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक बौद्ध धर्म पश्चिमोत्तर भारत से सर्वथा विदा ले चुका था । अलबरूनी ने प्रत्यक्षद्रष्टा के रूप में बौद्धों का वर्णन नहीं किया । क्या स्वामी शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में हारकर बौद्धों ने अपने दृढ़मूल विचारों को सर्वथा त्याग दिया या वे सब के सब पूर्वोत्तर भारत की ओर चले गये और वहाँ भी रहे बारहवीं शताब्दी तक ही[४] जब तक कि उन्हें मुसलमानों ने तहस नहस नहीं कर

१ द्रष्टव्य—रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र माधव पृ० ७०, भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म नर्मदेश्वर च० पृ० २६ ।

२ The Modern Buddhism and its Followers in Orissa N N Basu भूमिका हरप्रसाद शास्त्री हिन्दी रूपान्तर, भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म म० प्र० च०, पृ० ६ ।

३ Alberuni s India ed Dr Edward C Sachan p 5

४ The Modern Buddhism and its Followers in Orissa N N Basu रूपान्तर भक्तिमार्गी बौद्ध-धर्म (श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी) । भूमिका श्री हरप्रसाद शास्त्री, पृ० १६ ।

दिया ? डॉ० आर० सी० मित्रा की गवेषणा १५६० ई० तक बौद्धों की अवस्थिति उड़ीसा में मानती है[1] जिससे इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि बौद्धों ने पहले तो भारत के दक्षिण पश्चिम और पश्चिमोत्तर प्रदेश छोड़कर उसके पूर्वोत्तर भाग में शरण ली फिर वहाँ जब उनके ऊपर अत्याचार हुए तो वे इधर उधर भागे, कुछ लोग भक्ति सम्प्रदायों में दीक्षित हो गए और कई एक बौद्ध विश्वासों को प्रधानतः मानते हुए भी हिन्दू बनकर १६वीं शताब्दी तक जगन्नाथ की शरण में उड़ीसा में पड़े रहे जो एक अन्वेषी की दृष्टि में तो बौद्ध थे किन्तु ऊपरी दृष्टि में हिन्दू ही लगते रहे होंगे। यही कारण है कि तत्कालीन तथा पीछे के इतिहासकारों को भारतीय बौद्धों का कुछ पता नहीं लगा। श्री हरप्रसाद शास्त्री का विचार है—

'मुसलमान इतिहासकार बौद्ध धर्म का कहीं उल्लेख नहीं करते। मुगलकाल के इतिहासकार इनका नाम तक नहीं जानते हैं। भारत में अंग्रेजी आधिपत्य के इतिहासकार शायद ही बौद्ध धर्म की ओर संकेत करते हैं।'[2] सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तो कोई भी विद्वान भारत में बौद्धों की अवस्थिति नहीं मानता है।

प्रधान प्रधान व्यक्ति या भिक्षु या तो आक्रमणकारियों द्वारा मार दिये गए या वे अपने ग्रन्थ लेकर नेपाल चले गए।[3] किन्तु क्या हुआ उस अपार जनसाधारण वर्ग का ? वे तत्कालीन प्रचलित अथवा उनके द्वारा ही सृष्ट भक्ति पंथों में चलने लगे। उनमें एक प्रबल पंथ नाथों का था जो उस प्रयत्न की सफलता को प्रकट करता था जिसे ब्राह्मण-बौद्धों को मिलाने के लिए सर्वप्रथम नागार्जुन ने मध्यमार्ग के रूप में चालू किया था। नाथपंथ वह योगमार्ग था जिसमें योग और भक्ति का अद्भुत मिलन सम्भव हुआ। यह योग पतंजलि द्वारा उपदिष्ट योग से प्रभावित था यद्यपि श्री हरप्रसाद शास्त्री की दृष्टि में उससे निम्नकोटि का था।[4] डॉ० वडेल के अनुसार पाँचवीं शताब्दी के लगभग पतंजलि के सिद्धान्त बौद्ध धर्म में भी समाविष्ट हुए और वह भारतीय साधना के नाथपंथ में पदार्पण करने के काल तक स्वाभाविक विकास क्रमानुसार उसके समीप आ चुका था।[5] बौद्ध किस तरह उदार बन चुके थे कि नेपाल के बौद्धों ने मत्स्येन्द्रनाथ को, जिन्हें

---

१ The Decline of Buddhism in India R C Mitra p 90
२ भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी मूल लेखक न० ना० वसु भूमिका हरप्रसाद शास्त्री, पृ० ५६।
३ द्रष्टव्य—हिन्दी रूपान्तर 'भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म' नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृ० १४३।
४ वही, पृ० ११।
५ Buddhism of Tibet, p 128

माना जाने लगा। वह अभ्रक और पारद को परस्पर मिलाकर तैयार किए गए रसायन की तरह मृत्यु और दारिद्र्य नाशक कहा गया है।[1] जो अन्तर्योग प्रधान सहज मार्ग में विश्वास करते थे, उन नाथों के मत का आगे चलकर और विकास हुआ। वैष्णव संस्कृति की ओर झुकाव तो नाथपन्थ में भी देखा जाता है।[2] किन्तु वहाँ आराध्य शिव और शक्ति ही बने रहे। उससे विकसित नवीन सम्प्रदायों में आराध्य प्रधानतः विष्णु या विष्णु के अवतार बन गए और उनकी संस्कृति सर्वात्मना वैष्णव बन गई। सहज के भौतिक अर्थ का सर्वथा परित्याग करने के कारण[3] पूर्ववर्ती सम्प्रदायों की जिनमें आध्यात्मिकता की ओट में किसी-न किसी रूप में भौतिकता भी पलती रही—तुलना में उन्हें 'सन्तमार्ग' माना जाने लगा और साधकों को उनके शुद्धाचरण के कारण वास्तविक सन्त समझा जाने लगा। इस तरह सन्तमत बौद्ध और ब्राह्मण धर्म का एक सुपरिष्कृत रूप है जो भक्ति में आगे तो भक्ति में पीछे रहा, जिसमें बाह्य आडम्बरों को त्यागकर अन्तर्योग साधना को अपनाया गया और हम देखते हैं कि सन्तों द्वारा किए बाह्याडम्बर-विरोध का भी कारण सर्वांशतः तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ नहीं थीं। वह भारतीय सांस्कृतिक धारा के स्वाभाविक प्रवाह के परिणामस्वरूप हुआ। आडम्बरहीनता सार्वकालिक मार्ग है। सन्त युग ही नहीं, अन्य युगों में भी उस की आवश्यकता रही और आगे रहेगी, अतएव उसे सन्त साहित्य में पाकर उस कारण उस युग की ही अपेक्षा सिद्ध करना संगत नहीं है।

(ख) भक्ति आन्दोलन की उक्त धारा में योग की प्रधानता रही, तन्त्रों के प्रभाव में आकर नाथों में शक्तियुत शिव उपास्य रहे। सन्तों ने इस धारा का योग उससे किया जो भक्ति की मूल धारा रही जिसे वैष्णव धारा कहना सुविधाजनक है जो कभी कुछ काल के लिए मन्द भले ही पड़ी हो, किन्तु जिसका सर्वथा लोप भारत भूमि से कभी नहीं हुआ। चित्र शिखण्डियों द्वारा प्रोक्त भक्तितन्त्र जब धूमिल पड़ा तो श्रीकृष्ण ने स्वायम्भुव युग के भगवद्भक्त तपस्वी नारायण ऋषि को परमपुरुष के पद पर प्रतिष्ठित कर भक्ति को पुनरुज्जीवित किया। प्रारम्भिक बौद्धों और जैनियों ने उसे फिर पछाड़ा, किन्तु समय आने पर ये दोनों धर्म इसमें खो गये। उन्होंने इसे नये रूप प्रदान किये। बौद्ध धर्म की कहानी कही जा चुकी है। जैनियों के सम्प्रदाय भी अन्यान्य सम्प्रदायों की भाँति

१ अभ्रक तव बीजं तु मम बीजं तु पारद।
अनयोर्मेलनं देवि! मृत्युदारिद्र्यनाशनम्। सर्वदर्शन संग्रह पृ० ८१।

२ द्रष्टव्य—मध्यकालीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास डाक्टर रामरतन भटनागर पृ० ३०।

३ सहज सहज सब कोइ कहै सहज न चीन्है कोइ।
जिन सहजै विषया तजी सहज कहीजै सोइ। कबीर ग्रन्थावली पृ० ३६।

नाथ सम्प्रदाय म, जिसे योग सापनापरक भक्तिमार्ग का प्रारूप कहना चाहिए विलीन हो गये। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार पारस और नेमि सम्प्रदाय जिन्हें डॉ० प्रेमसागर जैन बाईसवें तथा तेईसवें तीर्थकरों के नाम पर प्रचलित मानते हैं, नाथ सम्प्रदाय म अन्तर्भुक्त हुए।[1] जो सम्प्रदाय बचे उन्होंने निष्कल' ही नहीं सकल' के चरणों म भी श्रद्धा पुष्प चढ़ाए।[2] जैन भक्तिकाव्य साम्प्रदायभाव पूर्ण भक्ति का उत्कृष्ट नमूना है।

विक्रमीय छठी शताब्दी के बाद भक्ति म तान्त्रिकों का प्रभाव पड़ा।[3] परिणामस्वरूप विष्णु और उनके अवतारों के स्थान पर शिव आराध्य बने। इसम योग का समावेश होता गया। वैष्णवी भक्ति धारा मन्द पड़ी, किन्तु उसका पुनरुत्थान दक्षिण के आलवार भक्तों द्वारा हुआ। जब उसका प्रवाह भी धीमा हुआ तो भक्ति के आचार्यों द्वारा उसका वृन्दावनादि म फिर प्रचार हुआ।[4] इसे सहज साधना ने कहीं सीधे भक्तिधारा के माध्यम से कहीं सीधे प्रभावित किया। यह पहले कहा जा चुका है कि भक्ति म सहज साधना बौद्ध मार्ग तथा उससे विकसित या विकृत सम्प्रदायों द्वारा लाई गई। इसलिए जिस क्षेत्र में सहजयान जितना अधिक प्रचार म आया वहाँ प्रबल विरोध का सामना करने पर उसके अनुयायियों के भक्तिपथ म प्रविष्ट हो जाने से तत्तत्पथ म माधुर्योपासना उतनी ही अधिक देखी गई। बगाल म सहजिय बौद्ध अधिक और विनाशक्रम के अन्त तक रहे तो गौडीय वष्णवों म मधुर उपासना पराकाष्ठा पर पहुच गई। हिन्दी क्षेत्र म उस समय बौद्धों की विरलता रही जब बौद्ध धम को भक्तिपथ म अन्तर्भुक्त होना पड़ा। परिणामस्वरूप हिन्दी भक्तिकाव्यों म मधुर उपासना अपेक्षाकृत कम देखी जाती है। नेपाल के भक्ति-साहित्य में मधुर उपासना वहाँ सहजयानियों की संख्या अधिक होने के कारण अधिक होनी चाहिए थी, किन्तु उसम उसकी कमी इस बात को प्रमाणित करती है कि वहाँ बौद्धों को विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। वहाँ तो भारत के बौद्धों तक को

---

१ हिन्दी जनभक्ति-काव्य और कवि (भूमिका, पृ० ५) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६४।

२ वही, पृ० २।

३ मध्यकालीन धर्मसाधना हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २५।

४ उत्पन्ना द्रविणे साहं वृद्धि कर्णाटके गता। क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतांगता। पद्मपुराण, अध्याय १९८, श्लोक ५४, ५६। आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना।

मुसलमानो द्वारा खदेडे जाने पर शरण मिली।[1] वहाँ हिन्दू धम म बौद्ध-धम का विलयन नही, बल्कि दोनो का समन्वय हुआ है जिसम दोनो धम सामान्य विशेषताओ को प्रकट करते हुए भी अपने स्वतन्त्र नाम को अक्षुण्ण रखे हुए हैं। इस युग की हिन्दी गेत्रीय भक्ति मे एक विशेषता और देखी जाती है—वैदिक विधान की सम्पन्नता जो भक्ति क आचार्यों की देन मानी जाती है।

महाभारत काल म अवतार भावना ने बल पकडा। इस युग म नारायण ऋषि म ईश्वरत्व आया। उसकी नरसिंह, वामन, राम आदि विशेषत वासुदेव रूप म पूजा की गई। नारायण का साथी नर अर्जुन माना गया। गीता म श्रीकृष्ण इस तथ्य की ओर सकेत करते हैं।[2] व अपने और अर्जुन के अनेक पूवजन्मा की बात करते हैं। यदुवशी होने स सात्वतो-यादवा के बीच वासुदेव की भक्ति का प्रचार होने क कारण उसका सात्वत नाम भी पडा। श्रीकृष्ण की लीलाएँ सहज साधना के अनुकूल पडने के कारण उनकी भक्ति में रामभक्ति की अपेक्षा दाम्पत्य भाव अधिक आया। ईसवी सातवी शताब्दी म इसी भक्ति को दक्षिण के आलवार भक्ता ने अपनाया। अन्दाल की भक्ति विशेषत प्रेमपूर्ण थी। श्रीमदभागवत म दाम्पत्यभावात्मिका भक्ति को खूब प्रश्रय मिला। परवर्ती कृष्ण-भक्ति भागवत के अनुसार चलती रही। हिन्दी के कृष्ण भक्ति काव्य का मूल आधार भागवती भक्ति ही है।

(ग) आदि रामायण म राम एक राजा है। वतमान वाल्मीकि रामायण के मानव राम म ईश्वरत्व देखा जाता है। कतिपय विद्वानों की दृष्टि म राम के ईश्वर सूचक अन्श प्रक्षिप्त हैं। वायुपुराण और महाभारत म राम ईश्वरावतार हैं। डा० रामकुमार वर्मा राम म ईश्वर भावना का समय निर्धारित करते हुए लिखते हैं—

ईसा के दो सौ वष पूव राम अवतार के रूप म माने जाते हैं। इस समय मौय वश का विनाश हो गया था। उसके स्थान पर सुग वश की स्थापना हो गई थी। बौद्ध धम विकास पर था। इसी समय बुद्ध ईश्वरत्व के गुणा से विभूपित होने लग थे। सम्भव है बौद्ध धम की इस नवीन प्रगति ने राम को भी देवत्व के स्थान पर आरूढ कर दिया हो।'[3]

१ भक्तिमार्गी बौद्ध धम —नमदेश्वर प्रसाद च०, पृ० १४३। हिन्दी रूपातर—न० ना० वसु के 'The Modern Bhuddhism & Its Followers in Orissa' का।

२ बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चाजुन। तान्यह वेद सर्वाणि नत्व वेत्थ परतप। गीता ४-५।

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, प ३३३।

विष्णुपुराण, रामपूर्वतापनी उपनिषद् में राम विष्णु के अवतार हैं। इन ग्रन्थों में रामावतार में माधुर्य होने पर भी इनका निविवाद है कि ये ऐसा के बाद छठी शताब्दी से पूर्व की रचनाएँ हैं।[1] डॉ० भण्डारकर के अनुसार राम का विष्णु का अवतार तो ईस्वी सन् के प्रारम्भ से माना जाने लगा[2] किन्तु राम भक्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दी में सम्भव हुई। डॉ० भगवती प्रसाद सिंह आठवीं शताब्दी के पश्चात् रामभक्ति के साम्प्रदायिक रूप का प्रारम्भ मानते हैं।[3] श्री भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र ७वीं शताब्दी में आलवारों के कुछ रचनाओं में रामभक्ति का बीज विद्यमान मानते हैं।[4] उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा वे और डॉ० रामकुमार वर्मा दोनों डॉ० भण्डारकर की भाँति ग्यारहवीं शताब्दी में ही मानते हैं।[5] इस धारा का आधार ग्रन्थ अध्यात्म रामायण है। डॉ० फर्कुहर रामानुज की भक्ति का आधार ग्रंथ श्वेताश्वतरोपनिषद मानते हैं[6] किन्तु रामभक्ति के विकास में रामानुज की अपेक्षा उनके शिष्य रामानन्द का महत्त्व अधिक है और उन्होंने रामानुज के श्रीभाष्य का सहारा लेते हुए भी अध्यात्म रामायण को विशेष रूप से अपनाया है। रामानुज तथा उनके शिष्य रामानन्द को इस भक्ति को फैलाने में वही श्रेय प्राप्त है जो कृष्ण भक्ति के प्रचार करने में पहले माध्व निम्बार्क विष्णुस्वामी तथा पीछे चैतन्य तथा वल्लभाचार्य को दिया जाता है। रामकुमार वर्मा भक्ति साहित्य में इन आचार्यों का स्थान निर्धारित करते हुए लिखते हैं—

'यदि रामानुजाचार्य से प्रभावित होकर उनके अनुयायी रामानन्द ने विष्णु और नारायण का रूपान्तर कर राम भक्ति का प्रचार किया तो निम्बार्क मध्व और विष्णु स्वामी के आदर्शों को सामने रखकर उनके अनुयायी चैतन्य और वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की ही भक्ति का प्रचार किया। यह भक्ति भागवत पुराण से ली गई है जिसमें ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का ही अधिक महत्त्व है। आत्म चिन्तन की अपेक्षा आत्म-समर्पण की भावना का प्राधान्य है।[7]

---

१ रा० भ० सा० में म० उ० श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र पृ० १०२ हि० सा० का आ० इ० वर्मा प० ३३५।

२ Saivism Vaisnavism etc R G Bhandarkar p 47

३ रामभक्ति साहित्य में रसिक सम्प्रदाय डा० भगवतीप्रसाद सिंह, प० ५१।

४ रा० भ० सा० में म० उ० श्री भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र पृ० १०२।

५ (i) हि० सा० का आ० इ० डा० रामकुमार वर्मा, प० ३३५, (ii) रा० भ० सा० में म० उ० मिश्र पृ० १०२।

६ आउटलाइन्स आफ दि रिलिजियस हिस्टी आफ इण्डिया जे०एन० फर्कुहर प० २४३।

७ हि० सा० का आ० इ० डा० रामकुमार वर्मा पृ० ४६८।

(घ) हिन्दी भक्ति-काव्य की चौथी प्रेममार्गी धारा भी हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक विकास की एक सीढ़ी है। न तो यह मानना कि हिन्दू कथानकों को लेकर मुसलमान कवियों द्वारा प्रबन्धकाव्य का लिखना तत्कालीन शासकों की जनता के प्रति सद्भावना का द्योतक है,[1] संगत है और न यही कि सूफी कवि चतुर प्रचारक थे[2], अतएव इस्लाम का फैलाने के लिए इन्होंने जनभाषा तथा भारत की जनकथाएँ ही नहीं प्रत्युत भारत के परम्परागत पौराणिक पात्रों तथा यहाँ के दार्शनिक विश्वासों तक को अपनाया। सूफी तब भी अपने उपदेशों से जनता को प्रभावित करते रहे जब मुसलमानी शासक भारतीय धर्मों के प्रति सर्वथा असहिष्णु रहे। सभी सूफी वाणियाँ शाहंशाह में प्रजाप्रिय शासक के शासन काल में निःसृत नहीं हुई और न केवल भारत देश में ही, जहाँ अच्छे मुसलमानों के सामने विधर्मी जनता के प्रति सद्भावना दिखाने का कर्तव्य विद्यमान था, प्रवाहित हुई। महात्मा राबिया इब्राहीम अजाज, हल्लाज, मंसूर बयाजीद अल बस्तामी जुनैद जलालुद्दीन रूमी हाफिज सादी आदि कितने ही औलिया, दरवेश और फकीर मिस्र, अरब और ईरान में अपने बड़े-बड़े केन्द्र स्थापित कर चुके थे।[3]

सूफी सन्त भारत में या तो कुछ सीखने के लिए आये या शरण लेने[4] के लिए। विक्रम की लगभग सातवीं शताब्दी में जब ये अरबी व्यापारियों के साथ आये तो इन्होंने वेदान्त की शिक्षा ली। पहले ये केवल प्रेम भक्ति को जानते थे जो हजरत मुहम्मद-पूर्व के मध्य एशिया के लोगों की 'बुतपरस्ती' के अवशिष्ट चिह्न थे। भारत से लौटकर इन्होंने मध्य एशिया में अनलहक (सोऽहम्) का नारा लगाया, जो खुदा और बन्दे को अलग मानने वाले इस्लाम को सह्य नहीं हुआ। सूफी वहाँ से खदेड़े गये। मंसूर अपनी हठ पर रहा तो बुरी तरह मारा गया। भारत ने इस्लाम की कट्टरता के विपरीत मध्य एशिया के मूल विश्वासों और भारतीय वेदान्त के योग में बने सूफी धर्म को शरण दी।

सूफियों के 'अनलहक' सिद्धान्त पर नव अफलातूनी दर्शन का मुलम्मा देखने वालों को डा० रामकुमार वर्मा ने कालबुक के कथन को उद्धृत करते हुए बता दिया है कि यदि सूफी सिद्धान्तों पर नव अफलातूनी दर्शन की छाप निश्चित की जाती है तो भी इससे उनके ऊपर पड़े वेदान्त के प्रभाव का अभाव नहीं

---

१ हि० सा० का आ० इ० डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २६६।

२ हिन्दी सा० का उ० और वि० डा० भगीरथ मिश्र, रामबहोरी शुक्ल, पृ० १३७ १३८।

३ द्रष्टव्य—हिन्दी काव्य शलियों का विकास डा० हरदेव बाहरी पृ० ७४।

४ हिन्दी वाङ्मय का विकास डा० सत्यदेव चौधरी पृ० १०४।

कहा जा सकता क्योंकि वह भी तो वेदान्त से प्रभावित है।[1] डा० श्याम मनोहर पाण्डेय भी विभिन्न विद्वानों के मतों को प्रदर्शित करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि आदिम सूफियों पर भारतीय वेदान्त का प्रभाव पड़ा।[2] वे कुछ देने के लिए भारत यात्रा करने के पूर्व कुछ लेने के लिए यहां आ चुके थे।

यह ठीक है कि सूफी सच्चे मुसलमान थे, किन्तु उससे पहले वे सच्चे भक्त थे। वे किसी राजकीय प्रभाव में आने वाली परम्परा के साधु नहीं थे। अपने दृढ़ विचारों के कारण मंसूर ने मौत का वरण किया। 'अनलहक' कहने के कारण सूफियों को अरब से निकाला गया। मुसलमानों के आने से पहले ही ये भारत में आते जाते रहे। साम्प्रदायिकता इनमें नहीं थी। प्रारम्भिक सूफियों ने भारत आकर या नव अफलातूनी दर्शन के माध्यम से अथवा किसी अन्य तरह वेदान्त का प्रभाव ग्रहण किया। इस तरह सूफियों की साधना में भारत और अरब बहुत पहले मिल चुके थे। उनका प्रेममार्गी इस्लामी मत कब का वेदान्त से प्रभावित हो चुका था। जिस समय हिन्दी सूफी कवि मैदान में आए उस समय की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का उन्हें बनाने में कोई हाथ नहीं है। हाँ युगीन वातावरण का चित्रण तो कवि के न चाहते हुए भी हो ही जाता है। वह इनकी रचनाओं में भी पाया जाता है। इन्हें इस्लाम के चतुर एवं छद्मवेषी प्रचारक—जैसा कि श्री रामबहोरी शुक्लजी मानते हैं[3]—मानना ठीक नहीं। मुसलमान होने के कारण इनकी रचनाओं में मुहम्मद धर्म की ओर थोड़ा बहुत झुकाव स्वाभाविक है किन्तु उनका प्रचार मात्र उद्देश्य मानना और भारतीय प्रेमकथाओं को अपनाने में राजनीति को देखना उनके भक्त हृदय के साथ अन्याय है। अपनी स्वाभाविक विश्वासानुसार वे इस्लाम को बड़ा[4] बताते है। इसमें इन्हें इसी बात के लिए संगठित मानना और उनकी भक्ति पर सन्देह करना अनुचित है। डा० ताराचन्द्र की धारणा के अनुसार सूफी अन्य भक्त कवियों की तरह अध्यात्म क्षेत्र में एकता स्थापित करते रहे।[5] यहाँ आने

---

१ हि० सा० का आ० इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०२।

२ मध्यकालीन प्रेमाख्यान डा० श्याम मनोहर पाण्डेय, पृ० ५।

३ हि० सा० का उ० और वि० रा० ब० शुक्ल पृ० १३७, १३८।

४ अखरावट पृ० ३२१।

विधिना के मारग तेते हैं। सरग नखत तन रोवाँ जेते।
जेइ हेरा तेइ तहँ वे पावा। भा सन्तोष समुझि मन गावा॥
तेहि महँ पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कबिलास बसेरा॥

५ History of Freedom Movement in India p 133

पर भारतीय कथाओं को अपनाने में काव्य को अधिकाधिक प्रेषणीय बनाना ही उनका उद्देश्य प्रतीत होता है जैसा कि प्रत्येक कवि का मन्तव्य रहता है। यह उनके साधक के अतिरिक्त कवि होने का प्रमाण है। अथ च भारतीय प्रेम-कथाओं में इनकी ईश्वर विषयक प्रेम-साधना को दिखाने के हेतु उपयुक्त परिपार्श्व बनने की क्षमता विद्यमान रही जिससे उन्होंने उन्हें निश्छल भाव से अपना लिया और जनता के सम्मुख हिन्दू तथा इस्लामी सिद्धान्तों का एक सर्वग्राह्य समन्वित रूप उपस्थित किया। सांस्कृतिक विकास की स्थितियाँ ही सूफियों के सामने ऐसी थी कि इस देश में लुटेरे या शासक मुसलमान न आते तब भी सूफी आते—कुछ सूफी पहले आए भी—और तब भी भारतीय प्रेमकथाओं को अपनाकर वे अपने सिद्धान्त जनता के सम्मुख रखते। उनके सिद्धान्तों की उदारता को मध्य-एशिया के भक्तों के प्रेमानुराग का सहज विकास न मानकर उसमें 'अपना उल्लू सीधा करने वाला की कूटनीतिक 'दुरभिसंधि' देखना[1] साम्प्रदायिक कल्पना के अतिरिक्त कुछ और नहीं।

राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ और नेपाली भक्तिकाव्य

(क) नेपाल में भक्ति साहित्य का उदय विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। उस समय वहाँ की राजनीतिक स्थिति भी हिन्दी भक्ति साहित्य काल के भारत की स्थिति की तरह उथल पुथल से भरी थी। नेपाल राष्ट्र निर्माता पृथ्वीनारायण शाह से पहले सेन मल्ल किरातवंशीय छोटे छोटे माण्डलिक राजा राज्य कर रहे थे। गोरखा के राजा पृथ्वीनारायण शाह ने इन माण्डलिक महीपों को पराजित कर बृहत्तर नेपाल का निर्माण किया। उनसे पहले का नेपाल बहुत छोटा था। यथार्थतः 'नेपाल खाल्डो' ही वास्तविक नेपाल है। अलबरूनी ने कन्नौज से जिस नेपाल की दूरी दिखाई है तथा उसका जो वर्णन किया है[2] उससे नेपाल 'चार भञ्ज्याङ' मात्र ठहरता है। यह ठीक है कि आज प्रायः प्रत्येक नेपाली इस बात का अनुभव करता है कि पृथ्वीनारायण शाह ने (सं० १७७६ १८३१) राष्ट्रनिर्माण कर अच्छा किया, किन्तु तब उनका कम विरोध नहीं हुआ जिसे शान्त करने के लिए उन्हें कीर्तिपुर के लोगों की नाक काटनी पड़ी। राज्य के गोरखा विरोधियों को औरत के भेष में शहर फिराया गया[3] पृथ्वी-नारायण के पुत्र बहादुरशाह और पौत्र रणबहादुर शाह ने नेपाल राज्य को उत्तर

१ हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास डा० भ० र० मिश्र, रामबहोरी शुक्ल पृ० १३४।

२ Alberunis India (1030 A D) ed Dr Edward C Sachen p 20

३ त्रिपुर सुन्दरी का उपोद्घात नयराज पन्त, पृ०३७।

म ति बत और पश्चिम म गतनज तक फलाने म सफलता प्राप्त की। युद्ध पर युद्ध होत रहे।

अग्रेजो की कूटनीति स सवत १८६८ म नेपाल म केप्टेन नाक्स ब्रिटिश रेजिडण्ट नियुक्त हुआ। इस नियुक्ति को वहाँ की जनता न ही नही नागरा ने भी विवशतापूवक अगीकार किया। पीछे ही पीछे षडयन्त्र चलते रहे। रण बहादुर शाह ने जो बनारस चल गय थ दरबार म जो पत्र भेजा, उसम नाक्स को नेपाल स निकाल करने का स्पष्ट सन्देश है।[1] अन्त म नाक्स को नेपाल छोडना पडा। तनातनी बढ गई। नेपाल ने अग्रेजो का सामना अन्य भारतीय राजाओ से मिलकर करना चाहा।[2] वकील पदमपाणि को दक्षिणी राजा दौलतराव सिन्धिया, मल्लावराव (होल्कर) मीरखाँ के पास भेजा गया और पजाब क राजा रणजीतसिह के पास पृथ्वीविलास के हाथ सदेश भेजा कि सिक्ख सेना क यमुना के किनारे पहुचने पर १५ हजार हरिद्वार पहुचने पर ३० हजार बरेली पहुचने पर ६० हजार और लखनऊ पहुचने पर एक लाख गोरखा सनिक उसकी सहायता के लिए तयार मिलग। इस तरह मराठा सिक्ख गोरखा की सम्मिलित सना के अग्रेजो का सामना करने पर ईश्वर की कृपा स जीत हिन्दुओ की ही होगा। रामपुर के नवाब को समाप्त करने अवध के नवाब को अपने साथ मिलाने भरतपुर के राणा को अपने पक्ष म करने तथा चीन और भोट से आर्थिक सहायता प्राप्त करने की अन्यान्य योजनाएँ बनाई गइ किन्तु चालबाज अग्रेजो न काबुल के अमीर से पजाब पर आक्रमण करवा दिया। फलस्वरूप महाराज रणजीतसिह को सतलुज तक आकर पीछे लौटना पडा। अवध के नवाब को भी अग्रेजो ने अपनी ओर मिला लिया और नवाब ने ढाई करोड रुपय अग्रेजो की सहायता के लिए दिये। दक्षिण म अवश्य—मरहठो न कुछ उपद्रव मचाये। किन्तु उनका विशेष प्रभाव अग्रेजी साम्राज्य की प्रगति पर नही पडा। उससे इतना ही हुआ कि अग्रेज नेपाल के साथ सधि करन को तयार हो गय। नेपाल को १८१५ १६ म अकेले लडना पडा था फिर भी उसने अपनी वीरता की धाक अग्रेजो पर जमा दी थी। दोनो पक्ष सधि चाहने लगे थ। परिणाम स्वरूप सुगौली सन्धि के अन्तगत अपना पूर्वी पश्चिमी और दक्षिणी भू भाग देकर

---

१ 'त्याहा कहिल्य न आउने (फिरगी) लाई लग राखे का छन। जौना तरह ले हुछ जुगुति बुद्धि गरी तेसनाई उधो गर्या कोशिस गनु हवस' (इतिहास प्रवेश याागी नरहरि) पृ० ७६२।

२ जनरल भीमसेन थापा र तत्कालीन नेपाल चित्तरजन नेपाली, पृ० १२७ १३१।

तथा काठमाडू मे ब्रिटिश रेजिडेण्ट रखना अगीकार कर नेपाल ने किसी तरह अपनी तथाकथित स्वातत्रता को सुरक्षित रखा।

नेपाली शासको के मन म भारी कचोट थी। यद्यपि अमरसिंह थापा जिसके नेतत्व म उक्त लडाई लडी गई नेपाल की पराजय के साथ ही धराधाम से विदा हुए। जनरल भीमसेन थापा का भी समय पूरा हुआ फिर भी महाराज राजेन्द्र और प्रधानमत्री रणजग पाण्डेय अग्रेजों के विरुद्ध छिपे छिप षडयत्र करते रहे और अग्रेज भी अपने माग के कटको को कुचलने के चक्र चलाते रहे। सम्भवत षडयत्रो म भी अग्रेजो को हो मिली। सन १८४३ म महाराज राजेन्द्र अपदस्थ हुए। रणजग पाण्डेय को जघन्य ढग से पतन किया गया। थापा पाण्डे और चौतरियो लोगों के बीच कलह पैदा किया गया प्रधानमत्री माथवरसिंह को मरवा दिया गया और सन १८४६ म नृशसतापूर्ण कोतपर्व म समस्त मन्त्रिय दरबारियों को एक रात मे हत्या रूप पूर्णाहुति के साथ अग्रेजो का कूटनीतिक यज्ञ सफलतापूवक सुसम्पन्न हुआ। उनका पिट्ठू जगबहादुर राणा सर्वेसर्वा हो गया। इस जग बहादुर के भाग्य का भेद नही समझना होगा। यह सब अग्रेजो की बुद्धि का चमत्कार था। कवि रघुनाथ भी यही अपने कूट[1] पद मे प्रकट करते हैं। इस तरह १८४६ ई० से १०४ वष तक अग्रेज भक्त राणा परिवार का शासन हुआ। तब से नेपाल के शाह नाम मात्र के राजा रहे। जो कुछ थे राणा ही थे। स्वतन्त्र व भी नहीं थे। वे अग्रेजो के नियन्त्रण म थे। नेपाली जनता अग्रेज और राणा—दोनो शासको के अत्याचार का शिकार बनी। श्री धमरत्न यमी का विचार है कि भारत यदि तब गुलाम था तो राणाकालीन नेपाल गुलामो का गुलाम था।[2]

(ख) राजनीतिक स्थिति की तनातनी होने से उस समय का नेपाली सामाजिक जीवन भी विपन्न था। अवश्य ही नवीन चेतना के अभाव म जन साधारण उस स्थिति म भी सतोष करता रहा। वह जीवन चाह और कुछ न हो वीरता और सघर्ष का जीवन था जनमजात आह्लाद का जीवन था। अस्तव्यस्तता म भी वह मयाडग सातानु तीज मैली वालुन सवाइ असार

१ आक्स को जुन गेर हो उ पनि ता घायल भयो चोर ले।
सिर को बरजुन हो थियो उपनि ता घायल भयो सोर ले।
सिद्ध का जुनजइ थिया उ फिर ता घायल भयो मोर ले।
भाग्य ले परिपाठ पल्ट छ कि यो कि बुद्धि का जोर ले॥
—(उद्यत 'रघुनाथ पोखरेल र उनका कविता
—बालचन्द्र शर्मा—हिमानी वर्ष १, अक १, पृ० ४३ स)।

1 The Study of Critical Situation in Nepal p 2

धार्मिक लोक-गीतों में प्रयुक्त होता रहा। नेपाली जनता धर्मप्राण रही है। यहाँ धर्मों पर्वों का बाहुल्य है। हजारों नर-नारियाँ समय समय तथा स्थान स्थान पर पूजा सामग्री लेकर मन्दिर और मठों में ही नहीं, पेड़-पौधों तथा शिलाओं की परिक्रमा करती पाई जाती हैं। वस्तुतः यहाँ वालों में नेपाल देव भूमि है यह अतिशयोक्ति नहीं कि यदि नेपाल में—विशेषतः काठमाण्डू में कोई व्यक्ति किसी भी स्थान पर किसी ओर आँख मूँदकर हाथ जोड़ दे तो उसको किसी न किसी आराध्य के प्रतिबिम्ब दूरी पर दर्शन हो जाते हैं। जब-जब देवी-देवता वहीं प्रकट होगा। हाथ जोड़ने का प्रयोग व्यर्थ नहीं जाता है। नेपाली जीवन प्रमादजनित विकारों को गृहनिर्मित सुरा तम्बाकू गांजा सूरी सेवन कर गीत गाकर, बाजे बजाकर उत्सव मनाता हुआ सुखी रहा है। पुरुष ही नहीं बहुत-सी स्त्रियाँ भी मदिरा-पान किया करतीं। नव युग में धूम्र (सिगरेट) पीने में स्त्री पुरुष एक दूसरे से पीछे रहना नहीं चाहते।

भक्तिकाव्य के भूमिका काल से प्रारम्भ किया जाय तो नेपाल की सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति का शोचनीय रूप हमारे सामने आता है। बौद्धों के कारण शिथिलीकृत मुसलमानों के आक्रमणों के फलस्वरूप विशृंखलित वर्णाश्रम व्यवस्था जयस्थितिमल्ल के शासनकाल में पुनः सुदृढ़ हुई। महाराज जयस्थितिमल्ल (१३५० ई०) ने एक सभा बुलाई जिसमें मिथिला से रघुनाथ झा कान्यकुब्ज से कीर्तिनाथ उपाध्याय दक्षिण भारत से श्रीनाथ भट्ट और महीनाथ भट्ट शिष्यों के साथ नेपाल उपत्यका में पधारे। कोटियज्ञहोम हुआ और मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किए गए हिन्दुओं की विशुद्धि हुई। मानव धर्मशास्त्रनाम की स्मृति बनाई गई। गुणकर्म विभाग अनेक जातियाँ बनाई गईं जो अब तक नेवारों में पाई जाती हैं।[1] इस युग के धार्मिक इतिहास की प्रमुख विशेषता है धीरे धीरे बौद्ध धर्म का ह्रास और हिन्दू धर्म का उदय। जो सामाजिक सुधार जयस्थितिमल्ल ने किये उनसे ज्ञात होता है कि १४वीं शताब्दी में नेपाल की वर्णव्यवस्था छिन्न भिन्न हो चली थी। आश्रमों की मर्यादाएँ भी नष्ट हो गई थीं जिन्हें महाराज को पुनः स्थापित करना पड़ा और उल्लंघन करने वाले के लिए उन्होंने दण्ड निश्चित किया, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त संस्कारों की निश्चित योजना को फिर जटिल बनाया।

इस समय यौन दुराचारों की भरमार अनुमित होती है। जयस्थितिमल्ल ने दुराचारों को रोकने और सतीत्व की प्रतिष्ठा के लिए अनेक नियम बनाये।[2]

---

१ धर्म एवं संस्कृति श्री मुरलीधर भट्टराय पृ० ३१।

२ द्रष्टव्य—'नेपाल' सांस्कृतिक परिषद, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, सं० २०२२ चैत्र ३० गते, लेख 'जयस्थितिमल्ल सामाजिक दृष्टिकोण बाट', प्रो० तुलसीराज वैद्य पृ० ४०।

सामान्यत दूसरे की पत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले के लिए ६० रुपये दण्ड निश्चित किया। ब्राह्मणी की पवित्रता को नष्ट करने पर हीनतर जाति के व्यभिचारी के लिए कठोरतर दण्ड का विधान था। व्यभिचारी यदि ब्राह्मण हुआ और ब्राह्मणी विधवा हुई तो उस दशा मे केवल ३० रुपये दण्ड होते थ। विधवा ब्राह्मणी के सतीत्व नष्ट करने पर क्षत्रिय को नदी पार करने तक चाण्डाल द्वारा मुक्के मारने, वैश्य को लिंगच्छेदन के साथ १२० रुपये तथा शूद्र को मौत का दण्ड देने का विधान बनाया गया। तब सती प्रथा प्रचलित रही, किन्तु जलाई जाने वाली नारी भाग भी जाया करती होगी। जयस्थितिमल्ल ने ऐसी भगोड़ी औरत को जातिच्युत कर चाण्डाल मानने का नियम बनाया। प्राय विवाह वदिक ढग से होते रहे किन्तु गान्धर्व विवाह भी प्रचलित रहे। किराता के विवाह सम्बन्धा म अधिक दढता नही रहती रही। विवाह विच्छेद का चलन भी विद्यमान था। नेवारो (नवीन आर्यों या द्रोणवारो) म कन्या का विवाह बचपन म ही वर की अनुपस्थिति म अविनाशी माने जाने वाले बेल के फल के साथ हा जाता रहा, जिससे वह सदा सौभाग्यवती समझी जाए और एक पति के मरने पर उसका दूसरे से विवाह हो सके।

पृथ्वीनारायण शाह के नेपाल की सामाजिक परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत स्थिरतापूर्ण हैं विश्वासो मे बद्धमूलता देखी जाती है। बाद के दो शाहा के समय म भी वही प्रवृत्ति देखी जाती है। इन तीन महाराजो का काल राज्य विस्तार का काल माना जाता है। इस समय नेपालियो को युद्ध करने पडे और युद्धो मे विजय हुई। रणबहादुरशाह न नेपाल की सीमा को उत्तर मे तिब्बत तक और पश्चिम म पजाब तक फैलाया। इन विजयो स जनता का उत्साह बँधा रहा। उसकी भलाई के लिए उपाय किये गए। प्रथाएँ अधिक दृढ हो गइ। हिन्दू राष्ट्र की सजग कल्पना कट्टर हिन्दू शाहा के सरक्षण म साकार हुई। हिन्दू समाज बढने लगा। रूढियाँ और भी घर करती गइ। देवी देवताओ का मण्डल बढने लगा। पौरोहित्य का प्रभाव जन जीवन पर अधिकाधिक क्रियाशील बनता गया। जनता की आर्थिक परिस्थिति विशेष अच्छी नही थी।

राणा नियन्त्रित शाह काल शासक वग का काल है। इसम राणा लोगा का रहन सहन, खान पान आदि तो चोटी पर पहुच गया। किन्तु जनता की अवस्था गिरती ही गई। शासको के आधुनिक ढग से महल बन। उनकी कार सिर पर ढोकर कलकत्ता से काठमाडू पहुचाई गइ।[1] राणा लोगो की कृपाकाक्षा पर ही किसी की भौतिक इच्छाएँ कथचित् पूर्ण हो सकती थी फलस्वरूप राणा शासन को ब्राह्मणो से उन्मुक्त आशीर्वाद क्षत्रिया से खूनी खुकुरी का वर वैश्यो से अपार धनसम्पत्ति तथा शूद्रों स आत्म बलिदानी सेवा प्राप्त हुई। राणा लोगों

1 Tom Weir East of Kathmandu p 9

कर निषेध था, सम्भवत सामान्य जनता से मिल-जारी रोकने के लिए छोटे छोटे व्यापारो मे भी नेपाल मे पूंजी नहीं लगाई जा सकती थी।[1] फलस्वरूप धनियो का धन विदेशी बैंको मे जमा रहता। औद्योगिक विकास को रोककर राणा सरकार जनता को देशी विदेशी सेनाओ मे भरती होने को बाध्य करती क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई और धन्धा करने वाला व्यक्ति भूखा ही मरता। ज्ञान दिल दास कहता है—

काम र किसान धन्दा धेर गछ। लाउन खान न पाई प्रवासे मा गछ।[2]

निष्कर्ष यह है कि शाह और राणा काल का जन जीवन सुप्त निश्चेष्ट अल्पसंतोषी सरकार को सब कुछ मानने वाला धर्मभीरु तथा निष्कपट था। दीनता उससे भीगे कपडे की तरह लिपटी थी, किन्तु उसे दूर फेंकने का कोई उपाय वह इसलिए नहीं कर पाती कि कोई दूसरा कपडा बदलने को पास न था। राणा काल के अन्तिम दिनो मे जनता को अपनी स्थिति का पता चला और वह छटपटा उठी।

(ग) उपर्युक्त स्थितियो पर विचार न कर यदि हम इस समय रचित नेपाल के काव्य को उनका काय मानें तो यह उसी प्रकार की भूल होगी जसी भारत म हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के निर्माण म तत्कालीन परिस्थितियो को कारण मानकर दिखाई देती है। नेपाल के भक्ति साहित्य के पीछे तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ मानने वालो स इतना पूछा जाय कि भक्ति साहित्य का सजन आह्लादपूर्ण स्थिति म होता है या अवसादपूर्ण वातावरण म। यदि भक्ति साहित्य का सजन आनन्द भरे वातावरण म माना जाय तो नेपाल के उक्त समय को जागरूक कवि की दृष्टि म सुखात्मक नहीं माना जा सकता है। श्री पृथ्वीनारायण शाह ने चाहे नेपाल म राष्ट्रीयता का विकास किया और आज का नेपाल भले ही उनके प्रति श्रद्धा रखता हो किन्तु उस समय जिस जनता को वाच्याय म भी अपनी नाक कटानी और चूडियाँ पहननी पडी उसके हृदय मे शान्ति नहीं प्रतिशोध की आग रही होगी। प्रथम जनता को कई बार लडना पडा पीछे पदाधिकारियो के षडयन्त्रो और शोषणो से वह अभितप्त रही। स्वेच्छाचारी शासनद्वय की चक्की मे जनता पिसती रही। फ्रेंच विद्वान सिलवन लेवी[3] और अंग्रेज पसिवल लण्डन ने[4] शाह वंश को भी

---

१ नेपाल—स० त्रिभुवन वि० वि० सास्कृतिक परिषद, लेख—'के राणा शासन व्यवस्था सतोषपूर्ण थियो ?' लेफ्टिनेण्ट जनरल मृगेन्द्र प० ३५ ३६।

२ उदय लहरी—ज्ञान दिलदास जो० स० प० र सा० से उद्धृत प०६।

३ द्रष्टव्य—Le Nepal

४ द्रष्टव्य—Nepal

विचारवान नहीं माना है। राणा लोगों के आतंक का क्या कहना! अंग्रेज बाहर ही बाहर अपना चक्र चलाते। ऐसे समय में कवि को इन परिस्थितियों के कारण ही आनन्दानुभूति हो और वह जनता को भगवद्भक्ति में निमग्न करना चाहे यह अद्भुत कल्पना है।

शाह और राणा काल के समाज को निरानन्द मानकर उसके अवसादानुभूति के क्षणों में कवियों ने भगवद् भक्ति का अवलम्बन लिया हो—जैसा कि कुछ एक विद्वान समझते हैं—यह मानना भी संगत नहीं है। पहले तो जनता को युद्धादि के कारण उतनी निराश मानना कि प्रभु के सिवाय कोई और उसके लिए अवलम्बन ही न रहा हो, ठीक नहीं है। भारत में भक्ति साहित्य उदयकाल के जनता की जो निरवलम्ब स्थिति रही, वह नेपाल में कभी नहीं देखी गई। वह निराश एवं उदास अवश्य हुई। किन्तु कोई विदेशी और विधर्मी शासक वहाँ नहीं रहा जो जनता के धर्म कला संस्कृति तथा विश्वासों को नष्ट कर उसे प्रभु-शरण में जाने को बाध्य करता। नेपाल में भक्तिकाल के दरम्यान नेपालियों की एक ही बार हार हुई, १८१४-१६ में अंग्रेजों के साथ हुई लड़ाई में। उसमें नेपालियों के हाथ से जीते हुए प्रदेश चले गये, किन्तु उससे उनके अपने ढंग से जीने के क्रम में विशेष व्याघात नहीं हुआ। यह ठीक है कि उनकी स्थिति आनन्दपूर्ण नहीं थी किन्तु इसका दायित्व केवल इसी समय पर नहीं था। वे बहुत पहले से उसी तरह जी रहे थे और उस जीवन के अभ्यस्त बन चुके थे। इस समय कोई ऐसी बात नहीं हुई कि उनके पास भगवान् की शरण में जाने के अतिरिक्त कोई चारा न हो। अथ च अंग्रेजों के साथ लड़ाई तो पीछे हुई उससे पहले ही जोसमनी सन्तों की वाणियों में हिन्दी भक्ति साहित्य नेपाल में जन्म ले चुका था जबकि नेपालियों की विजय हो रही थी और यदि युद्ध में हारने पर ही भक्ति साहित्य की निर्मिति होती हो तो इस समय इसका सर्जन नहीं होना चाहिए।

नेपाली भाषा में जो रामकृष्ण भक्ति साहित्य रचा गया वह सुगौली संधि सं० १८७३ के बहुत पीछे लिखा गया। इसी संधि के अनुसार नेपाल का अंगभंग हुआ। नेपाली भाषा की कई विद्वानों के मतानुसार आदि रचना वसन्त शर्मा का कृष्ण चरित्र तब से ११ वर्ष बाद १८८४ वि० सं० में लिखा गया। उस समय अन्य नेपाली भक्त कवियों में विद्यारण्य केशरी १० वर्ष, यदुनाथ पोखरेल सम्भवतः ८ वर्ष, रघुनाथ पोखरेल ५ वर्ष तथा भानुभक्त आचार्य डेढ़ वर्ष के रहे होंगे। इन बालकों के हृदय में सुगौली संधि का प्रभाव पड़ा और यदि उन्होंने २५ वर्ष की अवस्था में भी अपनी रचना प्रारम्भ की तो १५ से २३ वर्ष तक उस प्रभाव को अपने हृदय में अक्षुण्ण रख, फिर भगवद् भक्ति काव्यों का सर्जन कर अपने और जनता के हृदय के विषाद को वाणी

कर निषेध था, सम्भवत सामान्य जनता से मिलना-जुलना रोकने के लिए छोटे छोटे व्यापारो म भी नेपाल म पूजी नहा लगाई जा सकती थी।[१] फलस्वरूप धनियो का धन विदेशी बको म जमा रहता। औद्योगिक विकास को रोककर राणा सरकार जनता को देशी विदेशी सेनाओ म भरती होने को बाध्य करती क्योकि इसके अतिरिक्त कोई और धन्धा करने वाला व्यक्ति भूखा ही मरता। ज्ञान दिल दास कहता है—

काम र किसान धन्दा घेर गछ। लाउन खान न पाई भकासै मा मछ।[२]

निष्कर्ष यह है कि शाह और राणा काल का जन जीवन सुप्त निश्चेष्ट, अल्पसन्तोषी, सरकार को सब कुछ मानने वाला धर्मभीरु तथा निष्कपट था। दीनता उसमे भीग कपडे की तरह लिपटी थी किन्तु उसे दूर फेंकने का कोई उपाय वह इसलिए नही कर पाती कि कोई दूसरा कपडा बदलने को पास नही था। राणा काल के अन्तिम दिनो म जनता को अपनी स्थिति का पता चला और वह छटपटा उठी।

(ग) उपर्युक्त स्थितियो पर विचार न कर यदि हम इस समय रचित नेपाल के काव्य को उनका कार्य मानें तो यह उसी प्रकार की भूल होगी जसी भारत मे हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के निर्माण म तत्कालीन परिस्थितियो को कारण मानकर दिखाई देती है। नेपाल के भक्ति साहित्य के पीछे तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ मानने वालो से इतना पूछा जाय कि भक्ति साहित्य का सजन आह्लादपूर्ण स्थिति मे होता है या अवसादपूर्ण वातावरण मे। यदि भक्ति साहित्य का सृजन आनन्द भरे वातावरण म माना जाय तो नेपाल के उक्त समय को जागरूक कवि की दृष्टि म सुखात्मक नही माना जा सकता है। श्री पृथ्वीनारायण शाह ने चाहे नेपाल म राष्ट्रीयता का विकास किया और आज का नेपाल भले ही उनके प्रति श्रद्धा रखता हो किन्तु उस समय जिस जनता को चाच्याथ मे भी अपनी नाक कटानी और चूडियाँ पहननी पडी उसके हृदय म शान्ति नही, प्रतिशोध की आग रही होगी। प्रथम जनता को कई बार लडना पडा पीछे पदाधिकारियो के षडयन्त्रो और शोषणो से वह अभिलिप्त रही। स्वेच्छाचारी शासनद्वय की चक्की मे जनता पिसती रही। फ्रेंच विद्वान सिलवन लेवी[३] और अंग्रेज पर्सिवल लण्डन ने[४] शाह वश को भी

---

१ नेपाल—स० त्रिभुवन वि० वि० सास्कृतिक परिषद, लेख—'के राणा शासन व्यवस्था सतोषपूर्ण थियो ? लेफ्टिनेण्ट जनरल मृगेन्द्र प० ३५ ३६।

२ उदय लहरी—ज्ञान दिलदास जो० स० प० र सा० से उद्धृत प०६।

३ द्रष्टव्य—Le Nepal

४ द्रष्टव्य—Nepal

विचारवान नहीं माना है। राणा लोगो के आतक का क्या कहना। अंग्रेज बाहर-ही बाहर अपना चक्र चलाते। ऐसे समय म कवि को इन परिस्थितियो के कारण ही मानदानुभूति हो और वह जनता को भगवदभक्ति म निमग्न करना चाहे, यह अद्भुत कल्पना है।

शाह और राणा काल के समाज का निराश द मानकर उसके अवसादा-नुभूति के क्षणो म कवियो ने भगवद् भक्ति का अवलम्बन किया हो—जसा कि कुछ एक विद्वान् समझते हैं—यह मानना भी सगत नही है। पहल तो जनता को युद्धादि के कारण उतनी निराश मानना कि प्रभु के सिवाय कोई और उसके लिए अवलम्बन ही न रहा हो ठीक नही है। भारत मे भक्ति साहित्य उत्पकाल म जनता की जो निरवलम्ब स्थिति रही, वह नेपाल म कभी नही देखी गई। वह निराश एव उदास अवश्य हुई। किन्तु कोई विदेशी और विधर्मी शासक वहाँ नहा रहा जो जनता क धम कला, सस्कृति तथा विश्वासो को नष्ट कर उसे प्रभुशरण म जाने को बाध्य करता। नेपाल म भक्तिकाल के दरम्यान नेपालियो की एक ही बार हार हुई, १८१४ १६ मे अंग्रेजो के साथ हुई लडाई मे। उसम नेपालियो के हाथ से जीते हुए प्रदेश चल गये, किन्तु उससे उनके अपन ढग म जीने के क्रम म विशेष व्याघात नहीं हुआ। यह ठीक है कि उनकी स्थिति आनन्दपूर्ण नही थी, किन्तु इसका दायित्व केवल इसी समय पर नही था। व बहुत पहल से उसी तरह जी रहे थे और उस जीवन के अभ्यस्त बन चुके थे। इस समय कोई ऐसी बात नही हुई कि उनके पास भगवान् की शरण म जाने क अतिरिक्त कोई चारा न हो। अब च अंग्रेजों के साथ लड़ाई तो पीछे हुई उससे पहले ही जोसमनी सन्ता की वाणियो म हिन्दी भक्ति साहित्य नेपाल म जन्म ले चुका था जबकि नेपालियो की विजय हो रही थी और यदि युद्ध म हारने पर ही भक्ति साहित्य की निर्मिति होनी हो तो इस समय इसका सजन नही होना चाहिए।

नेपाली भाषा म जो रामकृष्ण भक्ति साहित्य रचा गया वह सुगौली सधि स० १८७३ के बहुत पीछे लिखा गया। इसी सधि के अनुसार नेपाल का अगभग हुआ। नेपाली भाषा की कई विद्वानो के मतानुसार आदि रचना बसन्त शर्मा का कृष्ण चरित्र तब से ११ वष बाद १८८४ वि० स० म लिखा गया। उस समय अन्य नेपाली भक्त कवियो म विद्यारण्य केशरी १० वष, यदुनाथ पोखरेल सम्भवत ८ वष रघुनाथ पोखरेल ५ वष तथा भानुभक्त आचाय ८ वष के रहे होंगे। इन बालको के हृदय म सुगौली सन्धि का प्रभाव पड़ा और यदि उन्होंने २५ वष की अवस्था म भी अपनी रचना प्रारम्भ की तो १५ से २३ वष तक उस प्रभाव को अपने हृदय में अनुगुञ्जित रख, फिर उन्होंने भक्ति काव्यो का सजन कर अपने और जनता क हृदय के दिन [illegible]

प्रदान की, यह एक दुराहृढ़ कल्पना है। क्या उन्होंने अपने हृदय की अनुभूति को न अपनाकर जनता के ही उन भावों को, जिनका भार मानो वह सं० १८७३ से उठा रही हो अभिव्यक्त किया? ऐसा मानने पर उनके काव्य में सचाई नहीं हो सकती। वे जनता के केवल किराए के वकील ही हो पाते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि अंग्रेजों के साथ हुई लड़ाई में विजय प्राप्त न कर सकने के कारण नेपाली वीरों की गाथा गाने का कवियों को अवसर न मिला, फलस्वरूप वे भगवान का गुणानुवाद करने लगे।[१] एक क्षण हम यह मान भी लें कि वीरों के हारने पर वीर रस की कविता अवरुद्ध हो सकती है किन्तु और कारणों के अभाव में इसीलिए भक्ति साहित्य का जन्म मानना संगत नहीं। कवि हारी हुई जाति का उत्साह बढ़ा नहीं सकते तो समाज सुधार की ही बात कह देते। और रसों की कविता भी तो हो सकती थी। पराजय के वर्षों बाद भक्ति साहित्य ही क्यों रचा गया?

यह भी सोचना उचित नहीं होगा कि नेपाल के भक्ति साहित्य ने शासन के विरोध में सरकारों की सरकार ईश्वर को विवशतापूर्वक भजना प्रारम्भ किया क्योंकि नेपाल में विधर्मी शासक तो कभी रहे नहीं। मल्ल शाह, राणा सब भक्त थे। शिव शक्ति बुद्ध और रामकृष्ण को मानते रहे। भक्तों का वे आदर करते रहे। अत्याचारी कहा जाने वाला राणा जंग बहादुर भक्तों का सम्मान करता रहा। संत ज्ञानदिलदास को उसने श्वेत पताका तथा नगाड़ा देकर सादर विदा किया।[२] यह ठीक है कि लखनथापा द्वितीय तथा उसके अनुयायियों को जिन्हें जोसमनी समझा जाता रहा जंगबहादुर ने मृत्यु दण्ड दिया[३] किन्तु इससे न तो यह सिद्ध होता है कि जोसमनी सम्प्रदाय शासन के विपरीत खड़ा हुआ और न यही कि जंगबहादुर ने जोसमनी सम्प्रदाय का विरोध किया। लखनथापा जोसमनी भेष में क्रान्तिकारी था। भारत में कई व्यक्ति अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध षडयन्त्र रचते समय भेष बदलकर रहे। नाम और भेष की समानता से जंगबहादुर जोसमनियों से चौका अवश्य उसने तत्कालीन प्रसिद्ध संत ज्ञानदिलदास पर निगरानी भी रखी किन्तु देखा कि

१ (क) गोरखाली राजाहरू को विजय यात्रा मा सुगौली को सन्धी ले ब्रेक लगाइ दिस के पछि हाम्रा कविहरूले वीर रस का कविता लेख्ने प्रेरणा पाउन सकेनन र त्यो मानसिक आन्दोलन भक्तिरस का कविता भए र निस्कन थाल्यो। बुइगल श्री कमल दीक्षित, प० ४२८।

(ख) द्रष्टव्य—नेपाली भाषा और साहित्य श्री रुद्रराज पाण्डेय पंचदश लोकभाषा निबंधावली पृ० २८७ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।

२ द्रष्टव्य—जो० सं० प० र सा० पृ० ६३ जनकलाल।

३ वही, प० ६०।

कानदिलदास उसके विपरीत कुछ नहीं कर रहे हैं तो उनका सम्मान किया और जोस्मनी मत फलाने की छूट दी।

स्पष्ट है कि नेपाली समाज के युद्ध, दुःख, हार-जीत का भक्ति काव्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जिन परिस्थितियों ने वसन्तानन्द पोरत्याल को वीररस पूर्ण स्तुति-पद्य लिखने की प्रेरणा दी, उन्हीं परिस्थितियों को तत्कालीन अन्य कवियों के भगवान के गुणानुवाद गाने में कारण मानना युक्तियुक्त नहीं है। अमरसिंह थापा, भीमसेन थापा, रणजग पाण्डे, राजेन्द्रशाह, जनरल माथवरसिंह आदि आगे-पीछे के देशभक्तों का गुणगान कर तत्कालीन कवि अपनी लेखनी को धन्यवादास्पद बना सकते थे और यह सिद्ध कर सकते थे कि समाज और राजनीति का काव्य पर प्रभाव पड़ता है परन्तु ऐसा हुआ नहीं। राजनीति निरपेक्ष होकर नेपाली भक्ति साहित्य बना। रणबहादुरशाह राज्य करना छोड़ कर सन्त निर्वाणानन्द बन गये। पिता अमरसिंह थापा और भाई भीमसेन थापा तो नेपाल राष्ट्र की अवनति की सम्भावना से सशंकित दिखाई दें और रणवीर सिंह थापा विरक्ति धारण कर अभयानन्द या अभयदिन नाम से अनहदनाद का श्रवण कर और आनन्द की भेरी बजाते हुए[1] सन्त साहित्य की समृद्धि में योग दें! यह कहने में क्या तुक है कि अभयानन्द ने राजनीति या समाज से प्रभावित होकर भक्ति-काव्य का प्रणयन प्रारम्भ किया?

सांस्कृतिक परम्परा और नेपाली भक्ति-काव्य

नेपाल में भक्ति-साहित्य की निर्मिति धार्मिक या सांस्कृतिक विकास-क्रम का अंग है। विक्रमी तेरहवीं शताब्दी में बहुत से हिन्दू और बौद्ध अपने अपने धर्म-ग्रन्थों को लेकर भारत से नेपाल चले आए। इस समय नेपाल में एक सर्वमत धर्म जन्म ले रहा था जो शाक्त, शैव, वैष्णव तथा बौद्धों का एक ऐसा केन्द्र बिन्दु था जहाँ सब आकर मिल जाते थे।[2] इन सभी धर्मों के दो पक्ष चल रहे थे—एक वाम दूसरा दक्षिण। दक्षिण पक्ष में वे अपना पृथक् वैशिष्ट्य रखते थे किन्तु वामपक्ष में लगभग मिल चुके थे। शाक्त वाममार्गी, शैव कापालिक; वैष्णव मधुरभावना भावित और बौद्ध सहजयानी बनकर नारी की उपासना के चौराहे की ओर बढ़ चुके थे। उसकी संगति अत्यावश्यक बन चली थी। परिणामस्वरूप नेपाल के मन्दिर या उपासना-गृह तथा राजमहल तक युगनद्ध प्रतिमाओं से इस तरह चिह्नित हो गये कि जिन्हें देखकर इस

१ बाजत अनहद नाद धुनी सुनी आनन्द भेरी—जो० स० प० र सा० प० २५२, (अभयानन्द)।

२ धर्म एवं संस्कृति मुरलीधर भट्टराय, पृ० २६।

परम्परा के इतिहास को न जानने वाले व्यक्ति को आज वे काम क्रीडा के केन्द्र लगते हैं। दक्षिण पक्ष में सबके सिद्धान्त तो बने रहे पर साध्य अभिन्न हो गया। उदाहरणार्थ—शाक्त और शैव नाथपन्थ में वैष्णव और बौद्ध सहजिये वैष्णवों में अन्तर्भुक्त होकर धर्म समन्वय कर रहे थे। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि इस दक्षिण पक्ष में जो समन्वय हुआ उसमें एक का दूसरे में विलयन नहीं हुआ जैसा कि भारत में बौद्ध धर्म का विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों में हुआ। सबकी सत्ता बनी रही, पर भेदभाव नगण्य हो गया। बौद्ध मंजुश्री को हिन्दू, सरस्वती मानकर पूजने लगे। शैवों के पशुपति स्मार्त वैष्णवों द्वारा चारों धाम के प्रतीक तथा बौद्धों द्वारा पाँच ध्यानी बुद्ध माने जाने लगे।[1] शाक्तों की शीतला, भैरवी, काली बौद्धों द्वारा भी पूजी जाने लगी। ओल्डफील्ड को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नयाकोट के समीप देवीघाट के मन्दिर में बौद्ध पुरोहित के पौरोहित्य में सर्वाधिक रक्त पिपासु देवता की बलिपूजा सम्पन्न होती है।[2] मछेन्दरनाथ को योगियों ने मत्स्येन्द्र शाक्तों ने शक्ति तथा बौद्धों ने लोकेश्वर के रूप में पूजना प्रारम्भ किया।[3] पीछे और भी पन्थों ने उन्हें अपने अपने आराध्य के रूप में माना।[4] बौद्ध तथा हिन्दू तान्त्रिकों का गढ़ होने के कारण नेपाल की समस्त उपासना-पद्धतियों पर वामपन्थी तान्त्रिकों का प्रभाव पहले से चला आ रहा था। बिना बलि दिए कोरी पूजा हो ही नहीं सकती थी। बूढ़ा नीलकण्ठ जहाँ विष्णु की विशाल शेषशायिनी मूर्ति है तथा पशुपतिनाथ के मन्दिर में कुछ महात्माओं के प्रयत्न स्वरूप—बलिविधान नहीं है नहीं कहना चाहिए—विष्णु और शिव को जो वहाँ के क्रमशः प्रधान देवता हैं, बलि नहीं दी जाती है, किन्तु मन्दिर के परिवेश में ही विष्णु और शिव की मूर्तियों के सामने ही बूढ़ा नीलकण्ठ में गणेशजी

---

1 Oldfield Sketches from Nepal p 190

2 Ibid p 197

३ द्रष्टव्य—मत्स्येन्द्रपुर (बुङ मती) के मत्स्येन्द्रनाथ के मन्दिर के तोरण में श्री निवास मल्ल द्वारा खुदवाया हुआ लेख—

'मत्स्येन्द्र योगिनो मुख्या शाक्ता शक्ति वदन्ति यम।
बौद्धा लोकेश्वर तस्म नमो ब्रह्मस्वरूपिण ॥

४ मत्स्येन्द्रनाथ को कथा (उपोदघात) चक्रपाणि चालिसे।

जस लाइ बौद्ध मत का जनबुद्ध भन्छन
विज्ञानि पंडित हरू जति सूर्य भन्छन
यो लोक पालन गर्न हो अवतार लिए को
यो लोकपाल इमि हुन जन ले कहेको ॥

पशुपतिनाथ म काल भरव तथा शीतला बलि लेते रहे। यह क्रम चलता रहा और आज भी चलता है। आज भी जबकि भारत का, विशेषत हिन्दी क्षेत्र का गणेश सवथा शाकाहारी है, नेपाल म वह मासाहारी है। भारत के गणेश को मोदक चढ़ाए जाते हैं जबकि नेपाल के गणेश के सिर पर अडे तोड़े जाते हैं। उसकी जर्दी और मुर्गे, बकरे या भसे के उष्णरक्त से उस स्नान कराया जाता है। इस प्रवृत्ति म आज भी कितना बल है इसका अनुमान इससे लगाया जाता है कि दशहरा में ट्रक ड्राइवर तथा रिक्शा चलाने वाला अपने ट्रक और रिक्शा के पहिया को जब तक यदि किसी निरीह पशु के रक्त से स्नान न करा सकें तो कम-से-कम उसके छीटे नही दे लेते तब तक उसके मन से दुघटना का भय नही जाता।

इस सरक्त पूजा विधान को भारत के केन्द्रीय प्रदेशो से विदा किये जाने पर वहा वष्णव उपासना का प्रचार हुआ। दक्षिण के आलवार सन्तो ने इस भावात्मक भक्ति को फैलाने मे बडा योग दिया। इनके उपास्य विष्णु या विष्णु क अवतार रहे। आचार्यों ने जब उस भक्ति को शचन का रूप दिया तो उन्होंने भी बलि को स्थान नही दिया। परिणामस्वरूप वाल्मीकि और अध्यात्मरामायण के राम भले हो मासाहारी हा, भक्ता और आचार्यों ने उन्ह फलाहारी ही चित्रित किया। इन्होंने कृष्ण को माखनचोर गोपाल बनाया। बलिहीन पूजा विधान वष्णवो द्वारा अपनाए जाने के कारण पीछे वह पूजा जिसम बलि न हा आराध्य शिव या देवी होने पर भी वष्णव कही जाने लगी। निरामिष भोजनालय को जब हम वष्णव भोजनालय कहते हैं तो वहाँ भी यही बात लागू होती है। नेपाल म वैष्णव भक्ति के पुनरुत्थान का कारण वैष्णव पूजा विधान के प्रति आकषण ज्ञात होता है। यह भक्ति दक्षिणपथी शैव बौद्ध और वैष्णवा की उपासना का सहज सम्भाव्य विकसित रूप है। नेपाल का स्मात वष्णव सम्प्रदाय मरन तथा अन्य सम्प्रदाया को प्रभावित करने म समथ हो गया। देवता के नाम पर पशु मारण परम्परागत होने पर भी शाह और राणाकाल मे ऐसे लोगा का मन क्षोभ कविता म प्रस्फुटित हो गया जो हिन्दी प्रदेशो की उपासना पद्धति से प्रभावित हो चुके थे। यद्यपि रामकृष्णादि से नेपाली जनता का उतना ही पुराना सम्बन्ध है जितना भारतीय जनसमाज का तो भी उन्नीसवी शताब्दी म जिस भक्ति-साहित्य का सजन नेपाल म हुआ उसकी प्रेरणा उन्हें हिन्दी प्रदेशा के भक्ति आन्दोलन स ही प्राप्त हुई और वह काव्यनिष्ट वष्णव भक्ति उस तान्त्रिक भक्ति की प्रतिक्रिया म प्रसारित हुई जिसम पूजा बलियुक्त होती रही। जोसमनी सम्प्रदाय के प्रधान गुरु शशिधर ने नियम बनाया कि जीवहत्या करने वाले को

सम्प्रदाय से अलग कर दिया जाय।[1] सन्त ज्ञानदिलदास बलिपूजा का कटु आलोचक रहा है। बसी पूजा को उसने यमराज की भक्ति कहा है।[2] अध्यात्म रामायण के अनुवादक होते हुए भी भानुभक्त ने रामपक्षीय बलिपूजा की बात छोड दी है। 'मेरो राम' लिखकर राम भक्ति साहित्य में योग देने वाले लखनाथ जी ने अपने तरुण तपसी में बलिपूजा पर तीव्र व्यंग्य किया है।

नेपाली हिन्दी भक्ति काव्य के कारण विषयक प्रश्न

नेपाली और हिन्दी भक्ति-साहित्य का कारण राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण को न मानकर सांस्कृतिक परम्परा को मानने में कई एक प्रश्न उठते हैं कि यदि समाज और राजनीति की विशेष परिस्थितियाँ भक्ति साहित्य के सृजन में कारण नहीं है तो भारत में लगभग सर्वत्र एक ही समय में भक्ति आन्दोलन क्यों खडा हुआ? वीरगाथा काल में ही भक्ति साहित्य क्यों नहीं बन गया और रीतिकाल में मन्द क्यों पडने लगा? नेपाल और भारत में जहाँ समान राजनीतिक स्थितियों के समय में अन्तर है भक्ति साहित्य अलग-अलग समय में क्यों निर्मित हुआ? इनका उत्तर है कि भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में प्रवृत्ति और निवृत्ति पक्ष बारी बारी से उभरते रहे। एक बार अर्थ काम तो दूसरी बार धर्म-मोक्ष के तत्त्व प्रबलता प्राप्त करते रहे। प्रवृत्ति पक्ष की बारी के समय शृंगार वीरादि अन्य रसों का प्राधान्य रहा। तब या तो साहित्य ने समाज को बनाया या वह उसके अनुसार निर्मित हुआ—इसीलिए इस प्रवृत्ति पक्षीय साहित्य में समाज की स्थिति भेद के अनुसार रसभेद पाया जाता है। वैदिक काल से लेकर

---

१ योगी होइके गृस्तानी गर्या चित्तसर्जीव बध गर्या बेपार गर्या कोसान गर्या—एति चार कर्म गर्या लाइ भेष बेखि अलग गरि दिनु। जो० स० प० र सा० पृ० ३१५।

२ (क) धन जन भन्छन देवी माई भाक्छन
पशुधात भयो भन्या धर्म कहाँ रहछन।
गरिम्मारा पशुधात जो कोही गछन
नर्क तलाउ भासमा सहज गै पछन ॥
—ज्ञानदिलदास—जो० स० प० र सा०, प० ३२६।

(ख) देवन बागह को पकाइ हालु रखतो
तेस्त कन भनु यमराज को भक्ती।
प्रान उठी समाधी पशुधात पूजा
वइकुन्ट जान लाग्या आधा बाटो कूजा ॥
—ज्ञानदिलदास—जो० स० प० र सा० प० ३४५।

इस समय तक यही क्रम अत्यल्प अपवादसहित भारतीय साहित्य में देखा जाता है। तदनुसार ही वीर और रीति के बीच में हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल बना। वीरगाथा से पहले सिद्धों और जैनियों के काव्य भी मूलतः निवृत्ति-परक हैं। रीतिकाल के बाद हरिश्चन्द्र काल आधुनिक काल का अंग होना हुआ भी भक्तिमय काव्य का भी स्रोत रहा है। इसी सिद्धान्तानुसार समस्त भारत में लगभग एक ही समय में विभिन्न भाषाओं में भक्ति साहित्य की निर्मिति हुई और उस भक्ति की धाराओं का रूप निश्चित हुआ सांस्कृतिक विकास क्रमानुसार।

यथार्थतः निवृत्तिमयता भारतीय साहित्य की सामान्य विशेषता है। जब वह समाज की बाह्य आवश्यकताओं और राजनीति से प्रभावित हुआ, तब उसमें प्रवृत्तिपरक भिन्न भिन्न रसों की रचनाएँ हुई। इस तरह हम हिन्दी के वीरगाथा काल और रीतिकाल को बाह्य परिस्थितियों का परिणाम कह सकते हैं भक्तिकाल को नहीं। निवृत्तिपरक काव्य भारतीय साहित्य का सतत प्रवाहमान प्रकृत रूप है। वह रगहीन पानी की तरह है। जिस काल में उसके उपर राजनीति और समाज का रंग नहीं चढ़ता है वह धर्म-साधना के सहज विकास क्रमानुसार निर्मित एवं रूप धारण कर सामने आता है। इसी नियम से बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित वीरगाथा और रीतिकाल के बीच अपने शाश्वत रंग को लिए वस्तुतः नीरस एवं शुद्ध भक्ति साहित्य की रचना हुई। यह ठीक है कि साहित्य के रूप को बनाने में बाह्य परिस्थितियाँ कारण बना करती हैं, किन्तु अनिवार्यतः नहीं। नेपाली और हिन्दी का भक्ति काव्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उस पर राजनीति और सामाजिक स्थिति का अत्यल्प प्रभाव देखा जाता है।

नेपाली और हिन्दी के भक्तिकाल का अन्तर भी बाह्य परिस्थितिजन्य नहीं है बल्कि बहुत-कुछ सांस्कृतिक विचारधारा के प्रसरण-संवरण-वाले भेद-जन्य है। नेपाल तिब्बत और भारत की संयुक्त तान्त्रिक पद्धतियों का गढ़ रहा और बहुत दिनों तक वामाचारियों का सिद्ध पीठ बना। पूर्व प्रभावों को हटाने या कम करने और वैष्णव भक्ति को फैलाने में वहाँ देर लगी। जब भारत का हिन्दी क्षेत्र सगुण निर्गुण की वैष्णवी उपासना में तल्लीन था तब नेपाल में महामुद्रा की साधना चल रही थी। वैष्णव भक्तिकाल के आरम्भ होने के बाद तक श्री ५ सरकार रणबहादुर शाह ने ब्राह्मणी को महामुद्रा बनाया।[1] यातायात के साधन विरल होने से मदानों का प्रभाव पहाड़ों पर सद्य और सर्वगमना नहीं बन सका। प्रायः देखा जाता है कि संस्कृति की नई चेतना केन्द्र में जन्म लेती है, किन्तु उसकी अन्तिम सांस छिपे हुए स्थलों में छूटती है जहाँ वह कुछ काल तक—रुग्णावस्था में ही सही—लोगों से सेवा प्राप्त करने की

---

१ जो० स० प० र सा० जनकलाल, पृ० ६६।

अभिव्यक्ति बनी रही है। यही कारण है कि जब भारत का हिन्दी भक्त भक्ति की रचनाओं से ऊपर शृंगारिक कवियों के विकास हुआ तब नेपाल में भक्तिकाव्य का उदय हुआ।

नेपाली भाषा का धीरे प्रचार न होना भी नेपाली भक्तिकाव्य की पिछड़ाई का एक कारण है। विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक नेपाल में अनेक बोलियाँ चल रही थीं। काव्य रचना या तो संस्कृत में होती या हिन्दी में।[1] भारत विदित है कि भक्ति साहित्य का प्रचार नेपाल में भी लगभग उसी समय हो गया था जब भारत में हुआ और भारत के पौराणिक भक्ति ग्रन्थों का अनुवाद और पाठ भी लगभग उस समय करीब-करीब उस ही समय में भारत और नेपाल में प्रचलित हुए। यह ठीक है कि भारत में वैष्णव भक्ति जिस रूप में पली और जिस भावना से कवियों ने उसका स्वागत किया वैसा नेपाल में उपयुक्त वातावरण में सब नहीं हुआ जब भारत में हुआ किन्तु उसका सर्वथा अभाव नहीं रहा था। इस तरह हम देखते हैं कि भक्ति साहित्य को छोड़कर भक्ति प्रचार पर ही हम दृष्टि डालें तो भारत और नेपाल में तत्सम्बन्धी समय भेद नगण्य है। परन्तु भक्तिकाव्य रचना-सम्बन्धी समय का अन्तर भी नेपाली भाषा की रचनाओं में ही देखा जाता है।[2] संस्कृत हिन्दी तथा उसकी बोलियों में तो नेपाल में भी भक्ति रचनाएँ तभी या कुछ ही पीछे होती रहीं जब वे भारत में हुईं।

नेपाली प्रमुख भक्ति धाराएँ

नेपाली में भक्ति की तीन धाराएँ प्रचलित रहीं—रामभक्ति कृष्णभक्ति और सन्तधारा, क्योंकि नेपाल के वैष्णवों में भगवान् को प्रधानतः राम कृष्ण और अनिर्वचनीय तत्त्व के रूप में ही ग्रहण किया जाता रहा। यह नेपाली वैष्णवों के ऊपर भारतीय वैष्णवों के प्रबल प्रभाव का परिणाम है। इन आराध्यों का नेपाल प्रवेश का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। हिंदी क्षेत्र के वैष्णवों की भक्ति ही नेपाल की ओर बढ़ी अवश्य ही वहाँ पहुँचने पर उसने कुछ स्थानीय प्रभाव ग्रहण किए और कुछ संस्कृत के भक्ति ग्रन्थों में सुरक्षित प्रभाव भी उस पर पड़े जिससे उसके भाव विधान में थोड़ा बहुत अन्तर आ गया। इस भक्ति के लिए क्षेत्र वहाँ पहले से ही वर्तमान था। भारत और नेपाल की वैष्णव भावना का

१　द्रष्टव्य—पुराना कवि र कविता　बाबूराम आचार्य पृ० २।

२　द्रष्टव्य—भानुभक्त एक समीक्षा　हृदयचन्द्र सिंह प्रधान पृ० ८६।
नेपाली भाषा मा कविता गर्ने आरम्भ भन्दा पहिले पनि नेपाली कविहरू संस्कृत, अवधी भोजपुरी आदि भाषा मा क्ति ईश्वर रूप का प्रभु कि मालिक रूप का प्रभु को भक्ति को यशोगान गर्दथे।

इतिहास एक-सा है। वह भावना बीच-बीच में अन्य सांस्कृतिक शाखाओं से अभिभूत होती रही और यथासमय उसका पुनर्जागरण होता रहा। 'मधेश' मध्यदेश से नये आन्दोलन चलते रहे और उनसे नेपाल का सांस्कृतिक धरातल प्रभावित होता रहा। लिच्छवि काल की विष्णु मूर्तियों को दृष्टि में रखें तो उस समय वैष्णव भावना का नेपाल में पर्याप्त प्रचार अनुमित होता है। चौथी शताब्दी के चाङुनारायण की मूर्ति के बाद ७वीं शताब्दी तक बहुत-सी विष्णु प्रतिमाएं नेपाल में स्थापित हुई। बूढ़ा नीलकण्ठ की जलशायी विष्णुमूर्ति छठी शताब्दी की प्रतीत होती है।[1] लिच्छविकाल में ही लक्ष्मीनारायण, त्रिविक्रम, वराह, विश्वरूप आदि विष्णु मूर्तियां स्थापित हुई। भक्तपुर आदि स्थानों में निवासस्थानों तथा मन्दिरों के स्तम्भों तथा खिड़कियों पर विष्णुमूर्तियां बनीं।[2] पाटन में गैरी-धारा में भिन्न भिन्न स्थिति वाली विष्णुमूर्तियां हैं। अर्धनारीश्वर विष्णु की अतिप्राचीन एक मूर्ति यहाँ विद्यमान है जिसे लोग लक्ष्मीनारायण कहते हैं। ये मूर्तियां १०वीं शताब्दी की मानी जाती हैं। मल्लकाल में भी बहुत सी विष्णु तथा रामकृष्ण की मूर्तियां स्थापित हुई। हनुमान ढोका की अर्धनारीश्वर लक्ष्मी-नारायण की मूर्ति इसी काल की है। इसी समय नेपाल की स्थापत्यकला का गौरव पाटन का कृष्णमन्दिर निर्मित हुआ। पशुपतिनाथ के समीप लवकुश सहित श्रीराम की स्थापना मल्लों ने ही की।[3]

(ख) उपर्युक्त मूर्तियों के काल पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट होती है कि मल्लकाल से पहले वैष्णवों में रामकृष्णोपासना के बदले विष्णु की भक्ति प्रचलित थी किन्तु मल्लकाल में जबकि भारत में रामकृष्ण भक्ति ने जोर पकड़ा, नेपाल में भी विष्णु के अतिरिक्त उनके अवतार रामकृष्ण की उपासना का प्रचार हुआ। रामदूत हनुमान की स्थापना कर हनुमान ढोका को मल्लों ने बनाया। योगी नरसिंह मल्ल ने अपने को 'गोपाल चरण धूलि धूसरित' कहा।[4] श्री मुरलीधर भट्टराय लिखते हैं— सम्पत्ति को जीवित रखने के लिए बसन्तपुर में श्रीकृष्ण चरित्र—राधाकृष्ण की रासलीला—बसन्त ऋतु में मनाई जाती थी।[5] इस समय भारत में सन्त साहित्य भी प्रचार प्राप्त कर रहा था। नेपाल में भी वह आया

---

१ नेपाल भारत सांस्कृतिक सम्बन्ध—लिच्छवी र गुप्तकालीन मूर्तिकला बाबूराम आचार्य 'नेपाल' ३० अत्र २०२०, पृ० १५, त्रिभुवन वि० वि० सां० प०।

२ Dr S B Deo Journal of the Tribhuvan University p 44

३ धर्म एवं संस्कृति मुरलीधर भट्टराय (विश्वमंत्री संघ काठमाडू) पृ० १३।

४ वही प० १३।

५ वही, प० ३५।

और उनसे यहाँ जोसमनी नाम से ख्याति प्राप्त की। इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध गुरु शशिधर जगन्नाथ में रहे। इसका परम्परागत इतिहास वही है जो भारतीय सन्तों का। शाहकाल में नेपाली कवियों ने इस सम्प्रदाय में अन्दर रहते हुए हिन्दी में कविता लिखना प्रारम्भ किया। यह सम्प्रदाय उसी तरह कबीरदास की शब्दावली तथा विचारों की छाप लिये हुए है जिस तरह अन्य हिन्दी सन्त मार्ग। कहीं-कहीं तो जोसमनियों के पद कबीर के पदों की प्रतिलिपि-से लगते हैं। नीचे लिखे कुछ उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को सिद्ध किया जाता है

(१) साधु हुनु बडो कठोर है जसे खाँडा की धार।
डगमग करे तो गिर पडे सच्चा उतरे पार॥[१] अगम दिलदास

(२) साधु कहावन कठिन है ज्यों खाडे की धार।
डगमगाय तो गिरि पडे निश्चल उतरे पार॥[२] कबीर

(३) अरे अनारी मन के हारे हार मन के जीते जीत।
परब्रह्म परमानन्द मिले मन के परतीत॥[३] शशिधर

(४) मन के हारे हार है मन के जीते-जीत।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं के परतीत॥[४] कबीर

(५) तरवर वक्षेमा फुल बिना ठाडे बिन फूल कि फल लागा जो।
साखा न पत्र कछु नहि बिन्या अष्ट गगन मे ईवज्यो राम॥[५] शशिधर।

(६) तरवर एक पेड बिना ठाढ़ा बिन फूला फल लागा।
साखा पत्र कछू नहि वाके अष्ट गगन मुख बागा॥[६] कबीर

नेपाली भाषा के जोसमनी सन्तों ने अपने पूर्ववर्ती जोसमनियों का, जो हिन्दी भाषा में कविता करते रहे पूरा पूरा अनुकरण किया। जो अन्तर कहीं दिखाई देता है वह वयक्तिक वशिष्टय मात्र है। उसे किसी बाह्य प्रभाव का परिणाम नहीं मानना चाहिए।

(ख) अब एक प्रश्न और उठता है कि विष्णु के अवतारों में राम और कृष्ण नेपाल में समान रूप से आदृत रहे। नेपाली कवियों में से किसी ने राम तथा किसी ने श्रीकृष्ण को अपने काव्य का नायक बनाया। लगभग एक ही समय में अलग अलग आराध्य को अपनाने का क्या कारण है? इसका उत्तर वही है जो कबीर जायसी सूर तुलसी आदि हिन्दी कवियों से लगभग एक ही समय पदा

१ जो० स० प० र सा० प० ३०४।
२ सत्य कबीर की साखी स० युगलान दजी (२००६ वि०), पृ० १५५।
३ जो० स० प० र सा० प० १६५।
४ कबीर ग्र०, प० १५२, दो० स० ६८५।
५ जो० स० प० र सा०, प० २२६।
६ क० ग्र० प० १२३ प० स० १६५।

होकर भी भिन्न भिन्न शाखा की भक्ति को अपनाने का कारण पूछने पर प्राप्त होता। जो भक्त जिस सम्प्रदाय के आचार्य अथवा गुरु के सम्पर्क में आया, उसने तत्तत्सम्प्रदाय की अन्यान्य बातों के साथ आराध्य भी अपनाया। उनके अपने काव्यनायक को छाँटने में किसी बाहरी परिस्थिति—राजनीतिक अथवा सामाजिक को कारण मानना अनुपयुक्त है, फिर भी जैसे हिन्दी भक्त कवियों के विषय में हिन्दी आलोचकों ने इन कारणों की कल्पना की है उसी तरह कतिपय नेपाली आलोचकों ने नेपाली कवियों के आराध्य चुनने के मनगढ़न्त हेतु दिखाने का प्रयत्न किया है। भानुभक्त ने राम के आख्यान को ही क्या अपनाया, इसका कारण श्री भाइचन्द्र प्रधान ने बताया कि[1] गो हत्यारे मुसलमानों के 'विरुद्ध विवशता-पूर्वक' जैसे गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की उसी तरह अंग्रेज और अन्य शत्रुओं के आक्रमण के फलस्वरूप त्रस्त एवं हताश जनता में शान्ति, स्थिरता तथा उत्साह के प्रादुर्भाव के लिए विवशतापूर्वक भानुभक्त आचार्य ने रामायण की रचना की। रामायण के स्थान पर कृष्णायन काव्य भी लिखा जा सकता था। रामायण की ही रचना क्यों हुई? इसका एक उत्तर उन्होंने यह दिया कि "रामचन्द्र की लोक सेवा श्रीकृष्ण की सेवा से उच्चकोटि की है और युद्ध एवं शान्ति का विवरण भी उच्चकोटि का है।"[2] श्री बालचन्द्र शर्मा के अनुसार भानुभक्त की रामभक्ति का कारण मर्यादा का आलम्बन रहा है।[3] नेपाल की जो स्थिति उस समय थी, तदनुसार राम जैसे नायक के पाँव पकड़ना ही उनकी दृष्टि में सच्चे कवि का काम था। दूसरे स्थान पर वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि भक्तिकालीन स्थिति में कृष्णकाव्य का बनना ही युगानुरूप था क्योंकि सुगौली सन्धि के बाद नेपाल में श्री शर्माजी के कथनानुसार—विलासिता का बोलबाला था।[4] उनके कथन में 'वदतो व्याघात' पाया जाता है। श्री भाइचन्द्र प्रधान ने भक्तिकालीन नेपाल की स्थिति को श्री शर्माजी के विपरीत विरक्ति तथा भक्ति-पूर्ण माना है। उनके मतानुसार अधिकांश जनता 'ईश्वर भक्ति और धर्म' की ओर लगी थी और उन्होंने कृष्ण और राम दोनों आदर्शों को युगानुकूल माना है। अवश्य ही अश्लीलताहीन होने के कारण राम चरित्र में वे महत्तर आदर्श को देखते हैं। भानुभक्त ने उसी आदर्श को अपनाया। कृष्णकाव्यकर्ता द्वितीय श्रेणी के आदर्श तक ही पहुँच पाये।[5] नेपाल के ही कतिपय आलोचकों का यह विचार भी है कि जो स्थिति भक्तिकाव्यों के रचना समय में नेपाल की रही, उसे दृष्टि में

१ आदि कवि भानुभक्त आचार्य भाइचन्द्र प्रधान, पृ० २०।
२ वही, पृ० २६।
३ भानुभक्त बालचन्द्र शर्मा, पृ० ४३।
४ वही, पृ० १५।
५ द्रष्टव्य—आदि कवि भानुभक्त आचार्य भाइचन्द्र प्रधान पृ० ५, ३३।

रचा हुआ राम का चरित भी मौलिक नहीं था और इस तरह से भानुभक्त की युग के प्रति किसी देन को स्वीकार करना तो दूर रहा उन्हें उसे अभिशाप का कारण माना है।[1]

मुझे यहाँ आलोचकों के विचारों का खण्डन नहीं करना है। यहाँ उनका केवल मन्तव्य रख दिया गया है और उसके आधार पर इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा सकता है कि जब हम किसी काव्य की ऐतिहासिकता भिन्न रूप में मान लेते हैं तो तथ्यों का तोड़ मरोड़ भी स्वाभाविक हो जाता है। काल पर युग का प्रभाव अत्यधिक मानने के कारण भक्ति साहित्य के आलोचकों को उपा-लोचनात्मक धारणाएँ बदलनी पड़ी हैं। सच्ची बात यह है सांस्कृतिक विकास की ही ऐसी भूमि तैयार हो चुकी थी कि जो भक्तिकाव्य के लिए उर्वर सिद्ध हुई। भक्त कवियों के आगमन का कारण सम्पर्क भी ही प्रधानतः माना जा सकता है। भानुभक्त के पितामह ही नहीं गुरु भी आचार्य श्रीकृष्ण रामभक्त थे।[2] उन्होंने रामायण की रचना की। उनकी कीर्तिकामना ने भी राम का आख्यान लिखने में सहायता दी। धीरन्ताली पन्त मथुरा वृन्दावन में रहे। वहाँ उनके ऊपर कृष्णभक्ति का ही प्रभाव पड़ना था। फिर श्री सू० वि० ज्ञवालीजी के मता-नुसार[3] गोपिका स्तुति और द्रौपदी विलाप रचनाएँ जो अन्य विद्वानों द्वारा वसन्त इन्दिरा और विद्यारण्य केशरी की मानी जाती हैं प्रकाश में आई। यदि हम श्री बाबूराम आदि अन्य विद्वानों के मत को ही मानें तो भी धीरन्ताली पन्त कृष्ण भक्ति शाखा के कवि ठहरते हैं। वे उनकी एक कृति कृष्णचरित्र बताते हैं।[4] रघुनाथ पोखरेल ने काशी में रहकर अध्यात्मरामायण के सुन्दरकाण्ड का अनुवाद किया।[5] वहाँ अवश्य ही वे किसी रामभक्त के सम्पर्क में आये होंगे। बाल-कृष्ण शर्मा उनके ऊपर हिन्दी भाषी जोगियों का प्रभाव पड़ा मानते हैं।[6] विद्यारण्य केशरी ने भी बनारस रहकर तथा कृष्ण भक्ति का प्रभाव ग्रहण कर कृष्ण भक्ति की रचनाएँ नेपाली में की थी।[7] मोतीराम भट्ट ने भारतेन्दु से प्रेरणा ली। इस तरह बनारस तो लगभग सभी नेपाली कवि जाते रहे। वहाँ किसी कृष्ण

---

१ भानुभक्त एक समीक्षा हृदयचन्द्र सिंह प्रधान पृ० २३ ८७ १००।

२ द्रष्टव्य—आदिकवि भानुभक्त आचार्य भाइचन्द्र प्रधान पृ० ३३।

३ भानुभक्त की रामायण श्री सूर्य विक्रमज्ञवाली (नेपाली साहित्य सम्मेलन दार्जिलिंग हि० स०) पृ० ४०।

४ पुराना कवि र कविता बाबूराम आचार्य पृ० ६।

५ पुराना कवि र कविता श्री बाबूराम आचार्य, पृ० १६७।

६ रघुनाथ पोखरेल र उनका कविता श्री बालचन्द्र शर्मा, हिमानी वर्ष १ अंक १ पृ० ५२।

७ बुइगल श्री कमल दीक्षित पृ० ३०१ २।

या राम के उपासक के सम्पर्क में आकर उनका तत्तदाराध्य का उपासक बन जाना स्वाभाविक है।

(ग) हिन्दी भक्ति साहित्य की चौथी प्रेममार्गी सूफी धारा नेपाल में नही पहुँच पाई। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारत में सूफी धारा के प्रचारक सूफी सन्त रहे। नेपाल में उनका प्रभाव नही देखा जाता है। इस धारा का कोई स्रोत नेपाली भक्तिपरा पर उमडता नहीं दिखाई देता है। श्री मोतीराम[1] भट्ट ने मानुभक्त कृत 'मधुमालती' का उल्लेख किया है। वह ग्रन्थ प्राप्य नहीं है। अतएव नाम से सूफी काव्य लगता हुआ भी उसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है। नेपाली भक्ति के इतिहास पर विचार करने के पश्चात यही सम्भावना होती है कि वह साधारण प्रेमकाव्य रहा होगा—सूफी भक्तिकाव्य नहीं। मोतीराम भट्ट का 'उषाहरण' प्रेमकाव्य तो है किन्तु उसमे भी सूफी भक्ति भावना नही मिलती। यथार्थतः उसका प्रतिपाद्य भक्ति है ही नहीं। पुराण प्रख्यात कथानक को अपनाने के कारण भट्टजी को उसे शिव की पराजय तथा श्रीकृष्ण की जय का वृत्तान्त दिखाना पड़ा। इस तरह बहुत हुआ तो हम उसे कृष्णभक्ति धारा के अन्दर ला सकते हैं किन्तु उसे सूफी प्रेमकाव्य नही माना जा सकता है।

(घ) नेपाल में, जहाँ देवभाजु हिन्दुओं को 'गुभाजु' बौद्धों से भिन्न करने के लिए[2] 'शिवमार्गी' कहा जाता रहा, शिवार्चन भक्ति शाखा चल सकती थी। इस दिशा में मल्लकाल से ही हिन्दी और उसकी बोलियो में वहाँ कुछ रचनाएं हुई थी। मुझे जगज्जयमल्ल, प्रतापमल्ल, जय जोगिन्द्रमल्ल के अतिरिक्त विद्यापति के शिवभक्ति सम्बन्धी भक्ति भावपूर्ण कुछ पदो का एक हस्तलिखित संग्रह नेपाल एकेडेमी में देखने को मिला। उसके कुछ पद अविकल रूप में नीचे लिखे जाते हैं।

(क) विकत जेला चहे किछु नहि रोगभयरे,
आगे माइ बस-बस हन्त धरो बर बुध कवन पया भेतारहारे।
छारा छारा भरा त्रिशूल डमरु धरो रे ॥ आगे माइवहे २
फणिपति गिम्बर कउन पया भेतर हारे
त्रिनयन हर एक अमरय बरोरे—आगे माइ सिर २
सर सर जलधर कउन पया भेतर हारी

१ कविसमूह वर्णनम नवाँ पद मोतीराम भट्ट। द्रष्टव्य—क० मो० भ० को स० जी०, पृ० २६।

२ नेपालमा भने हिन्दू धर्मलाई बुझाउने मोटा अर्थ शब्द को प्रचलन थियो। त्यो शब्द शिवमार्गी हो। यो शब्द बुद्धमार्गी का जोडमा शैव सम्प्रदाय का आधारमा निर्माण गरिएका हो।'—हिन्दूराज्य श्री सूर्य विक्रम ज्ञवाली —हिमाली—नेपाली साहित्य संस्थान, पृ० ३३५।

भनय विद्यापति गोरी विक्रम तीरे ॥ आगे माइ वहे रे
उगन्त बजन के लागिरो पया मेतेर हारे । — विद्यापति

(ग) राग-बेराग ताल सेता
भवानी जननी माता तोहे जगदिम्बरी ॥ ध्रु० ॥
माता तुय पद पङ्कज ध्याय अप तप
मोहि अनाथ उद्धार करो ॥ भवानी ॥
जत जत देवत दुःखतहि हारे सब
विदारण कय देहो पद धारी ॥ भवानी ॥
निर दिस मेरो मोरा दुरित बिसारे
माता देलो रयबर राखो ॥ भवानी ॥
श्री जय जोग नरेन्द्र नपति ध गावे
नित्य नित्य दरशन देहो ॥ भवानी ॥
— जय जोगेन्द्रमल्ल

(ग) ग्वचलमुरासन दय हो भवानी । ध्रु०
तोहर चरण कमल हारम मनसा भमरमेला
त त्रिभुवन य सम अभिमत तेहि सब अनिप हुत कयग्यरा
॥ ग्वचल० ॥
चचल हृदय स्थिर न होईय—
ते परि भगति बाध्य चरण शरण जानिय राखि मोरे परिहरि
सब अपराधि ॥
अपने रूप न जानी तरबर स्येचिये
अमृतपानि नपति जगत जये मल्ल
मनोरथपुरी यस्य कय जानिये ॥ ग्वचल० ॥ जगज्जयमल्ल

(घ) भगवती परमेश्वरी मम करुय भजनी चण्डिके
जनमखण्डिनी जात रजिनी मात तारिणी रेबिके ।

अगततारिणी कालहारिणी दरशन देहु जगदम्बिके
भगवती परमेश्वरी मम करुय भजिनी चण्डिके ॥
— प्रतापमल्ल ।

चण्डी सप्तसती दुर्गाभक्ति तरंगिणी देवी भागवत पशुपति लीला चन्द्रचूड-वन्दना दुर्गासप्तशती सतीचरित्र आदि कुछ रचनाएं शिवशक्ति सम्बन्धिनी आगे-पीछे प्रकाश में आई थी, किन्तु इनमें कवित्व बहुत कम दिखाई पडता है। कोई ऐसा काव्य नहीं दिखाई देता जो इस शाखा का प्रतिनिधित्व कर सकता और न इनमें क्रमिक विकास ही पाया जाता है। हिन्दी में भी पार्वतीमंगल

शिव विवाह, चण्डीचरित्र आदि कतिपय कृतियों को छोड़कर शिव शक्ति सम्बन्धिनी रचनाएँ शास्त्रीय गीता, स्तोत्रों तथा पुराणाख्यानों तक ही सीमित रहीं। उसी के प्रभाव का यह परिणाम हुआ कि शिव शक्ति के सिद्ध-पीठ नेपाल में भी भक्ति की यह धारा साहित्य-क्षेत्र में प्रवाहित न हो सकी।

नेपाली हिन्दी भक्ति-काव्य की सामान्य विशेषताओं की तुलना

(१) नेपाली और हिन्दी भक्ति काव्य संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर रचित हुआ है। हिन्दी राम साहित्य पर वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामायण के अतिरिक्त हनुमन्नाटक या महानाटक प्रसन्न राघव विष्णु पुराण, रामार्चन पद्धति, सहस्रगीति का विशेष प्रभाव पड़ा है जबकि नेपाली रामभक्ति काव्य के संस्कृत के मूल आधार ग्रन्थ अध्यात्म रामायण और वाल्मीकि रामायण हैं। दो एक काव्यों में थोड़ा-बहुत प्रभाव संस्कृत के अन्य रामोपाख्यानों का भी पाया जाता है। हिन्दी के परवर्ती रामकाव्य में पूर्ववर्ती विशेषत तुलसी की रचनाओं का अनुकरण हुआ है। परवर्ती नेपाली रामभक्ति-काव्य पूर्ववर्ती नेपाली और हिन्दी दोनों भक्तिकाव्यों के ऋणी हैं। देखा जाता है कि बहुत कम परवर्ती नेपाली और हिन्दी राम भक्ति-काव्यों का संस्कृत के साथ सीधा सम्बन्ध है। उन्होंने संस्कृत के शिल्प और वस्तु को भाषा काव्यों के माध्यम से प्राप्त किया है।

हिन्दी कृष्ण-काव्य ने श्रीमद्भागवत गोपालतापनी उपनिषद्, ब्रह्मवैवर्तपुराण हरिवंशपुराण की बातें विशेषकर अपनाई हैं। नेपाली कृष्ण भक्ति-काव्य पर श्रीमद्भागवत महाभारत तथा हिन्दी काव्यों का प्रभाव है। भारतीय सन्त साहित्य में वेदान्त सूफी प्रेम, हठयोग तथा वैष्णवभक्ति की छाया है। नेपाली सन्त साहित्य अपनी प्रादेशिक विशेषता के साथ वही है जो भारतीय सन्त साहित्य। यथार्थत नेपाल का अधिकांश सन्त साहित्य हिन्दी में रचित हुआ है और भारत के हिन्दी सन्त साहित्य का ही एक अंग है। नेपाल नाथों का गढ़ होने के कारण उनका प्रभाव वहाँ के सन्त साहित्य पर अपेक्षाकृत अधिक देखा जाता है। परमात्मतत्व के अनेक नामों में शिव का भी उल्लेख उसी प्रभाव के कारण नेपाल की सन्तपरम्परा-जोस्मनी सम्प्रदाय में देखा जाता है।

वस्तुत नेपाली भक्तिकाव्य का बहुलांश अनुवाद है। यह अनुवाद संस्कृत का ही नहीं, हिन्दी का भी है। तुलसी के रामचरितमानस के कुछ काण्डों का अनुवाद श्री रवती रमण पोपाने ने किया गणनमान श्रेष्ठ तथा खड्ग प्रसाद श्रेष्ठ ने राधेश्याम रामायण के काण्डों का अनुवाद किया। तुलसी के मानस का भावानुवाद भी हुआ। नेपाली भक्ति साहित्य के कुछ ग्रन्थ तो काव्य परिधि के भीतर कदाचित ही आ पाते हैं जैसे राजीवलोचन का 'केदार कल्प भाषा', हरिविनय छाया का 'जैमिनी भारत' होमनाथ खतिवाडा का

रचित प्रपणगीता, रमाकान्त बराल कृत अद्भुत रामायण, कृष्णप्रसाद घिमिरे का श्रीमदभागवतानुवाद 'श्रीमदभगवदगीता,' गिरिनाथ सुवेदी का वृहत्कृष्ण चरित्र चिरंजीवी पौड्याल का 'पुराणव' आदि। एक तो ये प्रधानतः अनुवाद हैं और उस पर भी इनमें पुराणत्व है और जब तक पुराणों को काव्य न मान लिया जाय तब तक इन्हें काव्य मानना आपत्तिजनक है, अतएव इन्हें पौराणिक साहित्य में ही स्थान देना उचित होगा। हिन्दी में भी इस तरह अनूदित एवं पौराणिक साहित्य कम नहीं है, किन्तु काव्य साहित्य की विपुलता के सामने वह नगण्य बन जाता है।

(२) नेपाली भक्तिकाव्य में मार्मिकता की खटकने वाली न्यूनता है। इसके सन्त साहित्य में रहस्यानुभूति के विरल चित्र हैं कृष्णभक्ति साहित्य में कथा परिचय मात्र है और रामभक्ति-साहित्य में वस्तुपरक दृष्टि है जबकि हिन्दी के सन्त साहित्य में रहस्यानुभूति के कितने ही सुमधुर उदाहरण विद्यमान हैं कृष्णभक्ति-साहित्य में शृंगार और वात्सल्य से पुष्ट भक्ति के अनेक हृदय ग्राही पद हैं और रामभक्ति साहित्य में विविध भावपूर्ण स्थलों का प्राचुर्य है। राम सीता मिलन वन गमन भरत मिलाप सीताहरण राधा कृष्ण रास माखन चोरी श्रीकृष्ण प्रवास भ्रमर गीत बाल लीला दानलीला आदि स्थलों की वस्तुगत मार्मिकता को हिन्दी भक्त कवियों ने अपनी कलात्मक वाणी से अतिशय तीव्र बना दिया है। नेपाली भक्ति साहित्य की इस कमी का कारण है कवियों की भगदौड़। आधुनिक काल के कवि श्री सोमनाथ सिग्द्याल को छोड़कर और नेपाली भक्ति-साहित्य के कवियों में रमन की बहुत कम प्रवृत्ति पाई जाती है। सन्तों को छोड़कर इस धारा के लगभग सभी कवि इतिवृत्तात्मकता से इस तरह अभिभूत हुए हैं कि मार्मिक स्थलों में तक रुक नहीं पाये। नेपाली कृष्ण भक्ति शाखा के प्रथम मौलिक कवि वसन्त शर्मा की इतिवृत्तात्मकता के विषय में श्री हृदयसिंह प्रधान का विचार सर्वथा युक्तियुक्त है। वे लिखते हैं—

वसन्त शर्मा को वर्णन शैली मा कवितात्मकता कम्ती नै देखिन्छ। गद्य शैली मा कथा व इतिवृत्तात्मक कुरा खुरु खुरु भनेर गए झैं मात्र उनको वर्णन शैली मा केवल कथात्मकता को इतिवृत्तात्मकता मात्र छ। उक्ति चमत्कार भनाइवैचित्र्य शैली सौष्ठव इत्यादि कवितात्मक गुण सारै कम छ। यसले उनको कृति अनूदित न भई बन स्वतन्त्र कल्पना ले पुट भएर पनि प्रभावशाली छन।[१] उनका यह कथन वसन्त शर्मा ही नहीं लगभग सभी नेपाली भक्ति साहित्य के कवियों के विषय में सही है।

(३) हिन्दी-नेपाली दोनों भक्तिकाव्यों का साध्य भगवद भक्ति है। संसार को असार मानकर अतएव उससे ऊपर उठकर प्रभु का गुणानुवाद ही

१ भानुभक्त एक समीक्षा—हृदयचन्द्र सिंह प्रधान, पृ० ३४।

प्रधान रूप स इन काव्यों का सन्देश है। अवश्य ही हिन्दी भक्ति काव्य में भक्ति रस के साथ—व्यापकता के कारण उसे भावमात्र न समझकर रस मानना ही समीचीन है—अन्य अंगभूत रसों के दर्शन भी हो जाते हैं। नेपाली भक्ति-काव्य म और रस तो दूर रहे भक्तिभाव का पोषण भी कदाचित ही हो पाता है। अध्यात्म रामायण, जो स्तुति स्थलों की प्रचुरता से मुख्यत भक्ति भावोत्पादक ग्रन्थ है नेपाली म अनूदित होने पर स्तुतिपरक अंगों के ग्रहण न किए जाने या अत्यधिक संक्षिप्त होने के कारण कोरा रामाख्यान मात्र रह गया है।

(४) नेपाली और हिन्दी दोनों भाषाओं के भक्तिकाव्य में ईश्वर को सर्वसमर्थ मानकर उसकी उपासना का संकेत मिलता है। भक्ति दास्य-सख्य भावापन्न है। हिन्दी काव्यों म माधुर्य भाव भी पाया जाता है जबकि दो एक काव्य कृतियों को छोड़कर नेपाली साहित्य म माधुर्य भाव का अभाव है। कृष्ण भक्तिकाव्य की बात दूर रही, हिन्दी का राम भक्तिकाव्य भी मधुरोपासना से रँगा है। सामान्यत यह माना जाता है कि कृष्णोपासना म माधुर्य और रामोपासना में मर्यादा का प्राबल्य रहा है। किन्तु नई गवेषणा बताती है कि हिन्दी राम भक्ति साहित्य का एक विशाल अंश मधुर भावना स सुसम्पन्न है[१], अतएव यह कहना समीचीन होगा कि कृष्णोपासना में माधुर्य और रामोपासना म मर्यादा और माधुर्य दोनों समान रूप से आदृत हुए हैं। भारतीय भक्ति साहित्य म मधुर उपासना का प्रमुख प्रेरक कारण सहज साधना का सम्पर्क है। नेपाल में उसका अत्यधिक प्रचार रहते हुए भी वहां के भक्ति साहित्य मे मधुरोपासना नहीं आ पाई इसका कारण पहले यह निश्चित किया जा चुका है कि सहज साधना की सहज स्थिति म नेपाल म कोई बाधा उपस्थित न होने के कारण उसका मधुरोपासना के रूप म मार्गान्तरीकरण नहीं हुआ।

माधुर्यपरक दृष्टि के कारण हिन्दी कवियों ने अपने आदर्श पात्रों के चरित्र चित्रण म मर्यादा और माधुर्य दोनों का समावेश किया है। जहां नेपाली भक्तिकाव्य के कृष्ण तक कारे प्रभु हैं वहां राम तक हिन्दी भक्ति साहित्य म परम रसिक चित्रित हुए हैं।

जन भक्ति साहित्य म भी नेमिनाथ और राजुल के चरित्र दाम्पत्य रस से पूर्ण दिखाई देते हैं।

(५) नेपाली और हिन्दी भक्तिकालीन काव्य का कारण—जैसा पहले सिद्ध किया जा चुका है—तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियां नहीं हैं किन्तु समस्त हिन्दी भक्ति साहित्य पर उनका यत्किंचित् प्रभाव अवश्य देखा जाता है। हिन्दी भक्तिकाव्य तीन कालों मे रचा गया—भक्तिकाल रीति

१ द्रष्टव्य—रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय डा० भगवती प्रसाद सिंह। अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर।

काल और आधुनिक काल तथा उनके ऊपर राजनीतिक तथा सामाजिक प्रभाव उत्तरोत्तर जितना ही बढ़ता गया भक्ति का रूप उतना ही हल्का पड़ता गया। भक्तिकाल की रचनाओं से रीतिकाल की भक्तिभावपूर्ण रचनाओं में भक्ति की विशुद्धि तथा गरिमा कुछ कम हो गयी है और आधुनिक काल में कुछ और कम तथा उसी अनुपात में लौकिकता उभरता गया है।

जाके प्रिय न राम बैदेही
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥[1]
मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै
जैसे उड़ि कै जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥[2]

इन पदों में भक्त की जो प्रभु निष्ठा देखी जाती है वह—
कब को टेरत दीन रट होत न स्याम सहाइ।
तुमहू लागी जगतगुरु जगनायक जगबाइ।[3]
तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुराग
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग पग-पग होत प्रयाग[4]
में नहीं पाई जाती। भक्ति की निश्छलता वचन विदग्धता में दब-सी जाती है और—
(क) कहँ करुणानिधि केशव सोये।
जागत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोए।
(ख) डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।

जागो बलि बेगहि नाथ अब देहु दीन हिंदुन सरन ॥[5]
ब्रह्मण्य देव गोपाल जो नाम तिहारो

हे पतित उधारण ! भारत पतित उधारो।[6]
राम तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ? विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो

१ विनय पत्रिका तुलसीदास (स० वि० ह०) पद संख्या १७४।
२ सूरसागर सूरदास (ना० प्र० स०) पद १६८।
३ बिहारी सतसई बिहारीलाल वि० स० पृ० ६६ (सतसई सप्तक, स० श्या० सु० दास०)
४ वही, पृ० ७६।
५ (क) भारतेन्दु ग्रंथावली खंड प्र० सम्पादक ब्रजरत्नदास, का० ना० प्र० स० (प्र० स० २००७) पृ० ५३६।
(ख) वही खण्ड दूसरा पृ० ६८२।
६ मन की लहर प्रतापनारायण मिश्र पृ० २६।

या तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर भला करे, तुम न रमो तो मन तुमम रमा करे।[1]

इन पदा मे भक्ति और भी कृश हो उठती है। यथायत शुद्ध भक्तिकाव्य भक्तिकाल म ही देखा जाता है। नेपाली भाषा की भक्ति रचनाएँ या तो उस समय रची गइ जब हिन्दी काव्य म रीतिकाल चल रहा था या आधुनिक काल म किन्तु उनम न तो रीतिकालीन शृगार देखा जाता है और न आधुनिकता ही। दो एक रचनाएँ अपवाद रूप ली जा सकती हैं। यह ठीक है कि आधुनिक नेपाली कवियो की भक्तीतर रचनाओ म युग उसी तरह प्रतिबिम्बित है जसे आधुनिक हिन्दी कवियों की सामान्य रचनाओ म, किन्तु भक्ति की रचना करते समय नेपाली कवि ने युग की पुकार प्रकट करने म बडी कृपणता दिखाई है। उदाहरणस्वरूप लेखनाथजी को लिया जा सकता है।

(६) हिन्दी भक्ति साहित्य किसी-न किसी सम्प्रदाय के अधीन निर्मित हुआ है फलत तत्तत्सम्प्रदाय की दार्शनिक पद्धति से वह प्रभावित रहा है, परन्तु जोसमनी सन्त-साहित्य को छोडकर नेपाली भक्ति-काव्या म कवि सम्प्रदाय निर पक्ष देखे जाते हैं। प्राय देखा गया है कि इनस न तो कृष्ण भक्ति-सम्बन्धी कोई सम्प्रदायगत भागवत सिद्धान्त पुष्ट होता है और न रामभक्ति क्षेत्र म अध्यात्म रामायणादि के अद्वैतवादादि साम्प्रदायिक सिद्धान्ता की ही सिद्धि होती है, क्योंकि उनम स्तुत्यात्मक दशनदर्शी स्थल छोड दिय गए हैं जबकि हिन्दी भक्तिकाव्यो—विशेषत भक्तिकाल क काव्यो म आधार ग्रन्थो व सिद्धान्ता को सम्प्रदाय के अनुसार मोड लिया गया है। सूर की काव्यगत भक्ति विशुद्धाद्वैतवादी पुष्टिमाग का पोषण करती है और तुलसी की कान्यदृष्ट भक्ति अद्वैतमूलक अध्यात्मरामायण का आधार लेती हुई इसीलिए स्थान स्थान पर[2] अद्वैतवाद की बात करती हुई भी विशिष्टाद्वैतवादी दास्य भाव की ओर भुक जाती है।

(७) नेपाली भक्ति काव्य मे मुक्तकों की अतिशय न्यूनता है जबकि हिन्दी भक्तिकाव्य का एक विशाल अश मुक्तकात्मक है। श्री हरदयाल सिंह हमाल का 'राम बाल विलास', भानुभक्त की भक्तमाला, भक्तिकुमारी राणा की भक्तिलहरी' के अतिरिक्त दो-चार मुद्रितामुद्रित छोटी छोटी रचनाए ही नेपाली भक्ति साहित्य की मुक्तक सम्पत्ति हैं। यथायत आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति नेपाली भाषा के कवियो म नही देखी जाती है। इसका कारण है कि उनके सासारिक जीवन म भक्ति निष्ठा उस मात्रा म नही रही जिस मात्रा म वह हिन्दी के भक्त कवियो मे पाई जाती है। वे कविता न करते तो भी भक्त कहे जाते भले ही कवि न पुकारे जाते। भक्त के हृदय मे पाया जाने वाला आत्मनिवेदन का भाव जब

१ साकेत मथिलीशरण गुप्त (प्रथारम्भ मे)।

२ द्रष्टव्य—तुलसी ग्रन्थावली (तीसरा खण्ड) गिरधर चतुर्वेदी, पृ० ६४ तथा हि० सा० का आ० इ० रामकुमार वर्मा पृ० ४४६।

तब तीव्र नहीं हो उठता, तब तक भक्तिपूर्ण मुक्तक रचनाएँ जन्म नहीं लेतीं। प्रबन्ध-काव्य लिखने में कवि की बाह्य दृष्टि काम करती है। गीतिकाव्य लिखने में वह अन्तर्द्रष्टा हो जाता है और उसका अन्तर्नाद गीतों में ही फूट पड़ता है। आत्मदान और आत्मनिवेदन का भाव जब प्रबल हो उठा तब रामचरितमानस लिखने वाले तुलसी ने भी हिन्दी साहित्य को गीतावली, कृष्ण गीतावली तथा 'विनयपत्रिका' प्रदान की जिनमें भक्त के भावुक हृदय का निश्छल परिचय मिलता है। हिन्दी भक्ति साहित्य, जिसे गीतात्मकता के कारण अमर हो गया, उसकी नेपाली भक्ति साहित्य में बड़ी कमी है। और तो और हिन्दी के प्रबन्ध काव्य भी सुगेय हैं। रामचरितमानस, कृष्णायन, रूपनारायण पाण्डेय का कृष्णचरित, रघुराजसिंह का 'रामस्वयंवर' आदि गेय प्रबन्ध-काव्य हैं। 'रामस्वयंवर' की रचना ही गाए जाने के उद्देश्य से हुई।[1] नेपाली में ऐसा प्रबन्ध-काव्य केवल 'संगीत रामायण' है।

सन्त साहित्य को छोड़कर नेपाली भक्ति काव्य मात्रिक-वर्णिक दोनों वृत्तों में निर्मित हुआ है। प्रायः देखा जाता है कि जिन रचनाओं ने सीधे संस्कृत-ग्रन्थों से प्रभाव ग्रहण किया अथवा जिन रचनाओं पर संस्कृत का हिन्दी की अपेक्षा अधिक प्रभाव है, वे वर्णवृत्तों में तथा जिनकी रचना हिन्दी-काव्यों के आधार पर हुई वे मात्रिक छन्दों में लिखे गये हैं। हिन्दी भक्ति साहित्य में मुक्तक या प्रबन्ध मुक्तक काव्यों में पदों का प्राचुर्य है। प्रबन्ध काव्यों में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि मात्रिक वृत्तों का प्रयोग हुआ है। आधुनिक काल के भक्तिकाव्य में भी मात्रिक वृत्त तथा पद अपनाए गए हैं। भक्तिकाल में रामचन्द्रिका तथा आधुनिक काल में रामचन्द्रोदय महाकाव्य में अपवादस्वरूप अन्यान्य छन्दों का प्रयोग हुआ।

(८) हिन्दी और नेपाली भक्ति-साहित्य के अलंकार प्रायः परम्पराप्राप्त हैं। कुछ नई उद्भावनाएँ भी कहीं देखी गई हैं। हिन्दी में नेपाली की अपेक्षा अधिक प्रगतिशीलता है। विशेषकर आधुनिक भक्ति साहित्य में उक्ति की विचित्रता कई स्थानों पर परम्परानुमोदित न होकर सर्वथा आधुनिक है।

नेपाली भक्तिकाव्य के कवियों ने हिन्दी भक्ति-काव्य शैली का प्रभाव कई जगह जाने अनजाने ग्रहण किया है—इस तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता है। बालचन्द्र शर्मा ठीक ही लिखते हैं

नेपाली कविहरूले अहिल सम्म हिन्दी प्रवृत्ति को पुच्छर पक्रिने अनावश्यक प्रवृत्ति छोडन सकेका छैनन। हिन्दी को सुसमृद्ध विकास छिनीहरू

---

१ आ० हि० सा० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, संशोधित सं० १९४८, पृ० ३७७, (हिन्दी परिषद, वि० वि० प्रयाग)।

को निमित्त एक ढग से अझै-पनि अनुकरणीय बनि रहे को थियो।'[1] इसी तथ्य को नित्यराज पाण्डेय दुहराते हुए लिखते हैं

'हिन्दी साहित्य को विकास हुद गये को प्रभाव पनि नेपाली मा पर्न गयो।'[2]

---

१ रघुनाथ पोखरेल र उनका कविता बालचन्द्र शर्मा, पृ० ५२।
('हिमानी'— नेपाली साहित्य सस्थान, काठमाडू) वर्ष १, अक १, स० २०१६।

२ महाकवि देवकोटा नित्यराज पाण्डेय, पृ० ६०।

अध्याय तीन

सन्त-काव्य

सन्त लक्षण

अनुभूति की तीव्रता को यदि साहित्य का विशेष गुण माना जाय तो भरतखण्ड के साहित्य के उस भाग का जिसकी निर्मिति का श्रेय सन्तों को है, अपना अलग ही महत्त्व है। स्वार्थ से ऊपर उठे हुए स्वच्छन्द व्यक्तित्व वाले सन्तों की रचनाओं में सत्य पर सबसे अधिक बल दिया गया है शिव और सुन्दर उसीके अनुयायी बन दिखाई देते हैं। उसकी नग्न झिलमिलाहट से जिनकी आँखों में चकाचौंध पैदा हुई वे सन्तों के कटु आलोचक भी बन बैठे हैं।

इन सन्तों का लक्षण विद्वानों ने अनेक प्रकार से किया है। प्रायः उन लोगों को सन्त कहा जाता है जो ईश्वर के निर्गुणत्व में ही विश्वास करते हैं। डा० पीताम्बरदत्त बड्थ्वाल, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों ने यही सिद्ध किया है कि सन्त निर्गुणवादी हुआ करते हैं। हिन्दी के सन्त साहित्य पर विचार करने से यह बात सिद्ध होती है कि सभी सन्त नाभिधानी निर्गुणोपासक रहे हैं किन्तु यह नहीं कि उन्होंने सगुण का सिद्धान्ततः विरोध किया है। सगुण के ऊपर अभिजात वर्ग ने बाह्य विधानों की जो उलझन पैदा की उस भ्रममौचौर सिद्ध करने के प्रयत्नस्वरूप ही दशरथ सुत तिहु लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना[1] जैसे वाक्य सन्त साहित्य में यत्र-तत्र मिलते हैं। व निर्गुण अपनाने को विवश थे। डा० मोतीसिंह ठीक ही कहते हैं

उस मार्ग को ग्रहण करने वाले अधिकांश निम्न वर्ग के ही लोग थे। ऐसे लोगों को पुनः सगुण उपासना के मार्ग को अपनाना कठिन था क्योंकि वहाँ मन्दिरमूर्ति, पूजापाठ आदि विधान चल पड़े थे। उसको स्वीकार करने का मतलब था जातिवाद के अन्याय और विषमता को स्वीकार करना।[2]

---

१ बीजक सबद १०९ कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति।

२ निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि डा० मोतीसिंह (ना० प्र० सभा) पृ० २१६।

यथार्थत सन्त ईश्वर को कहीं सगुण निर्गुण से पर तो कहीं दोनों सगुण-निर्गुण मानते रहे। हाँ, ऐसा कोई सन्त सम्प्रदायवादी नहीं मिलेगा जो ईश्वर को सगुण मात्र मानता हो। कबीर एक ओर—

ना दसरथ घरि औतरि आवा
ना लंका का राव सतावा।
देवै कूख न औतरि आवा
ना जसवै ले गोद खिलावा।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया
गोवरधन लेन कर धरिया।
बावन होय नहीं बलि छलिया
धरनी वेद ले न उधरिया।[1]

यह कहकर अवतारवाद का विरोध करता तो दूसरी ओर उसकी प्रेमजनित विह्वलता इस सीमा तक पहुंच जाती है कि सगुण साकार आराध्य के अभाव मे वह आश्चर्यकर प्रतीत होती है। उसे विवश होकर अपने आराध्य म स्थूलता कल्पित करनी होती है।[2] वस्तुत कबीर अपने आराध्य को निर्गुण सगुण से परे मानता है

सत्त नाम है सब ते न्यारा। निर्गुण सर्गुन शब्द पसारा।[3]
सरगुन निरगुन तजहु सोहागिन देख सबहि निजधाम।[4]
सगुण की सेवा करो निर्गुण का कर ज्ञान
निर्गुण सगुण से परे—वहैं हमारो ध्यान।[5]

परन्तु साधना के लिए वह सगुण और निर्गुण को भी मानता ही है—यह पूर्वोद्धत अन्तिम पद से स्पष्ट है। वस वह निर्गुण को भी उसी तरह छोड़ने की बात करता है जिस तरह सगुण को। उसने चार रामों का उल्लेख किया है। प्रथम तीन रामों को वह व्यवहार के लिए मानता है,[6] चौथे निरालम्ब सगुण निर्गुण और विद्रुप से परतर राम को वह सिद्धान्तत अपना आराध्य मानता है।

---

१ कबीर ग्र० पृ० २०८।
२ ओहि पुरुष देवाधिदेव भगति हेतु नरसिंह भेव। कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३०६।
३ कबीर वचनावली, पृ० ८०।
४ वही, पृ० ७२।
५ वही, पृ० ६६।
६ एक राम दशरथ घर डोले। एक राम घट घट में बोले।
एक राम का सकल पसारा। एक राम त्रिभुवन ते न्यारा।
कौन राम दशरथ घर डोले। कौन राम घट घट मे बोले।

जग में चारों राम हैं तीन राम व्यवहार।
चौथा राम निज सार है ताका करो विचार ॥[1]

उन्होंने जो राम के अवतारत्व का विरोध किया वह नया नहीं है। बहुत पहले से राम के विषय में यह विवाद चलता रहा। वाल्मीकि ने राम को मात्र मानव माना, किन्तु महाभारत नारायणीय उपाख्यान हरिवंशपुराण भागवत आदि में वे अवतार हैं। अन्य साम्प्रदायिक रामायणों में व इसी तरह कहीं अवतार तो कहीं मानव बने दृष्टिगत होते हैं। इसी पद्धति पर कबीर की दृष्टि में राम का अवतारत्व आडम्बरों को फैला रहा था तो उसने उसका विरोध करना अच्छा समझा।[2] फिर तुलसी ने सगुणोपासना को सहज तथा सर्वग्राह्य माना तो निर्गुण ब्रह्म के पक्ष में राम के अवतारत्व के विरोधियों का विरोध किया। किस तरह कबीर के शब्दों का उत्तर तुलसी ने दिया—यह नीचे द्रष्टव्य है

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।[3]

—कबीर

जो इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ॥[4] —तुलसी

वास्तव में निर्गुण सगुण के झगड़े में तुलसी और कबीर ही नहीं कोई भी सन्त परमतत्त्व की सच्ची उपासना को भुलाना नहीं चाहता है। समय समय पर यह सत्य उनकी वाणियों में स्पष्ट हो उठता है। गीता उस तत्त्व को इस तरह दिखाती है

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन।
य स सर्वेषु भूतेषु विनश्यत्सु न विनश्यति ॥[5]

दादू की दृष्टि में ईश्वर निर्गुण सगुण के झमेले से परे है।

कौन राम का सकल पसारा। कौन राम त्रिभुवन ते न्यारा।
साकार राम दशरथ घर डोले। निराकार घट घट में बोले।
बिन्दु राम का सकल पसारा। निरालम्ब सबही ते न्यारा ॥
—सत्य कबीर की साखी स० युगलानन्दजी, पृ० १७६ ७७।

१ सत्य कबीर की साखी सगृहीत युगलानन्दजी पृ० १७६।

२ क० व० पृ० २१८, पद १२४, प० २०८ पद ६१, क० ग्र० प २०१, पद १६३।

३ कबीरबीजक सबद १०६, ना० प्र० सभा सस्करण २०१६ वि० सप्तम।

४ रामचरितमानस, बालकाण्ड दो० स० ११८ प० १३५ (१२वा सस्करण, स० २०१८—गीताप्रेस, गोरखपुर)।

५ गीता—८।२०।

सरगुन निरगुन है रहै जसा तसा लीह।
हरि सुमिरन लौ लाइए का जानउ का कीह।[1]
दादू राम अगाध है अविगत लखहि न कोय।
निरगुन सरगुन का कहइ नाउ विलब न होय।[2]

भजन भाव सच्चा होना चाहिए। उसम ढोग न हो। चाहे कोई सगुण माने चाहे कोई निगुण और चाहे ता इन दोनो स भी परे माने। जब दादू 'घटघट गोपी घटघट कान्ह' की बात करते हैं तब ईश्वर के निराकार निगुणत्व से पहले साकार-सगुणत्व को स्वीकार करते हैं। जो बाहर स्थूल रूप म गोपी कान्ह हैं वे ही सूक्ष्म रूप म घटघटव्यापी हैं।

गरीबदास का आराध्य भी निगुण होत हुए भी अवतारी एव सगुण है।

अर्थ नाम कुजर जपा भया ग्राह से पार
उभय घडी लटवाग जप ऐसा नाम उचार।[3]

रदास न ईश्वर को कही निगुण कही सगुण तो कही निगुण सगुण से परे माना है। वह राम को रघुनाथ विशेषण देकर सगुण एव अवतारी मान लेता है

तोहि भजन रघुनाथ ताहि आस न ताप
प्रतिज्ञा पावन चहु युग भक्त पूरण काम
आस तोर भरोस है 'रदास' ज ज राम।[4]

रदास का राम अजामिल गज गणिकादि उद्धारक सगुण रूप ईश्वर है।

अजामिल गज गणिका तारी, काटी कुजर फाँस रे।[5]

उसने प्रह्लाद लीला लिखी जिसम नसिहावतार ईश्वर ने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की। दरिया (बिहार) अपन आराध्य को निगुण और सगुण से न्यारा बताते हैं

अगुन कहै सरगुन कहैं कहैं निरजन देव
त्रिगुन सगुन ते भीन है ता करता की सेव।[6]

और कहा व सगुण का भी स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं।[7]

---

१ दादू की बानी, पृ० १८ बेलवेडियर प्रेस।
२ वही, पृ० १८।
३ विनती को अग गरीबदासजी की बानी, पृ० ३७, बेलवेडियर प्रस।
४ सन्त रविदास और उनका काव्य स० स्वामी रामानन्द नवभारत प्रेस, लखनऊ पृ० १११।
५ वही, पृ० ११६।
६ सहस्रानी का ३५२वाँ दोहा सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन' से उद्धृत, पृ० १८३।
७ सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० १७४।

ग ा गाना म सरभग सम्प्रदाय म सम्प्र ा रगा ा ा किनाराम म राम रगान' म रामावतार भावना व्यक्त हुई है

भजुमन नारायण नारायण नारायण
सरजू तीर अयोध्या नगरी
राम लगन सीतारायन।

किनाराम क शिष्य बाबा गुनाप्र ा द्र[1] ग्रान ा स्पष्ट रूप म निगण ब्रह्म के सगुण अवतार धारण करन का उल्लख करत हैं

सक्ट परे भक्तन उद्धारत उनकी सहज यह रीति
गज प्रहलाद द्रौपदी आदि पर देख्यो जो होन अनरीत
धाय प्रभु ने कष्ट नेवारयो बाजी हरि दियो जीत
आनन्द चाहता है जो 'भगवतो राम सों कर तू प्रीत
यह अवतार फिर हाथ न ऐहै समय जायगो बीत।[2]

हम महाविद्या दसों अवतार भी सबहो मेरे
हम है निगु ण धरके सगुण रूप पुजवाने लगे।[3]

डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी उक्त उदाहरणो को देखकर अपना निणय देते है— यद्यपि कबीर तथा किनाराम आदि ने अवतारवाद का स्पष्टत समथन नही किया है'तथापि उन्होंने यत्र-तत्र अनेकानेक ऐसे पद लिखे हैं जिनसे अवतार भावना की परिपुष्टि मिलती है।'[4]

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि वारकरी नामदेव एक ओर सगुण की खिल्ली उडाते हैं[5], दूसरी ओर ये उसीके सामने नतमस्तक हैं

दशरथ राय नन्द राजा मेरा रामच द्र
प्रणवें नामा तत्व रस अमृत पीज ॥[6]

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी नामदेव को मूलत सगुणोपासक ही मानते है। व उनके निगुणोपासनापरक पदो के पीछे एक महती सामाजिक हितपिता की नीति का दशन करते हैं

'यह हम पहले ही कह चुके हैं कि नामदेवजी वास्तव मे मूर्तिपूजक थ और

---

१ स्वरूप प्रकाश, पृ० ४ 'सन्तमत का सरभग सम्प्रदाय' से उदधत।
२ आनन्द सुमिरनी डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, सन्तमत का सरभग सम्प्रदाय से उदधत, प० २७।
३ तत्त्वलाते आनन्द पृ० ६, सन्तमत का सरभग सम्प्रदाय से उदधत।
४ सन्तमत का सरभग सम्प्रदाय, पृ० ६।
५ वही पृ० २१।
६ हिन्दी सन्तकाव्य सग्रह भूमिका, प० २१ २२।

शिव आदि रूपों में इनकी उपासना के अनेक प्रमाण मिलते हैं। पर ये विलक्षण प्रतिभासम्पन्न और बड़े दूरदर्शी रहे होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं। इन्होंने बहुत पहले जान लिया था कि भारत में हिन्दू मुसलमान तथा छूत अछूत सबको एकता के सूत्र में बाँधने वाले यदि किसी सामान्य भक्तिमार्ग का प्रचार न किया जायगा तो सारा देश नास्तिक हो जायगा या भयानक वर्ग-युद्ध में फँसकर सब एक दूसरे से लड़ मरेंगे। यही सोचकर इन्होंने एक ओर तो मन्दिर मस्जिद की निःसारता घोषित करते हुए सर्वत्र ईश्वर की विद्यमानता का प्रचार किया तथा दूसरी ओर मूर्तिपूजा आदि को अनावश्यक बताते हुए 'राम रहीम' की एकता का राग भी शुरू किया।'[1]

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने सन्तों के ब्रह्म सम्बन्धी विचारों में पुराणों का अनुसरण देखा। उन्होंने लिखा है—

'निर्गुण और सगुण के विषय में जो विचारधारा पुराणवादियों और वेदान्तवादियों की देखी जाती है पद-पद पर वे उसीका अनुसरण करते दृष्टिगत होते हैं। पुराणों का सगुणवाद जैसा प्रबल है वैसा ही निर्गुणवाद भी। यही कारण है कि मुख से निर्गुणवाद का गीत गाने वाले भी अन्त में पुराण शैली की परिधि के अन्तर्गत हो जाते हैं। चाहे कबीर साहब हों अथवा पन्द्रहवीं सदी के दूसरे निर्गुण-वादी उन सबके मार्ग प्रदर्शक गुप्त रूप से पुराण ही हैं।'[2]

डा० मुन्शीराम कबीर नानक दादू आदि सन्तों को सगुण निराकारोपासक मानते हैं। उनका कथन है

'कबीर नानक दादू आदि सन्तों को निर्गुण का उपासक कहा जाता है, परन्तु उन्होंने प्रभु के गुणों का कीर्तन जी भरकर किया है। हाँ वे प्रभु को साकार नहीं, निराकार अवश्य मानते हैं।'[3]

ऐसी ही बात आचार्य विनोबा भावे ने भी कही है।[4] इस तरह गुण शब्द का रूढ़ अर्थ न लेकर शाब्दिक अर्थ लें तो किसी भी तत्व के निर्गुण होने की कल्पना सर्वथा मिट जाती है। मुझे तो लगता है कि सन्त सगुण साकार के उसी तरह उपासक हैं जैसे निर्गुण निराकार के। अपने व्यक्तित्व में वे चाहे कुछ भी हों, अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने आराध्य को—जैसा कि दिखाया जा चुका है—उन नामों से अभिहित करने में कोई संकोच नहीं किया जिनका अर्थ सामान्यतः साकार और सगुण लिया जाता है।

---

१ हिन्दी सन्त-काव्य-संग्रह, पृ० १६६ २००।
२ हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० १६६ २००।
३ भक्ति का विकास पृ० ४१०।
४ सन्त सुधासार वियोगीहरि प्रस्तावना—विनोबा भावे, पृ० १५ १६। (सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन १९५३ नई दिल्ली)।

इस तरह हम देखते हैं कि संतों के पहले जो निर्गुणिया विशेषण विद्वानों ने जोड़ा है उसकी संगति उसी तरह उनकी विशेष प्रवृत्ति को दृष्टि में रखने पर बैठाई जा सकती है जिस तरह सूर, तुलसी आदि भक्तों के पहले जोड़े जाने वाले सगुणिया शब्द की, क्योंकि यह सत्य होते हुए भी कि ये लीला विग्रह की ओर अधिक झुके हैं निर्गुण की भावना को सर्वथा निर्मूल कहाँ बनाते हैं? कहीं-कहीं तो उनकी उक्तियों में निर्गुण ही वर्णित है। यथार्थतः वे विवाद से दूर रहना चाहते हैं। तुलसी अपने मुख से स्पष्ट कहते हैं सगुन अगुन दोनों से पर कोसलपति राम को भजने की बात कहलाते हैं।[1] दाशरथि राम की भक्ति तो सगुण भक्ति ही कही जायगी क्योंकि यत्र-तत्र तुलसी राम को ईश्वरावतार मानते हैं। फिर सगुण निर्गुण से परे कोसलपति राम का क्या अर्थ हुआ? इसी तरह कबीर भी निर्गुण सगुण दोनों से पृथक परमात्म तत्व चिन्तन का उल्लेख करता है।[2] कहीं उसे पुहुपबास से पातरा बताता[3] है तो कहीं नृसिंह रूप[4]। यथार्थतः शास्त्रीय लक्षणों से बद्ध निर्गुण किंवा सगुण को ही संत और भक्त किस तरह अपना आराध्य मानें जबकि वे उस सर्वथा अनाख्येय अनिर्वचनीय एवं अनुभवैकगम्य पा रहे हो। अपने समाज तथा परिस्थिति के अनुसार जिसे जो उपासना पद्धति रुच गई उसने वही निरपेक्ष भाव से अपना ली कहीं विशेष पद्धति की समाज हित की दृष्टि में रखकर निंदा भी करनी पड़ी तो कर ली—यही निर्गुण सगुणपरता का रहस्य ज्ञात होता है। संतों को निर्गुणोपासक कहना सिद्धांततः सार्थक नहीं। इसमें एकांगी सत्य है। आलोचकों की बात छोड़िए जनता में कितने ही सगुणोपासक भी संत पुकारे जाते हैं। मराठी में तो आलोचकों ने भी भक्त कवियों को संत नाम दिया है। डा० प्रभाकर माचवे हिन्दी आलोचकों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं—

हिंदी में संत केवल निर्गुणिये माने जाते हैं। संत सूफी और भक्त—यह तीन भिन्न भिन्न भेद एक ही भक्ति सम्प्रदाय के हिंदी ने माने हैं। इस कारण हिंदी संतों के बारे में जो ग्रन्थ लिखे गए हैं उनमें पूना के पेशवाई वस्त्र फेंककर उत्तर में कफनी धारण किए हुए श्यामराव पेशवा उर्फ तुलसीसाहब को बड़ा स्थान मिलता है। परन्तु गये चार सौ वर्षों तक हिंदीभाषियों के लोक-जीवन में अम्लान भाव

१ जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी। सगुन अगुन उर अंतरजामी॥
जो कोसलपति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना॥
—रामचरितमानस, पृ० ६०६।
कबीर वचनावली पृ० ६७।
३ वही पृ० ६४ दो० स० ३।
४ क० ग्रं० पृ० १८३ प० स० ३७६।

स परिमनित होने वाले रामचरितमानसकार को सन्त नहीं कहते। मीरा, सूरदास आदि भक्तों को भी सन्तों के इस मेले में स्थान नहीं है।[१]

डा० प्रभाकर माचवे के इस मनोभाव से तो मैं सहमत नहीं हूँ कि हिन्दी में तुलसी आदि कवियों को सन्त न कहकर अथवा भक्त कहकर उनका महत्त्व कम आँका गया है। इस बात का खेद अवश्य है कि हिन्दी के आलोचक तुलसीदासादि को सन्त न कह जाने का कारण न बता सके अथवा सही कारण न दिखा सके, क्योंकि वे स्वयं सन्त के लक्षण के विषय में स्पष्ट नहीं हैं। मुझे लगता है ये आलोचक उन लोगों को सन्त कहते हैं जो निश्चित रूप से योगाभ्यासी नहीं तो योग की बात अवश्य करते हों।[२] चाहे उनका योग सिद्धों और नाथों के हठयोग से कुछ भिन्न ही क्यों न हो जिसके कारण हम उसे सहज योग कह सकते हैं। यही कारण है कि उत्तरी भारत की सन्त परम्परा में श्री परशुराम चतुर्वेदी सगुणोपासक मीरा को सन्त श्रेणी में रखने का प्रश्न उठाते हैं और उनकी प्रेमानुरागभक्ति में लोक-संग्रह के उच्च स्तर पर पहुँचने की प्रवृत्ति न होने के कारण उन्हें सन्त पंक्ति में न बिठाकर सन्तमत की भूमि तैयार करने वाले लोगों के बीच ले जाते हैं,[३] किन्तु चरणदासी सम्प्रदाय को जो भागवती मनोवृत्ति का है और जिसके आराध्य सगुण हैं सन्त सम्प्रदाय मान ही लिया क्योंकि चरणदासी सम्प्रदाय जहाँ एक ओर सगुण भक्ति भाव सम्पन्न है वहाँ दूसरी ओर ब्रह्म ज्ञान और योग साधना से भरपूर। जहाँ तक इस सम्प्रदाय में कहीं कहीं अलौकिक वृन्दावन और मथुरा की बात कही गई है उससे उनकी सगुण भक्ति में कोई बाधा नहीं पहुँचती। अन्य सगुण भक्त भी स्थान स्थान पर निर्गुणोपासकों की साधनाओं और विश्वासों का बखान करते पाये गए हैं। प्रो० विलसन इस सम्प्रदाय को विशुद्ध वैष्णवपंथ मानते हैं जिसका प्रचलन गोकुल के गोस्वामियों के प्रभुत्व को मिटाने के लिए हुआ।[४] चरणदास की दोनों सगुण निर्गुणपरक धाराओं को देखकर कुछ विद्वान दो चरणदासों की कल्पना तक करने लगे हैं—एक निर्गुणवादी दूसरा सगुणोपासक।[५]

सन्तों को निर्गुणिये सिद्ध करने के प्रयत्नस्वरूप डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित चरणदास आदि सन्तों की सगुण भावना को उनकी प्रारम्भिक साधना मानते हैं।[६] उनके मतानुसार सन्तों की वाणियों में परमतत्त्व समयक्रम से सगुण

१ हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त काव्य डा० प्र० माचवे पृ० ४१।
२ द्रष्टव्य—हि० सा० का आ० इ० रामकुमार वर्मा तृ० सं०, पृ० २६३।
३ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० २६१।
४ रिलिजियस सेक्टस ऑफ द हिन्दूज प्रो० विलसन, पृ० २७५।
५ हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य डा० सियाराम तिवारी, हिन्दी साहित्य संसार पटना ४ पृ० १४६।
६ सन्त चरनदास त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० ८६ ८७।

निगुण तथा सगुण निगुण से परे वनना गया है। यह सिद्धान्त सही सिद्ध नहीं होता है। सन्तो की रचनाओं मे परमतत्त्व को उक्त तीन रूपो म कहने की प्रवत्ति क्रम हीन पाई जाती है। यदि यह क्रम विद्यमान रहता तो पथ और सम्प्रदाय उत्तरोत्तर सगुणोपासक से निगुणोपासक और निगुणोपासक से सगुण निगुण स परे अनिवच नीय तत्त्वोपासक बनते जाते परन्तु ऐसा पाया नहीं जाता है। कबीर स कबीर पथी अवतारवाद की ओर अधिक झुके हैं। किनाराम से उनके शिष्य गुलाबराय अधिक सगुणोपासक है। यदि हम मान भी लें तो भी दीक्षितजी सन्तो को निगुणिय ही क्यो मानने लग। वे वहीं पर तो रुकते नही। सगुण निगण स परे भी तो व जाते हैं और दीक्षितजी क अनुसार यह उनकी साधना का चरम विकास है। तब उन्ह निगुणिये' कहने के बदले अनिवचनीय तत्त्वोपासक कहना अधिक सगत होगा। सच तो यह है कि सन्त किसी वितण्डावाद म फसना नही चाहते रहे। सगुण को लेकर अधिक बखेडे फले थ। फलस्वरूप उसे मानते हुए भी उन्ह कहीं-कहीं उसकी कटु आलोचना भी करनी पडी जो यथाथत सगुण की नही बल्कि विवादी एव ढोंगी तथाकथित सगुणोपासकों की है।

मीरा सन्त है या नहीं—यह प्रश्न भी श्री चतुर्वेदी के समक्ष इसलिए आया कि मीरा ने भी कहीं-कहीं सुरत निरत आदि योग सम्बन्धी प्रक्रियाओं का बखान किया है। ऐसी बातो का वणन सूफी कवियो म भी पाया जाता है, किन्तु उनके सन्तत्व परीक्षण का प्रश्न इसलिए नही उठाया गया कि व एक निश्चित प्रसिद्ध सम्प्रदाय की परम्पराओं को लेकर चल। उन्ह किसी सम्प्रदाय के अन्दर लाने क लिए विचार करने की आवश्यकता ही नही समझी गई।

सन्त' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अथ विद्वानो ने बहुत बार स्पष्ट कर दिया है। उस विषय म यहा कुछ लिखना पिष्टपेषण ही होगा अतएव वह चाहे जो भी हो उसके विषय म कुछ न कहकर मैं उसके लोक प्रचलित अथ को स्पष्ट करना चाहूँगा जिसके अनुसार सन्त उस व्यक्ति को माना जाता है जो अपने स्वाथ से ऊपर उठा हुआ शान्त सतोषी और ईश्वर को मानता हो। भतहरि के अनुसार मन वाणी म पुण्यात्मा लोकोपकारी, दूसरो के अत्यल्प गुणो को बहुत मानता हुआ प्रहृष्टमना व्यक्ति सन्त है।[1] तुलसीदास असज्जन का विलोम सन्त मानते हैं

बदौ सन्त असज्जन चरणा। दुखप्रद उभय बीच कछु वरणा ॥[2]

---

१ मनसि वचसिकायेपुण्यपीयूषपूर्णा स्त्रिभुवनमुपकारश्र णिभि प्रीणयन्त। पर गुण परिमाणून पवतोकृत्य नित्य निज हृदि विकसन्त सन्ति सन्त कियन्त। —नीतिशतकम ७६वाँ श्लोक।

२ रा० च० मा० बालकाण्ड, पृ० ३६ (मझला साइज सटीक)। —गीता प्रस गोरखपुर

इससे कुछ कम व्यापक अर्थ में भी 'सन्त' शब्द व्यवहृत होता है। साधु अर्थात् गृहत्यागी के लिए भी यह प्रयुक्त होता है। वह साधु निर्मम एवं विरक्त हो। सत्यवाक् होना उसका प्रधान लक्षण है। यह आवश्यक नहीं कि वह निर्गुणिया हो। महाराष्ट्र में सन्त के आवश्यक गुण हैं—भक्तिमार्गावलम्बन और लोकजीवन के प्रति लगन।[1]

उक्त सभी सन्त लक्षणों में अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष हैं। हिन्दी साहित्य में सिद्ध, नाथ, सन्त और भक्त इन नामों से पृथक्-पृथक् मतावलम्बियों को लिया जाता है। जिस लक्षण में समस्त सन्तों का समावेश तथा सन्तेतरों की व्यावृत्ति हो हम ऐसा लक्षण खोजना है। मेरे विचार से सन्त का लक्षण 'भक्त-योगी' किया जाना चाहिए—यहाँ योगी से हठयोगी से मिलता जुलता सहजयोगी लिया जाय—इससे केवल योगी नाथसिद्धों तथा केवल भक्त तुलसीदासादि की व्यावृत्ति हो जायगी और पूर्वोक्त सगुण निर्गुण अनिर्वचनीय तत्त्वोपासक सभी सन्ताभिधानियों का समावेश हो जायगा। परशुराम चतुर्वेदी कृत मीरा के सन्तत्व परीक्षण की भी सार्थकता दिखाई देगी। इस लक्षण से सन्तों का यथार्थ रूप सामने आ जाता है क्योंकि यह वस्तुतः तथ्य है कि सन्तमत में नाथों के योग और वैष्णवों की भक्ति का समन्वय है।[2]

नेपाली सन्तशाला—जोस्मनी

सन्त की उक्त लक्षण मानने पर नेपाल के भक्त योगी जोस्मनियों को सन्ततया सन्त कहा जा सकता है। सन्तों की यह शाखा नेपाल में कब, कहाँ स्थापित हुई, इसका ठीक पता नहीं है। श्री जनकलालजी जोस्मनी सन्त-परम्परा र साहित्य' की भूमिका में इस सम्प्रदाय को उसके प्रचारक के नाम से प्रचलित मानते हैं[3] जो यथार्थतः अप्रसिद्ध अनुमान-मात्र है। विषय प्रवेश में वे ही इस बात के लिए खेद प्रकट करते हैं कि इस सम्प्रदाय का अर्थ अनुमानित है और स्वीकार करते हैं कि कहीं किसी भाँति उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता हालाँकि उसका जोस्मनी सम्प्रदाय के कुछ सन्तों की रचनाओं में उल्लेख हुआ है।

जोस्मनी या जोशमणि मत किसी व्यक्ति के नाम पर यदि प्रचारित होता तो उसके अनुयायी जोस्मनी-पंथी कहलाते क्योंकि सन्त परम्परा में श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार—व्यक्ति के नाम से पंथ प्रचारित हुए हैं।[4] कुछ अपवादों

---

१ हि० और म० का नि० स० का० डा० प्रभाकर माचवे पृ० ४१।
२ मध्यकालीन धर्मसाधना हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १०२, १०३।
३ जोस्मनी सन्त परम्परा र साहित्य, पृ० ७।
४ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ० ३८८ की पादटिप्पणी।

को छोडकर प्रमुख विशेषता या देवता के नाम पर ही सम्प्रदाय बनते हैं। यह ठीक है कि पथ और सम्प्रदाय कभी-कभी एक-दूसरे के बदले भी असावधानी से प्रयुक्त होते हैं किन्तु विचार करने पर उनकी विशेषता स्पष्ट हो जाती है। जोस्मनी एक सम्प्रदाय है क्योंकि इस सम्प्रदाय में दीक्षित को जोस्मनी उसी तरह कहा जाता है जिस तरह निरजन सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले को निरजनी। कबीरपथ का अनुयायी कबीरपथी कहा जाता है न कि कबीरी। जोस्मनी सम्प्रदाय के कवियो ने इस मत के मानने वाले को यत्रतत्र जोस्मणि या जोस्मनी कहा है

> आदि गुरुनाम शशिधर भेष नाम जोस्मणि[1]
> आफ आफ साचा करि आफ आफ हरिपद समाव
> तस्को नाउ जोस्मणि सत ॥[2]
> चलो भाई जोस्मनी आफ्नो राहा समाई येही राहा सीढा हो भाई ॥[3]

'जोस्मनी' शब्द का विश्लेषण

जोस्मनी नाम शशिधर की रचना मे सवप्रथम मिलता है। शशिधर से पूर्व जिन पाँच जोस्मनी सन्तो के नाम मिलते हैं[4] उनमे चारो के नाम हरि शब्द से प्रारम्भ होते है और नामान्त मे चन्द्र और भक्त शब्द है। उनकी कोई रचना प्राप्य नही है। पाँचवें सन्त धिर्जेदिल हुए। उनके शिष्य हरिभक्त के आगे भी दिल लिखा जाता था इसका परिचय वंशावली से मिलता है। धिर्जेदिलदास का एक पद भी मिलता है जिसमे किसी तरह कोई नया साम्प्रदायिक सकेत नही मिलता है। यह निर्गुण भजन है।[5] उसमे कहा गया है कि हरि को भजो। सृष्टि पाप पुण्यमय है और पचतत्वो से बनी है। उसमे पाप को धोकर शून्य स्थित होकर प्राण उलटाने गगनमूल मे ध्यान करने, अनहद नाद सुनने की बात पर जोर दिया गया है। गुरु की कृपा का महत्व भी दर्शाया गया है। आनन्द पद के भेद को न जानने वाले हरि विमुख का जन्म ही धिर्जेदिल निरर्थक मानते है। उनके विचारानुसार जन्म पाकर योग युक्ति द्वारा मन को हरिपदो मे लीन करना ही जीवन की सार्थकता है।

(क) जोस्मनी और दिल—धिर्जेदिलदास के इस पद मे अन्य मत

---

१ जो० स० प० र सा० प० २१३।
२ वही, प० २१४।
३ वही प० २४५।
४ वही प० २२ (परिशिष्ट)।
५ वही प० १४६।

का व्यापक रूप हमारे सामने आता है। कोई ऐसी बात नहीं मिलती जो किसी पंथ या सम्प्रदाय की सर्वथा अपनी हो। इसलिए उन्हें जोस्मनी मत का आदि प्रवर्तक नहीं, एक विशिष्ट सन्त मानना चाहिए जिन्होंने जोस्मनियों को 'दिल' शब्द दिया जिसे उनमें से प्रायः सभी अपने नाम के आगे जोड़ते हैं। यह प्रवृत्ति कितनी प्रबल है इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि इनकी शिष्य परम्परा में एक का नाम 'देवचित्त दिलभाई'[1] रहा। देवचित्त से ही अर्थ पूर्ण हो जाता है किन्तु सम्प्रदाय को सुस्पष्ट करने के उद्देश्य से अन्य सन्तों—बुद्धिदिलदास, सिद्धिदिलभाई, तिलकदिलदास, सजदिल, कीर्तिदिल आदि के अनुकरण पर 'देवचित्त' लिखने के बाद भी 'दिल' जोड़ा गया। जोस्मनी सन्त प्रायः पुरुष होने पर 'दिलदास', स्त्री होने पर 'दिलभाई' नामान्त होते हैं। निर्वाणानन्द और अभयानन्द इसलिए निर्वाणदिलदास तथा अभयदिलदास पुकारे जाने से बच रहे कि ये क्रमशः राजा और जनरल थे। 'दिलदास' जिसमें एक कार्पण्यभाव है, इनकी सामाजिक उच्चता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए नहीं जोड़ा गया।[2] शशिधर के बाद का 'दिल' उसी तरह लुप्त लगता है जैसे उनके गुरु हरिभक्त का, जिनके नाम के अन्त में कभी 'दिल' होने का प्रमाण मिलता है।[3]

मुझे तो लगता है कि धिर्जेन्दिल के बाद जोस्मनी शब्द प्रचार में आया, जिसका मूल रूप है ज्योतिमनी। व्याकरण की अशुद्धि के कारण ज्योतिष्मनी कहलाया और घिस पिटकर 'जोस्मनी' बना। जिस 'दिल' शब्द को धिर्जेन्दिलदास प्रकाश में लाये उनका संस्कृत पर्याय 'मन' जोस्मनी शब्द का एक अंग बना दिया गया। सम्भवतः यह काम उनके शिष्य हरिभक्त (दिल) द्वितीय द्वारा किया गया हो और उसका नेपाल में सर्वप्रथम प्रचार शशिधर द्वारा हुआ प्रतीत होता है। जोस्मनी सम्प्रदाय की वंशावलियों तथा अन्य वृत्तों द्वारा यही ज्ञात होता है कि शशिधर ही नेपाल के आदि जोस्मनी थे। ज्ञानदिलदास के जीवन-वृत्त के विषय में श्री जनकलालजी को लिखे श्री जयदेव शर्मा न्यौपाने के पत्र से भी स्पष्ट होता है कि आदि जोस्मनी शशिधर थे। परम्परागत जोस्मनी साधुओं की तालिका प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं—

'जोस्मनी मत का साधुहरु का गुरु चेला परम्परा को तालिका यस प्रकार छ।'

---

१ जो० सं० प० र सा०, परिशिष्ट, पृ० ५१३।
२ वही भूमिका, प० ६५।
३ वही परिशिष्ट।

करने में सहायता मिलती है। जोस्मन या जोस्मनी के समान ही उस शब्द का प्रयोग हुआ है जिससे सिद्ध होता है कि मनीषा उसका पर्यायवाची शब्द है। उन्मनी मनोन्मनी सुस्मनी शब्दों के अनुकरण पर यह सम्प्रदाय जोस्मनी कहलाया—ऐसा प्रतीत होता है।

जोस्मनी सम्प्रदाय की स्थापना

जोस्मनी सम्प्रदाय में शशिधर को आदिगुरु माना जाता है। यहाँ यह देखना है कि वे इस सम्प्रदाय के समस्त प्रचारक-मात्र हैं या प्रवर्तक। वंशावली ग्रन्थ के अनुसार दोनों बातें अनुमित होती हैं। शशिधर १० ११ वर्ष जगन्नाथ में रहकर जब नेपाल लौटे तो उन्होंने जोस्मनी झण्डा फहराकर जगन्नाथ के नमूने नेपाल में स्थापित किये।[1] इससे यह अनुमित होता है कि जोस्मनी सम्प्रदाय की दीक्षा शशिधर को जगन्नाथ निवासकाल में ही मिल चुकी थी। बाद में वंशावली में ही जो लिखा मिलता है[2] उसमें इस कल्पना के लिए भी आधार मिल जाता है कि सर्वप्रथम जोस्मनी शशिधर स्वयं थे। ज्योति (ज्योतिष्) के साथ सम्बन्ध जोड़ने का कारण यह अनुमित होता है कि ज्योतिमठाधीन टोटकाचार्य के ब्रह्मज्ञान को सुनकर वे अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्हें उन्होंने त्रिशूल गंगापार 'पुरुषोत्तमपुर' में कुछ समय बाद आने का निमन्त्रण दिया। टोटकाचार्य जब उनके यहाँ पहुँचे तो शशिधर को घर न पाकर उनकी माँ को एक पुस्तक दे गये। पुस्तक को पढ़कर शशिधर को ज्ञान हुआ। उन्होंने पुस्तक को गुरुतुल्य मानकर शिवपुरी में तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। वंशावली इस तथ्य को इस तरह वर्णित करती है

सो पुस्तक आदि अन्त पढ़ी बड़ो प्रेम गर्‍या र गुरु तुल्य ठानी तहा देखि नेपाल शहरमा शिवपुरी हिमालमा गया। आपना परम् भक्ति को साचो साचो शक्ति को प्रभाव ले तहाँ आफ आफ शशिधर स्वामीलाई तत्वज्ञान ब्रह्मज्ञान को उत्पत्ति आफले गर्‍या।[3] शिवपुरी में ही चार शिष्यों को दीक्षित कर जोस्मनी मत के प्रसार के लिए उन्होंने यत्र-तत्र भेजा। इस तरह जोशीमठ की मणि—जोशीमणि (टोटकाचार्य या उनके गुरु) का मत शशिधर द्वारा सर्वप्रथम जोस्मनी नाम से प्रचारित हुआ। कहा जाता है कि शशिधर अपने शिष्य भवाकण को मणि के नाम से अभिहित किया करते थे।[4] इससे यह भी कल्पित किया जा

---

१ जो० स० प० र सा०, पृ० ४३४ ४८८।

२ वही, पृ० ४३४।

३ वही, पृ० ४३५।

४ वही पृ० ४३६। 'गुरु को यस्तो आज्ञा भयो हे मणि गुरु परमात्मा को सेवा भक्ति योग भेष तुलसी धारण को चितावन निश्चय माया दयापूर्ण छ।'

सकता है कि ज्योतिमठ या जोशीमठ के 'जोस' (ज्योतिस)से साधकमणि को संयुक्त कर जोस्मणि या जोस्मनी सम्प्रदाय को शशिधर ने स्थापित किया।

इन दो बातो म पहली समीचीन बात होती है क्योंकि शशिधर ही जोस्मनी सम्प्रदाय के प्रवतक होते तो व कम-से कम अपनी रचनाओ मे तो "ज्योतिस्मणि अथवा ज्योतिमणि' वस्तु हुआ ता जोशीमणि व्यवहृत करते। उनकी रचनाओ म ही उसके बिगडकर जोस्मनी बनने की बहुत कम सम्भावना है।

अथ च दोनो वशावलियो के अनुसार शशिधर जोशीमठ के सन्त से मिलने और शिवपुरी म ज्ञानप्राप्ति से पहले ही विष्णुमती के किनारे प्रभावशाली योगी के रूप म दिखाई देते हैं। प्रथम वशावली उन्हें ज्योति स्वरूप बनते दिखाती है। तत्कालीन राजा शशिधर के बदले केवल अग्नि देव पाता है। शशिधर विष्णुमती पहुँचते ही जोस्मनी भण्डा फहरा देते हैं। कुछ समय वहाँ रहने और जोस्मनी मत का प्रचार करने के अनन्तर वे टोटकाचाय की पुस्तक से प्रभावित होकर शिवपुरी जाते हैं। यह एक आकस्मिक सयोग-मात्र था कि जोस्मनी सन्त को जोशीमठ के एक ब्रह्मज्ञानी मिले और उन्होंने उन्हें अपने गुरु के समान मान लिया। यही मानना ठीक रहेगा कि शशिधर के गुरु या गुरु के गुरु के समय म जोस्मनी शब्द जन्म ले चुका था और उसका प्रचार शशिधर ने किया।

नेपाल की यह सन्तशाखा निगुण और सगुण दोनो को मानती है। अवश्य ही निगुण ज्ञान सगुणोपासना से अधिक मिलता है। धिर्जेन्द्रि को छोडकर शशिधर से पूववर्ती सतो के विषय म कुछ ज्ञात नहीं है। केवल उनके नाम मिलते हैं। शशिधर का जन्म १८०४ स० म हुआ। १२ १३ वर्ष की अवस्था म य जगन्नाथ गये—ऐसी जनश्रुति है। वहा १० ११ वर्ष रहे।[1] अवश्य ही इस समय उन्हें वहा प्रचलित मतमतान्तरो को जानने का अवसर मिला होगा। किसी सन्त के प्रभाव म आना शशिधर के लिए स्वाभाविक है। यही कारण है कि शशिधर योग माग म विश्वास करने वाले निगुण निष्ठाप्रधान साधक बने किन्तु बचपन म सनातनी प्रभाव म रहने के कारण शशिधर मे पर्याप्त साकार सहिष्णुता है। वे बालावस्था म जब जगन्नाथ की यात्रा पर निकले तो जगन्नाथ स्वामी ने पडे को सपने मे दर्शन देकर शशिधर का ससम्मान लाने का आदेश दिया जिसका पालन पण्डो ने किया। ११ वर्ष जगन्नाथ म रहने और तदनन्तर नेपाल पहुचने पर उन्होंने घर घर जगन्नाथ स्थापित किये। वशावली के अनुसार तो लगता है कि जोस्मनी सम्प्रदाय म वैष्णव साकारोपासना सह्य ही नहीं, अपितु आवश्यक है

श्री जगन्नाथ जीमा ११ वर्ष बसीकन तहा को आचरण विचारण गरी

---

1 जो० स० प० र सा०, परिशिष्ट प० ५४७ ४८।

चनाउदे चेताउदे फेरि नेपाल तर्फ फिर्न्या र श्री जोसमनी समाज को निगान गाड्दो नेपाल मा जगन्नाथ धाम का नामुना श्री शशिधर स्वामीले धर पर स्थापना गर्या ।[१]

शशिधरादि सन्त तुलसी धारण करवाकर शिष्य बनाया करते रहे। प्रेमदिलदासादि तुलसी धारण कर जोसमनी बने ।[२]

जोसमनी सम्प्रदाय का तारक मन्त्र नारायण नाम है ।[3] जोसमनी भेष धारण करने का उल्लेख कई स्थानो पर हुआ है। स्पष्ट है कि बाहरी वेषभूषा से भी जोसमनी सन्तो को पहचाना जा सकता है। उनका यह भेष वैष्णवो से मिलता है। उनकी ही तरह जोसमनी भी तुलसी की कंठी पहनते हैं। तुलसी का महत्त्व इस सम्प्रदाय मे अत्यधिक है। नेपाल के हिन्दी सन्त कवि शशिधर जो जोसमनी सम्प्रदाय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित कवि रहे के विचारो और जीवन मे वैष्णव भावना की स्पष्ट छाप है यद्यपि वे नाथ सम्प्रदाय से भी प्रभावित हैं। उनके विषय मे जनकलालजी लिखते हैं

शशिधर ले चौरासी सिद्ध परम्परा मा परेर स्त्रीरत्न स्वीकार गरे पनि माथि भने भै महाप्रभु चैतन्य को वैष्णववाद को प्रभावमा परेको हुदा मास र मदिरा स्वीकार गरेनन। फलत उनका उत्तराधिकारिहरूमा त्यस कुराले पछि सम्म प्रवेश गर्न न पाए काले वैष्णव सन्त को रूपमा अहिल सम्म पनि देखा पर्दछन ।[४]

यथार्थत स्त्री की—वह भी अपनी स्त्री की—स्वीकृति और मास मदिरा का बहिष्कार पिछले नाथपथ का स्वरूप है।[५] जनकलालजी का स्त्रीरत्न ग्रहण रूप विशेषता के लिए शशिधर को सिद्ध परम्परा मे बिठाना ठीक नही। यदि नाथ सम्प्रदाय को अन्य कतिपय विद्वानो की भाति सिद्धपरम्परान्तगत माना जाय तो श्री जनकलालजी के कथन की सगति बन जाती है। नाथ सिद्धो की श्रेणी मे आएँ या न आए इस बात से कदाचित् ही कोई असहमत होगा कि नाथ सम्प्रदाय सिद्ध सिद्धान्तो का परिष्कृत रूप है। बहुत सी सामाजिक दृष्टि से उचित लगने वाली बातें दोनो सम्प्रदायो मे एक सी हैं। नाथो के प्रभाव को ग्रहण कर जोसमनी शिव को अपना एकादश गुरु मानते हैं[६] जो नाथो के आदिनाथ हैं।

---

१ जो० स० प० र सा०, वंशावली १, पृ० ४३४।
२ वही, पृ० ४३६।
३ वही पृ० ४४०।
४ वही, पृ० १४।
५ नाथ सम्प्रदाय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १२५।
६ जो० स० प० र सा०, पृ० १५१।

जोस्मनी वष्णव योगी

यह बात भी नहीं कि ये नाथ ही हा। जोस्मनियो म शैवो और वैष्णवा का एक समन्वयात्मक रूप मिलता है और प्रधानत वे वैष्णव हैं। अन्त साक्ष्य का आधार लें ता जास्मनी सन्त वैष्णव योगी सिद्ध होत हैं। वैष्णव भावना उनकी रचनाओं म स्थान स्थान पर देखन को मिलती है। विष्णु को त्रिमूर्ति के अदर मानन हुए भी सनातनी वैष्णवा की भाति जास्मनी शशिघर विनती शब्द मे जिस परमतत्व की स्तुति करता है[1] वह विष्णु ही अनुमित होता है क्योकि उसके गीत ब्रह्मा और शिव तक गाते हैं। नारद, इन्द्रादि दिक्पाल शारदा, योद्धा, महावीर वदशास्त्र और बड़े-बडे भागवत भी उसके गीत गाते हैं। इसम कहा विष्णु को गीत-गायक नहीं कहा गया है क्योकि वह तो गेय है। शशिघर तन्मय होकर कहता है

> साधुभाई गोविन्द गोविन्द हरिगुन गाई।
> कम भम तोडो हरिरस पिव हृदये भरि भरि आई।[2]

'वराग्याम्बर म शशिघर परमतत्व को श्रीकृष्ण कहकर पुकारता है

तन मन का गती छोडो, तत्व का गनीमा रहेर निर्भेद ले आत्मा श्रीकृष्ण का सवा गन्।'[3] अद्वय सत समाधिस्थ होन पर आत्मा शशिधर के अनुसार कृष्ण क चरणारविन्दा म मिल जाती है।[4] कृष्ण ही नहीं विष्णु के अन्य अवतारा की स्तुति भी की गई है।

> राजि राजि राजि राम भला मेरे सौ राजि रहौ मेरे रामजि
> राम लषो मन भरथ शत्रुघन सगत लिए हनुमान विर जी।[5]
> योभव सागर जमुना गहिरी ध्यावनहार रघुवीर।[6]

वह राम के पदुराई का विनती सुनाता है, नन्दलाल श्याम को भजने की बात करता है।[7]

प्रेमदिन क ऊध्वमुख कुवा म उसका मार्ई कृष्ण सिंहासनाधिरूढ है।[8] अमयानन्द (प्रयन) वंश क देवता क रूप म विष्णु और उसके अवतारा का

---

१ जो० स० प० र सा० प० १५४।
२ वही, प० २३०।
३ वही प० १६५।
४ वही प० १६६।
५ वही, पृ० २२३।
६ वही, प० २२२।
७ वही, प० २३५।
८ वही प० २४६।

श्रद्धापूवक उल्लेख करता है।[1] करम की महिमा दिखाने के लिए रघुवर के बनवास का उदाहरण प्रस्तुत कर उन्हे पतितपावन बताकर उनके प्रति अपना श्रद्धाभाव प्रदर्शित करता है।[2] किस तरह अभयानन्द पुराण प्रतिष्ठित विष्णु के अवतारो को साक्षात ईश्वर का अवतार मानता और इसीलिए उसके प्रति अपनी श्रद्धा दिखाता है—इसका निम्नलिखित भजन म पूरा परिचय मिल जाता है

> प्रथमहि ऐसे किये प्रकट सुनो व्यवहार
> पथिवी डगमग होई वारि बरोबर सोही
> जगत का पालन हेतु सोहि ॥
> स लिये मछय औतार पथिवी भार उतारे ॥
> मैं कहि समुझाउ जगत को सुन्दर ज्ञान
> ऐसे चरित्र जाहा कियो अपारा यहि विधि
> कियो कच्छप रूप पथिवी भार उतारे ॥
> ताहा आई सात लोक दाह्र मे धरि राखेउ
> जगत ने विसवास दढ़मानो
> यहि विधि बराहरूप धरि पथिवी भार उतारे। इत्यादि।[3]

श्यामदिलदास हरिगुणगान का अत्यधिक लोभी प्रतीत होता है।[4] अच्युतदिलदास ससार-सागर से तारने का अनुरोध गोविन्दलाल से करता है।[5] वह गिरधारी का गुणगान तथा लालविहारी का दशन करता है। निम्नलिखित पत्तिया म जो आराध्य का रूप चित्रित हुआ है उससे अच्युतदिलदास के वष्णव सन्त होने म कोई सन्देह नही रह जाता है

> माथ मकूट, पीताम्बर पहिरे गले हो गजहारी
> श्रवण कुण्डल मोती घुघुरु सख चक्र गदाधारी
> अमृत रस पीव पर सन्त जन भुले विपयमन बहुभारी
> दास अच्युत कहा लागी बरणौं नरण ले हो मुकुन्द मुरारी ॥[6]

सनन्दिलदास की वष्णव भावना उन्हे कृष्ण भक्त बना डालती है। नन्दकुमार बाल कृष्ण को जगाते हुए व स्तुति करते हैं

---

१ जो० स० प० र सा० प० २५२।
२ वही प० २६६।
३ वही प० २८२ ८३।
४ वही पृ० २८६।
५ वही प० २८८।
६ वही प० २८८ ८९।

जागो नाथ जि नन्दकुमारा साया सब चलि आई
सुरनर मुनि सब द्वार ठाढे करजोरि बीती सगाई
ग्वाला बाला सब गोकुल के थारी सुन बड़े जगयाई ।

इनकी पूजा विधि भी सबथा वैष्णवी है ।[1]

खाट सींगासन चौका पुन्याइ उपर चदुवा टगाई
गान गधरव की तान साजे गोपिनी मगजु गाई
पुजावोयो सब सुम भयो है चदन कुवोजा स्याई
धुपदीप नवेद्य गुभासत मालीनी फुल चुनी ल्याई
सल घण्ट घमण्ड डुलावे ग्रनेक बाजो बढाई
ताल मृदग बाजे घनरा बसी वेणु बजाई ।।
ब्रह्मवेद शिव सनकादी ऋषि मुनि नारद सब आई
गीता भागवत वेद सहित शेष सहस्र मुख गाई ।
राम छोडिके दस दिस धाव कथा को रस पाव
जागो नाथ जो लाल बिहारी देखो नन लुभाई
दास सतदौल कहा लगि जान तीन लोक सुख छाई ।[2]

उनका विश्वास है कि हरिनाम स्मरण से कितने ही अधम गँवार तर गये। ऐसे लोगो म 'जूठे फल खिलाने वाली शबरी, नामदेव चमार, तोते को पढ़ाने वाली गणिका, जुलाहा कबीर अजामिल तथा गोकुल की गोपियाँ हैं।'[3]

अखण्ड दिलदास दशावतार को पूर्णब्रह्म का खेल मानता है। ग्वाल-बाला के बीच रहने वाले श्याम का गुणगान करता दिखाई पडता है।[4]

नपाली भाषा के कवि नानदिलदास भी नेपालस्थ हिन्दी सन्त कवियो का अनुकरण करते हुए विष्णु को ईश्वर मानते हैं। पौराणिक विश्वासानुसार उसे सृष्टि का पालक समझते हैं। वे तुलसी ही नहीं, वेद को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं

तुलसी र वेद को जो निन्दा गछ
ब्रह्मलोक छोडि जेमलोक सछ
ब्रह्मचोला बाट घेरे निन्दा भयो
पापी को अंजिली भक्ति जन गयो।[5]

---

१ जो० स० प० र सा०, प० २६४।
२ वही, प० २६४ ६५।
३ वही, पृ० २६७।
४ वही, पृ० ३१७।
५ वही, पृ० ३४७।

वे अपने मन को श्रीमदभागवत और गीता के स्मरण करने का उपदेश देते हैं।[1]

यह बात प्राय सभी सन्ता म पाई जाती है कि व वष्णवा के सभी बाह्याचारा को भले ही न मानें उनका साथ सन्तो को पसन्द है। सतों म प्रधान कबीर वष्णवा क लिए पर्याप्त सम्मान दिखाता है

चन्दन की कुटकी भली ना बबूर अवराउ
वष्नौ की छपरी भली ना सौषत का बढ गाउ।
साषत बामण मति मिल बसनौ मिल चण्डाल
अकमाल दे भेटिये मानौ मिल गोपाल॥[2]

कबीर का यह वष्णव कोई विलक्षण साधक नही, बल्कि शाङ्गपाणि विष्णु या चापधारी राम का भक्त है—यह बात निम्नलिखित पद स स्पष्ट हो जाती है

राम जपत दालिद भला टूटी घर की छानि।
ऊचे मन्दिर जालि दे जहाँ भगति न सारगपानि।[3]

अन्य सन्ता ने भी वष्णवो के प्रति सहिष्णुता दिखाई है। विष्णु के प्रति सत कवियो के सम्मान का कारण डॉ॰ मोतीसिंह—बहुत सी बाता म समानता को मानते हैं

सत कवियो की मूल रचना तथा उनके पौराणिक आख्यान स यह स्पष्ट-सा हो जाता है कि सगुण रूप होने के कारण यद्यपि उन्ह इष्ट क पद पर बठाया नही गया है किन्तु बहुत सी बाता म समानता होन के कारण विष्णु को सन्त परम्परा म साधारणतया सम्मान की दष्टि स देखा गया है जसा एक विरोधी के गुणो को भी सदाशय व्यक्ति स्वीकार करते हैं।[4]

यथाथत सन्ता का विष्णु स कोई विरोध नही। जिस तरह विष्णु को पुराणा म पालन करने वाला देवता माना गया है उसी तरह कबीर मसूर उन्ह मानता है। ईश्वर के सगुण रूप मानने म भी सन्तो को कोई आपत्ति नही। विष्णु क नाम हरि स सन्ता का विशेष लगाव है। उनके अवतारा—राम कृष्णादिका—को व बार-बार ईश्वर रूप स भजत दिखाई दत हैं। पुराण ईश्वर को निराकार निगुण मानत हुए भी उसक अन्यान्य अवतारा म विश्वास करते

१ जो॰ स॰ प॰ र सा॰, पृ॰ ४१०।
२ कबीर ग्रथावली पृ॰ ४६ स॰ श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा सातवाँ सस्करण, सवत २०१६।
३ वही प॰ ४६।
४ निगुण साहित्य सास्कृतिक पष्ठभूमि ले॰ मोतीसिंह, प॰ २८६।

है। सन्त भी प्राय इन सभी अवतारों को मानते हैं किन्तु पुराणों की ही शैली में वे उन्हें इसलिए नहीं मानते हैं कि ऐसा करने से उन्हें पुराणों की जातिप्रथा कर्मकाण्डादि का जाल तथा भेद भाव मानने पड़ते जिसे सन्तों ने सबसे बुरा और कलह का कारण समझा अतएव वे बार बार सगुण ईश्वर का नाम लेते हुए भी झगड़ने वालों को समझाने के लिए उसके निर्गुण निराकार स्वरूप को सामने रखते रहे।

जोसमनी सम्प्रदाय का किस भारतीय संत सम्प्रदाय से निकटतम सम्बन्ध है ?

अब यह देखना है कि जोसमनी सम्प्रदाय का भारतीय संत सम्प्रदायों में से किसके साथ निकटतम सम्बन्ध है। श्री जनकलालजी को शशिधर की रचना में 'दरिया' शब्द से यह भ्रम हुआ है कि जोसमनी सम्प्रदाय का सम्बन्ध संत दरिया से है। यह बात उनके उत्तर में लिखे गये महापंडित राहुलजी के पत्र से अनुमित होती है।

' ज्ञानदिल के पंथ का सम्बन्ध दरियादास से होना विशेष महत्त्व रखता है।'[1] ज्ञानदिल नेपाली भाषा के सन्त कवि हैं और हिन्दी संत कवि शशिधर की शिष्य-परम्परा में आते हैं।[2] जनकलालजी ने यह भी निश्चित किया कि शशिधर की भेंट दरिया साहब से हुई। उसकी भेंट दरिया साहब से हो सकती है, किन्तु इसका अनुमान शशिधर की रचना में प्रयुक्त दरिया शब्द से लगाना ठीक नहीं क्योंकि यह शब्द संत दरिया के लिए नहीं, प्रत्युत 'दरीया' का बिगड़ा रूप है जिससे शशिधर के ऊपर ब्रह्मसम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट होता है। शशिधर की सच्चिदानन्दलहरी में दो बार 'दरिया' शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रथम बार पहली निम्नस्थ शब्द में दरिया आया है।[3] जब एक माई ने तीन चेत (पुत्र) पैदा किए तब सृष्टि बनी। उसके लिए बुलाए जाने पर उभरे हुए लम्ब दरिया उड़ उड़कर आ गए। यहां दरिया शब्द का अर्थ लम्बी उमरिया विशेषण में स्पष्ट हो जाता है। दूसरा यह शब्द हरिमिलन शब्द में आया है।

साँहि मिलन गइन करि जाउ
आफ रूप आफ समाउ

---

१ जो० स० प० र सा०, पृ० ५६७।
२ वही, पृ० १० और २१।
३ तिनरे निमती बोलाए उड़ी-उड़ी आए लम्ब दरिया उमरिया। जो० स० र सा०, प० १८६।

जिन बहुत भुले शका नाही
जिन बहु बोल सोच नाहीं
जिन बोल न भुले लख
दरिया उ तिनके मन माहीं ।[1]

यहा भी दरिया के पहले लख (लाख) शब्द प्रयुक्त हुआ है और पहले की तरह लाखा नदियाँ अर्थ भी लग सकता है और परमब्रह्म सम्प्रदाय म प्रयुक्त अलख दरीबा भी। दोना स्थला पर दरिया के पहले लख शब्द के प्रयोग से यह तो स्पष्ट है कि इन दो शब्दा का जोडा शशिधर ने दादू पथ या परब्रह्म सम्प्रदाय से लिया और इससे यह भी पता लगता है कि दादू से शशिधर के बीच के लगभग २०० वर्षों के समय म अलख दरीबा बाहरी रूप से ही परिवर्तित होकर लख दरिया नही बना बल्कि उसके अर्थ म भी परिवतन हो गया। ब्रह्म की उपासना के लिए एकत्र होकर विचार करने का स्थान अलख दरीबा[2] लाख नदियाँ— लख दरिया माना जाने लगा।

जोस्मनी का मूल सम्बन्ध दरिया पथ से इसलिए भी स्थापित नही किया जा सकता है कि दरिया पथ म दरिया की रचनाओं तक म निरजन का विकृतार्थ लिया गया है। वह सारी उलझनो का कारण बन चुका था।

निरजन धु ध तेरी दरबार।
दुखिया दुख मे सुखिया सुख मे नाँहि बिबेक विचार।
भूल के कोठी मे दाम भरायो ना न लेत तोहार।
सत रमे निसु बासर नाले ताको एह बेवहार।
रग महल मे सग सहेली द्वार खडे चोपदार।
धूरि धूप मे सेत विराजहि काहें के करतार।
बेस्वा पहिर मखमल खासा मोती मनि ग्रिव हार।
पतिवरता के गजी देतु हौ सूखा रुखा अहार।
पाखडी के आदर जग मे साच न मानु गवार।
साँच कहे एक सत सिपाही जाके जाना पार
एता कस्ट रहे जग माही सातौ भक्ति तोहार।
धन बोए साहब सत विराजहि दरिया दिल तलुसार ।।[3]

जोस्मनी सम्प्रदाय म निरजन प्रारम्भ म परात्पर ब्रह्म है। उसम उक्त बातें नही पाई जाती। उसका नाम श्रद्धा से लिया जाता है

---

१ जो० स० प० र सा० प० १७४।
२ द्रष्टव्य—उत्तरी भारत की सत परम्परा परशुराम चतुर्वेदी, प० ४१६।
३ सत दरिया एक अनुशीलन से उद्धृत पृ० १५०।

ग्रेक नाउ जग दिस छाई
खण्ड खण्ड नाहि माई
ऐसा नाम निरजन होई
शशिधर जान साचा सोई।[१] —शशिधर

अलख निरजन निर्वानी गगन
अलख निरजन निर्वानी।

सुने सुक्ष्म निरजन स्वामी
झलमल जोत जगामी।[२] —ज्ञानदिल दास

कमल दास श्याम दिल करुणाकर स्वामि
अलख—नीरजन अन्तरयामी ॥[3] —कमलदास

निराकार निगुन निरजन डात उपजतो जाहा के आसा
उपजत बियत पुन उपजतो जीमी मट घेल तमासा।[४]
—मगलदास

हा समस्त सन्त-साहित्य के विकासक्रमानुसार निरजन जोम्मनी सम्प्रदाय म भी पीछे विकृत हुआ। अभयानन्द या अभयदिल का निरजन इस सृष्टि को पैदा करने वाला है। आदिपराशक्ति विष्णु से कहती हैं

सुन हो ब्रह्मा विष्णु रुद्र निरजन मे कुरच्यो सकल गुन काम ये।
उसइ हेतु कारण मे मेरे गभ मे तुम तिन जनमाए ॥[५]

दरिया पथ मे तो प्रारम्भ से ही निरजन' विकृत या विकसित अर्थ को प्रकट करता है।

जोम्मनी सम्प्रदाय का मूल सम्बन्ध कबीर दसनामी और वारपन्थी (वारकरी सम्प्रदाय) से भी प्रतीत नही होता है। नेपाली सन्तकवि ज्ञानदिल की निम्नलिखित पक्तियो के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है

कौन कबीर कौने दसनामि कौने वारपन्थी
दास ज्ञानदिल सुनो साधु कबीर इसको
भिक्षिया जरूर देतु हमारी ॥[६]

---

१ जो० स० प० र सा० पृ० १७०।
२ वही पृ० ३६१ ६२।
३ वही, पृ० ३१४।
४ वही, पृ० ३१५।
५ वही, पृ० २७५।
६ वही पृ० ३७५।

सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हमें हेतुभूत सामग्री मिल जाती है। शशिधर का जन्म सं० १८०४ में हुआ। जोस्मनी सम्प्रदाय में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार शशिधर से पूर्व पाँच गुरु हो चुके थे।[1] १८वीं शताब्दी के पिछले तीन तुरीयांशों में इन गुरुओं की स्थिति का अनुमान सरलतया लगाया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि हरिश्चन्द्र आदि प्रथम दो एवं जोस्मनी गुरु विनोदानन्द के शिष्य रहे हों, इस तरह जोस्मनी धारा के प्रवाहक का सम्बन्ध धरणीश्वरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक से सीधा न होकर गुरुभाई का हो और रामानुज और रामानन्दजी के सिद्धान्तों को विनोदानन्दजी के माध्यम से उक्त दोनों सम्प्रदायों ने ग्रहण किया हो।

रामानन्द का सम्पर्क रामानुज के श्री वैष्णव सम्प्रदाय से स्थापित किया जाता है फिर भी दोनों की उपासना में कुछ अन्तर है। श्री वैष्णव सभी अवतारों की उपासना करते हैं। रामानन्दी राम और सीता को ही परमाराध्य मानते हैं। मन्त्रों में भी अन्तर है। श्री वैष्णव सम्प्रदाय का मन्त्र ओं नमो नारायणाय है। रामानन्द सम्प्रदाय में 'ओं रामाय नमः' प्रचलित है।[2] धरणीश्वरी सम्प्रदाय का इतिहासानुमोदित सम्बन्ध रामानन्दी गुरु से होने पर भी उसमें राम के अतिरिक्त बालगोपाल की भी उपासना है। यह देखकर जोस्मनी सम्प्रदाय में नारायण मन्त्र तथा श्री वैष्णव नाम का प्रचार रहने पर भी आदि जोस्मनी के रामानन्दी गुरु से प्रभावित होने की कल्पना व्याघातहीन बन जाती है। रामानन्द के शिष्य कबीर की उपासना भी तो अपने गुरु जैसी नहीं रही। रामानन्द के रामावत सम्प्रदाय का श्री वैष्णव सम्प्रदाय में अन्तर्भाव मानने की बात को दृष्टि में रखकर तो यह सम्भावना और भी सरल हो जाती है कि रामानन्दी गुरु का चेला रामानुजीय उपासनात्मक तत्त्वों को अपना सकता है। वेषभूषा सैद्धान्तिक समानता तथा ऐतिहासिक संगति के अतिरिक्त इस तथ्य से भी इन दो सम्प्रदायों की घनिष्ठता अनुमित होती है कि जोस्मनी सन्तों में से बहुत से माझ किरात प्रदेश से सम्बन्ध रखते हैं जो धरणीश्वरी सम्प्रदाय का मूल स्थान है।

दोनों सम्प्रदायों के सन्तों के अन्त में प्रायः दास जोड़ने की प्रथा भी दोनों को समीप लाती है। जोस्मनी सम्प्रदाय को पिर्जेदिलदास ने दिल अतिरिक्त शब्द दिया। हरिभक्त दिल ने उसे जोस्मनी नाम प्रदान किया हुआ लगता है और शशिधर ने सर्वप्रथम इस मत का नेपाल में व्यापक प्रचार किया।

जोस्मनी तथा अन्य सन्त शाखाओं की तुलना

(क) निर्गुण का सगुण होना—जोस्मनी सम्प्रदाय तथा भारतीय सन्त

१　जो० सं० प० र सा०, पृ० ७ तथा ३४७ (तालिका)।

२　कबीर हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६६।

पथा और सम्प्रदायो मे थोडे-बहुत अपने वैशिष्ट्य को छोडकर सद्धान्तिक समानता है। भारतीय तथा नेपाली सन्त सगुण का विरोध न करते हुए भी निगुण की ओर झुके हैं क्योकि निगुणोपासना समाज हित की दृष्टि से विवाद-शून्य एव अधिक उपादेय है। वैसे दोनों सम्प्रदाय ईश्वर के सगुण रूप म विश्वास रखत हैं। भारतीय परम्परा म सगुणास्थापरक बातें बहुत कम आई हैं जबकि जोस्मनी सम्प्रदाय म निगुण स पूरी टक्कर न लेने पर भी सगुण तत्त्व अपना महत्त्वपूण स्थान रखता है। व स्पष्ट रूप से निर्गुण के सगुण होकर अवतार धारण करने की बातें करते हैं उसे मोर मुकुटादि आभरणा से सुसज्जित करत हैं और इस तरह तुलसीदासादि भक्तो की वाणी का समथन करत लगते हैं जसे

ब्यापक ब्रह्म निरजन, निगु ण बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद।[1]

निराकार निर्लेप को भेद न जाने कोहि।
जो कर्त्ता सब जगत के मयान प्रमु स्वही।
जन्म मरण से रहित हैं नारायण करतार।
हरि भक्तन के हेतु स ल तु सुमी अवतार।
माथ मकुट पीताम्बर पहिरे गले ही गजहारी।
श्रवण कुण्डल मोती धुघुरू सख चक्र गदाधारी॥[2] —शशिधर

(ख) निगुण निराकार की भावना—भारतीय तथा नेपाली दाना सन्त सम्प्रदाय परमतत्त्व को अनेक स्थानों पर निगुण पुकारत हैं। कबीर उसके भजन का उपदेश देता हुआ कहता है

रसना रामगुन रमि रस पीज। गुन अतीत निरमोलिक लीज।
निरगुन ब्रह्म क्यो रे भाई। जा सुमिरत सुधि बुधि मतिपाई।[3]

इसी तरह जोस्मनी शशिधर निगुण के गीत गान का उपदेश देता है

निरगुन गाई तर सरगुनतन। सरगुन गाई को तर, भूलाये कवि जन।[4]

वही अलख निरजन घट घट म व्यापा है कोई दूसरा नही। किससे कडवा बोले, किससे मीठा

घट घट मे वही साईं रमता कटुक बचन मत बोल रे।[5]

जोस्मनी अभयानन्द भी यही कहता है

---

१ रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० १९८, (गी० प्रे० गो०, बारहवाँ स०)।
२ जो० स० प० र सा० पृ० २३६।
३ कबीर ग्रथावली पद ३७५, पृ० १८२।
४ जो० स० प० र सा०, पृ० १५७।
५ कबीर वचनावली पृ० २०६, पद ६४।

हृदय कमल म समरस होय प्रसन्न निरञ्जन सोहिरे।
घट घट बोले सोऽहं सोहं सब भीतर यही रे।[1]

जो सवत्र व्याप्त है उस खोजने का प्रयत्न व्यथ है। भूले हुए मृग का उदाहरण देकर जीव की अज्ञानता को कबीर और धनिपर एक-सी अभिव्यक्ति द्वारा प्रदर्शित करते हैं

मिरग पास कस्तूरी वास आप न खोजे खोजे घास।[2]
कस्तूरी कुण्डलि बस मृग ढूढ बन माँहि
ऐसे घटि घटि राम है दुनियाँ देखे नाँहि।[3]
मृगनाभि कस्तुरि भलानि खोज्ने भारमा भार
है सुगन्ध उसके पल्ले स्यानभातो नाँहि नाँहि मिले।[4]

(ग) ससार का मिथ्यात्व—इस जगत् को जोस्मनी भी उसी तरह मिथ्या क्षणभंगुर तथा नाशवान् मानते हैं जैसे अन्य सन्त

जो कुछ दीसे सकल विनासे ज्यों बादल की छाँही।
जनु नानक यह जग झूठा रहो राम सर नाँहि॥[5] —नानक
माया स सब जगत बडा है सुन हो चित्त लगाई।
झूठी जग को साच कराया सच्चा ब्रह्म छपाया।
झूठी से सब जगत पत्याई साचा स्वप्न न पाई।[6]
—अभयदिलदास

(घ) योगमार्ग—जोस्मनी और अन्य सन्तो के साधन मार्ग भी समान हैं। योगमार्ग को दोनो ने अपनाया है। कबीर गगनमण्डल म घर बनाने की कहता है[7] अनहद ढोल का आनन्द लेता है[8] और जोग जुगति से अपने प्रियतम को प्राप्त करता है।[9] कबीर को श्रद्धेय मानने वाले सभी भारतीय सन्त सहज योग द्वारा परमतत्त्व की अनुभूति का रास्ता अपनाते हैं। उस सहज-शून्य का आनन्द भी प्राय सभी ने उठाया है जहाँ मानवात्मा समस्त राग-द्वेषो से मुक्त हो

१ जो० स० प० र सा० पृ० २५६।
२ कबीर वचनावली, पृ० २०४।
३ क० ग्र०, प० ८१।
४ जो० स० प० र सा०, प० २४१।
५ सन्तवानी सग्रह नानक, प० ५४।
६ जो० स० प० र सा०, प० २५७।
७ कबीर ग्रन्थावली प० ११०।
८ कबीर वचनावली, प २०६ पद ६४।
९ वही, पृ० २०६।

जाती है।"[१] सिद्धो और नाथा न शू य और सहज इन दो शब्दा का व्यवहार पृथक-पृथक किया है। सन्तो न सहज और शू य को महज शू य बनाकर प्रयुक्त किया है।[२] शू य का प्रयोग महल, गगन, मण्डल समाधि आदि के विशेषण के रूप मे भी हुआ है।

इसी तरह जोस्मनी भी उक्त योगमाग का अनुसरण करते है। वे तो अपने को कहते भी योगी। शशिधर आसन जमाकर अनहद ध्वनि को पैदा करने, गगन म सूरत' जोडने एव ब्रह्मद्वार खोलने की बातें करता है।

तन रूप जुगति बत पची दृढ आसन दत बता जोरी
तब परमात्मा जाग अनहदद धुनी उपजे
गग म ताहा सूरत जोरी।
आफ साहैब प्रस न होव सिर उपर लहर डोल
तब जीव जाई मिल आप आफ ब्रह्मद्वार घोल ॥[३]

शशिघर के 'समाध श द'[४], 'आत्मा जागन लक्षिण शब्द'[५] जालभेदन शब्द'[६] आदि म यागमाग का निश्चित अवलम्बन है। हाँ जोस्मनी 'शू य भवन' तक तो जाता है, किन्तु नाद श्रवण के लिए वह सहज समाधि या सहजशू य की ओर बढता नही दिखाई देता[७] यद्यपि दढ आसन की उमने बडी प्रशसा की है, अजपाजाप भी वह करता है। कबीरादि ने जिस सहज को अपनाया, अपनाते तो जास्मनी भी उसे रहे ही कि तु नेपाल म इस श द के नाम पर सिद्धो के गुह्य प्रयोगो मे जो अनाचार हुए, वही उसके साथ उ ह सम्बद्ध न मान लिया इस आशका स अथवा इस श ब्द क सिद्ध प्रदत्त अथ का दृष्टि मे रखकर स्वय घृणा भाव स जास्मनिया ने इसका पयोग अपनी रचनाओ के नही के बराबर किया।

जोस्मनी योग और अ य हि दी स तो के योग मे इस बात से कुछ अ तर आ गया है कि जोस्मनी सम्प्रदाय पर नाथा का अधिक प्रभाव रहा है जिस उ होने कही-कही परमत व को शिव श क्ति रूप मानकर प्रकट किया।

ब्रह्म अगनी मुख होम काया
ताहा से महादेव ब दि पाया

---

१ स त साहित्य डा० प्रेम नारायण शुक्ल, प० १४३।
२ मन पवना कर आतम खेला सहज सु न धर मेला—दादू की बानी भाग २ पृ० ११३।
३ जो० स० प० र सा० प० १६८।
४ वही पृ० १६६।
५ वही प० १७२।
६ वही प० १७६।
७ पाप न पु ये सु ये-सु ये वेनाउ। (शेष पृष्ठ ११४ पर)

नाद विंद जाको हृदय घर
ताको सेवा देवी पावती कर ॥[1]

इस पद की पिछली अर्धाली निम्नांकित गोरखवाणी से अद्भुत साम्य रखती है

नाद विंद जाके घटि जरै।
ताकी सेवा पावती करै ॥[2]

शशिधर ने 'घटि' के बदले हृदय और 'जरै' के बदले घर प्रयुक्त कर शेष ज्यों का त्यों उद्धृत कर अपनी नगण्य मौलिकता के साथ गोरखनाथ का प्रभाव को व्यंजित किया है। अजपाजाप के क्रम में छः हजार जप पूरा होने पर जोसमनियों के अनुसार शक्ति सहित शिव का ज्ञान होता है

षट सहस्र जाप करि जानो सक्ति सहित सिवतत्व बखानी।[3]

अधिकांश जोसमनियों ने शिव को परम गुरु माना है। यह सब जोसमनियों के ऊपर नाथों का प्रभाव है।

(ङ) भक्ति भावना— सभी सन्त भक्त हैं। भक्ति के आवेश में साधकात्मा परमात्मा से विभिन्न सम्बन्ध जोड़ती है। हरिजननी मैं बालिक तेरा[4] यह पुत्र बनकर प्रभु की कृपा प्राप्त करना अत्यधिक प्रभावपूर्ण परमार्थ साधक उपाय है। शशिधर भी भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिए वह उठता है

तुमहि साहेब सतगुरु मेरे माता पिता हामु तुम्हरे बालक।[5]

देखा जाता है कि मनुष्य कृपा प्राप्त करते हुए अपने आपको अत्यधिक अकिंचन पाने लगता है अतएव आत्म विकास के लिए साधकात्मा कृपा के स्थान पर फिर स्नेह चाहने लगती है और परमतत्व के साथ एक श्रेष्ठ स्नेह सम्बन्ध जोड़ती है। यहाँ साधना रहस्यमय होने के कारण कवि को रहस्यवादी कहा जाता है। कबीर की आत्मा अपने को 'राम की बहुरिया'[6] कहती और तीव्र विरह व्यथा का अनुभव कर तड़प उठती है

आस्तिक नास्तिक शशिधर नाउ नाउ मिलाउ। शशिधर। जो० स० प० र सा०, पृ० १६०। शून्य भवन जाहा भये उजीयारा दीपक नहीं चाहे॥ वहीं, प० २५३।

१ जो० स० प० र सा०, पृ० १६८ अभयानन्द' प्रथम।
२ गोरखबानी स० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल पृ० २५६।
३ जो० स० प० र सा०, प ५०३।
४ 'कबीर', हि० स०, का स०, प० ११०।
५ जो० स० प० र सा०, प० १५२।
६ हि० स० का स०, प० ११०।

के विरहिणिकु मीच दे क आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणा मोप सहा न पाइ ॥[1]

वह अपने प्रियतम के पास जाने को लालायित देखी जाती है। उसे यह ससार रूपी नहर अच्छा नही लगता है

नहरवा हमकों नहि भाव
साइ की नगरी परम अति सुदर
जहाँ कोइ जाइ न आव
चाद सुरज जहँ पवन न पानी
को सदेस पहुँचाव ?
दरद यह साइ को सुनाव ?
आगे चलौं पथ नहि सूझ
पीछे दोष लगाव
केहि विधि ससुरे जाव मोरी सजनी
बिरहा जोर जनाव
विप रस नाय मचाव ॥

बिन सतगुरु अपनो नहिं कोई
जो यह राह बताव।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
सपने न प्रीतम पाव ॥
तपन यह जिय की बुझाव ॥[2]

जोस्मनी सत शशिधर की आत्मा अपनी सखी स प्रियतम के पास जाने का अनुरोध करती हुई कहती है

सदेश आए एकु पतिया जमुना पारी कवको जाइ हो सखिया।
यो भव सागर जमुना गहिरी ब्यावनहार रघुवीर।
वही जो छिन मे लेखा जो भाग्ये। व्याकुल भये हो।
चली जाई पवन धीरे - धीरे हो सखिया।
× × ×
जब पुरुष के सदेश आए चली जाय कुल गतिया।
जब जाइ वही देसवा मे चली-चली जाय कुल गतिया
हो सखिया।[3]

---

१ क० ग्र०, पृ० ६।
२ कबीर साहब की शब्दावली बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद पृ० ७२।
३ जो० स० प० र सा०, पृ० २२२।

(च) नामभक्ति—भारतीय सन्त मतानुसार भक्ति करना सरल नहीं है। नामभक्ति बड़ी 'दुहेली है।'[1] प्रेम का घर 'खाला' का घर नहीं।[2] वहाँ जाने के लिए तो पहले सीस उतारकर भूमि में रखना पड़ता है। रात दिन पी-पी कर' बिताए बिना भक्तियोग को प्राप्त नहीं किया जा सकता।[3] जोस्मनी सन्त शशिधर की दृष्टि में गुरु के कथनानुसार सत्य का अवलम्बन लेकर नाम गाता हुआ कोई विरला ही उस भक्ति का अधिकारी बनता है जिसमें उसके रोम रोम में राम समा जाने के कारण पुलकावली व्याप्त हो जाती है

सत्य वचन अधीन गुरु के नाम गाई
मन गदगद तन पुलकावली राम नाम समाइ ॥[4]

जोस्मनी सन्त नाम महिमा से सुपरिचित हैं। वे प्राय अपने मन को नाम जप करने का उपदेश देते हैं। नाम का महत्त्व तुलसीदास ने भी प्रकट किया है। उनके राम तक नाम की महिमा गाने में असमर्थ है[5] उनका नाम उनसे बढ़कर है।[6] अज्ञानपूर्वक भी नाम के उच्चारण से मनुष्य का कल्याण हो जाता है।[7] तुलसी को शब्द की शक्ति पर विश्वास है। सन्तों का नाम जप इससे भिन्न है। वह सर्वथा सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक है जो मुँह से नहीं रोम रोम से जपा जाता है। साँस आती जाती उसे जपती है। उसी नाम जप की ओर संकेत करता हुआ प्रेम दिन कहता है

मन राम हरी हरी वपु नहिं बोलता है।
हरी नाम स्व है सब घट भीतर मोह सब जग भुलाता है।[8]

कबीरादि भारतीय सन्तों की भक्ति में हृदय का योग जिस मात्रा में देखा जाता है उस मात्रा में जोस्मनियों की भक्ति में नहीं पाया जाता। यथावत जोस्मनी मत में भक्ति और प्रेम को उतना महत्त्व नहीं मिला जितना कबीरादि भारतीय सन्तों की वाणियों में।

(छ) वैराग्य—भगवद्भक्ति तभी सम्भव है जब संसार से विरक्ति हो। प्यार की अपनी सीमित भावना को मनुष्य जिधर लगाता है उधर का ही

१ क० ग्र० पृ० ६२।
२ वही पृ० ६२।
३ चरनदासजी की बानी सन्त बाणी सं० भाग १, द्वि० सं० (वे० वे० प्रेस, इलाहाबाद), पृ० १४५।
४ जो० स० प० र सा० पृ० १५२।
५ रा० च० मा०, बालकाण्ड पृ० ४८।
६ वही बालकाण्ड पृ० ४७।
७ वही बालकाण्ड पृ० ४४।
८ जो० स० प० र मा०, (प्रमदित्त), पृ० २४८।

हो जाता है। एक ओर से जितना ही हटाना है दूसरी ओर उतना ही फलाता है। प्रवत्ति के लिए निवत्ति और निवृत्ति के लिए प्रवत्ति—एक मनोविज्ञानसिद्ध बाधा है। ससार और सार दोनों युगपत सम्भव नहीं। कबीरादि संत इसीलिए ससार की अनित्यता को चित्रित कर परम विरक्ति का उपदेश देते हैं। जीवन की अस्थिरता और ससार की असारता को दिखाता हुआ संत कबीर कहता है

आजि कि कालिह कि पचे दिन जगल होइगा वास।
ऊपर ऊपर फिरहिंगे ढोर चरेंदे पास॥[1]
यह ऐसा ससार है जसा सबल फूल
दिन दस के व्यौहार को, झूठे रंगि न भूलि॥[2]

ससार मे जो कुछ मिलता है उससे कहीं अधिक हम गँवा देते हैं। मलूकदास के विचार मे यहाँ कण कम कक्कर अधिक हैं

कन थोरे काकर घने देखा फटक पछोरि।[3]

रविदास के अनुसार जीव ममता के चक्कर म पडकर अपना मूल गवा बठता है

मैं से ममता देखि सकल जग, मैं से मूल गँवाई।
जब मन ममता एक एक मन तबहि एक है भाई॥[4]

दादू सुख की हरियाली देखकर प्रफुल्लित होने वाले जीव-पशु को चेतावनी देता है

सिर ऊपर साधे खडा अजहु न चेत अध
यहु बन हरिया देखिकरि फूल्यौ फिर गवार।[5]

इस तरह सन्त जीव का डरा धमका, समझा बुझाकर भगवदभक्ति की ओर ले जाना चाहते हैं। उसका गव करना अनुचित मानते हैं, सचयवत्ति को दोष मानकर निर्लेप भाव स रहने का उपदेश देते हैं और दृढ वराग्य म आरूढ होकर परमतत्त्व म तल्लीन होने का आदेश देते हैं।[7]

जोसमनी सन्त भी इस दिशा म ऐसी ही बातें कहते दष्टिगत होते हैं।

१ कबीर ग्रन्थावली पृ० १६।
२ वही, पृ० १८।
३ मलूकदास की बानी मलूकदास—स० बा० स० भा० १, पृ० १०० (बे० वे० प्रे०, स० १६२२, द्वि० स०)।
४ सन्त रविदास और उनका काव्य नवभारत प्रेस, लखनऊ, पृ० ६८।
५ हिन्दी का० स०, पृ० १४२।
६ कबीर वचनामृत मुन्शीराम (प्रथम आवृत्ति, स० २००७) पृ० ६७-६८।
७ द्रष्टव्य—सत्य कबीर की साखी स० युगलानन्द, पृ० १८२ १८४।

सत दिलदास कबीर की ही तरह जीव को चेतावनी देता है कि एक दिन जगल के बीच निवास होगा अतएव शरीर की क्षणभगुरता को समझकर वह ठीक माग पकडे ।[१] शशिधर रुपये जोडने वाले की मूखता की खिल्ली कबीर की ही भाँति उडाता है

कौडि कौडि पसा जोडे जोड लाय पचासा जि ।
हिरामोति मणिक छोड सग न चले रतिभर मासाजि ।।[२]

धन यौवन का गव कसा ! दो दिन खिलने वाले फूल का क्या विकास ! यमराज फाँसी लिए खडा है इसलिए शशिधर जीव को चेतावनी देता है

धन जोभन कि दाग़ा लाग जसे फुल प्रकासा जि ।
सोहि रग मे नहि भूलो लागे जेमकि फासा जि ।।[3]

जोसमनी सन्त भी इस ससार के सम्बन्धो को शाश्वत नहीं मानते हैं। यह सारा सम्बन्ध जगत अपने गन्तव्य को चलते हुए पथिक का एक बीच का पडाव है। यहाँ के सम्बन्धी जीव का कोई भला नही कर सकते है। मौत आने पर केवल निष्क्रिय छाती पीट सकते हैं

माता पीता बधु भाई चार दीन की सगत साथी ।
जब जेम आइके पकड लीयो है पीटन लागे तब छाती ।।[४]

—धमदिलदास

इसलिए इस मायामय जगत से विरक्त होकर जीव को चाहिए कि वह अपने को खोजे जिसे न देखकर ही शशिधर खिन्न हो उठता है ।

अपने खोज करत न कोही भूठा जगत कि आशा जि ।[५]

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि सन्त जब ससार से विरक्ति और कमत्याग की बातें करते हैं तो यह नही समझना चाहिए कि वे स्वरूपत कमत्याग का उपदेश देते हैं। मन की आसक्ति का त्याग ही उनके वराग्य का वास्तविक अथ है। इस दिशा मे सन्तो का मत गीता[६] से मिलता है। कबीर ज्ञान कुहाडा लेकर कमवन का मशान बनाता है।[७] ज्ञान से कबीर का तात्पय ज्ञानपूवक कर्मों से है

१ जो० स० प० र सा० पृ० २६६ ।
२ वही पृ० २३७ ।
३ वही प० २३७ ।
४ वही पृ० २६२ ।
५ वही पृ० २३६ ।
६ अनाश्रित कमफल काय कम करोति य
स सन्यासी च योगी च न निरग्नि न चाक्रिय ।। (गीता ६ अ० १ श्लो०)
७ सन्त कबीर की साखी स० युगलानन्द पृ० २२० ।

ज्ञान के कारण कम कमाय भये ज्ञान तब कम नसाय ।
फल कारन फूले बनराय फल लागे तब फूल नसाय ॥[१]

जोसमनी सन्त वराग्य के लिए गृह-त्याग को आवश्यक नहीं मानते हैं। कम के स्वरूपत त्याग का प्रश्न ही नहीं उठता। सन्तमत ग्रहण करने से पहले ही नहीं, बाद मे भी अधिकांश जोसमनी सन्त गृहस्थ धर्म निभाते रहे। नीचे लिखे तीनों तरह के जोसमनियों मे गार्हस्थ्य के कतव्य से विरक्ति स्वरूपत नहीं देखी जाती है।

१ शब्दी जोसमनी—ये गुरु से कवल अजपा गायत्री का मन्त्र लेकर बन जाते हैं। उनकी गृहस्थ चर्या म कोई अन्तर नहीं पडता।

२ गुरुमुखी—शब्दी चाहे तो गुरुमुखी बन सकता है। उसके लिए उसे योगाभ्यास की क्रियाएँ सीखनी पडती हैं किन्तु अपने सासारिक काय को वह यथावत करता रहता है। मरने पर भी यदि उसके पुत्रादि हुए तो अन्त्येष्टि क्रिया कुलधर्मानुसार ही होती है।

३ गुरुपजा—योगसिद्ध गुरुमुखी ही 'गुरुपजा' जोसमनी बनता है। इस अवस्था म गुरु से बाना, झोली तुम्बा चिमटा तार—इन पाँच चीजों को ग्रहण करने के कारण ही वह गुरुपजा' कहलाता है। वह पीताम्बर धारण करता है, (हमानन्द की शिष्य परम्परा म गेरुवा वस्त्र भी चलता है) मरने के पीछे उसकी समाधि बनती है। किन्तु गार्हस्थ्य धर्म और उसके विविध कर्मों से सवथा पृथक रहना उसके लिए आवश्यक नहीं। प्रसिद्ध स्वामी जोसमनी ज्ञानदिलदास गृहस्थ होते हुए भी गुरुपजा शिष्य बनाने वाले सिद्ध जोसमनी माने जाते रहे।[२]

सिद्ध है कि सन्त कमहीन मनुष्य को विरक्त नहीं मानते। विरक्ति के लिए मन से आसक्ति हटाना आवश्यक है। उनके मतानुसार स्वरूपत कम-त्यागी तथा भेष से सन्यासी होता हुआ भी मनसा विषयासक्त साधु साधु नहीं।

(ज) गुरु का महत्त्व—सन्त मत मे गुरु के प्रति अगाध प्यार है। कबीर गोविन्द को बताने वाला होने के कारण गुरु को उससे महत्तर स्थान देता है।[३] गरीबदास का ऐसा गुरु है जो जीव को भक्ति का पुरस्कार प्रदान करता है।[४]

१ कबीर वचनावली, पृ० २०४।

२ द्रष्टव्य—ज्ञानदिलदास की जीवनी जो० स० प० र सा०, पृ० ८८ और १०४।

३ क० व०, पृ० ११६।

४ माया का रस पीय कर हो गये भूत खबीस।
ऐसा सतगुरु हम मिला भगति दई बक्सीस॥ गरीबदास की बानी पृ० १४।

दादू का गुरु संसार में डूबते हुए को बेड़ा पकड़कर निकाल लेता और नाव चढ़ाकर पार कर देता है।[1] धरनीदास का विश्वास है कि बिना गुरु और हरिनाम के जीवन आडम्बर है

धूवा केरा धौरेहरा औपूरी को धाम ।
ऐसे जीवन जगत मे बिनु गुरु बिनु हरिनाम ।।[2]

जोस्मनी सन्त भी अन्य सन्तों की भाँति गुरु के महत्व को स्वीकार करते हैं। शशिधर गुरु को साक्षात् परब्रह्म मानता है, इसलिए छल-कपट छोड़ कर गुरु ध्यान का उपदेश देता है

छल कपट छोडि गुरु करे गुरु है यहि आदि रुप ।
गुरु ब्रह्म औतार है गुण गुरु अगुण ब्रह्म अनूप ।।[3]

नानक की तरह[4] शशिधर परमतत्व का निवास गुरुमुख में मानता है

यो महामत लेखिया न जाई । सतगुरु मुख रहै भाई ।
सब सतगुरु कृपा कर मत पाई । सतगुरु बिना कोटी कर चतुराई ।।[5]

धर्मदिलदास 'भवजल' पार उतरने के लिए दो बातें आवश्यक मानता है—(क) गुरुभक्ति (ख) साधुसेवा।[6] जोस्मनिया के अनुसार चाहे कोई कितनी ही चतुराई करे, किन्तु बिना गुरुकृपा के निस्तार नहीं। भक्त की अपरिमित विनय के साथ शशिधर गुरु को सम्बोधित करता हुआ कहता है

पञा पर नाम लपाइ दिजिए गुरुजि पञा पर नाम लपाइ दिजिए ।
निशि अधारि आँषि नहि सूज्ये । ज्ञान कि जोति जराई दिजिए ।।[7]

साधक के परम हितकर मार्ग को दिखाता हुआ जोस्मनी सन्त कहता है

श्री गुरु मूर्ति चन्द्रमा—सेवक नयन चकोर ।
अष्ट पहर निरखत रहो—गुरु मूर्ति की ओर ।।[8]

---

१ सतगुरु काढे केस गहि डूबत इहि ससार ।
दादू नाव चढ़ाय करि कीय पलो पार ।। सत बानी स० भाग १, पृ० ७६ ।

२ धरनीदास की बानी—स० बा० स०, भाग १, बे० बे० प्रे० इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण, पृ० ११२ ।

३ जो० स० प० र सा०, पृ० १५२ ।

४ आदिग्रन्थ सिरीराग, म० १ (अष्टपदियाँ) ।

५ जो० स० प० र सा०, पृ० १६३ ।

६ गुरु की भक्ति साधु के सेवा तब उत्रे भवजल पारी ।
बमानी हसा कौहो न चले सग न साथी ।। जो० स० प० र सा०, पृ० २६२ ।

७ जो० स० प० र सा०, पृ० २२४ ।

८ वही पृ० २४३ ।

जिस गुरु का इतना महत्व है उसे पहचान करने के बाद ही बनाया जाना चाहिए नहीं तो वह स्वयं तो डूबेगा ही शिष्य को भी ले जायेगा—इस बात को जोसमनी सन्त खूब समझते हैं। मन्त्र देने वाले मुरीद बनाने वाले तथाकथित गुरु की कबीर की ही भांति[1] निन्दा करता हुआ शनिश्वर लिखता है

आपु अन्धा पद नहि सूझ आर को राह बताई।
आपनु प्रतीत नहिं आध और को सीख्या सिखाई॥[2]

(झ) आडम्बरहीनता—सन्त आडम्बर विरोधी रहे हैं। उन्हें ढोंगी जीवन से घृणा तथा बाह्य विधानों से चिढ़ है क्योंकि उनमें मनुष्य मूल भाव को भुला देता है। दया और मिहर' को भूलकर हिन्दू और मुसलमान धर्म का दम्भ निभाते हैं। कबीर के अनुसार इसके अभाव में कोई धर्म आडम्बरों और बाह्य विधानों की बहुलता से बड़ा नहीं कहा जा सकता है

हिन्दू दया मेहर को तुरकन दोनों घट सों त्यागी।
व हलाल व झटका मारे आगि दुनों घर लागी॥[3]

पूर्व या पश्चिम की ओर मुंह कर उपासना भेद से परमतत्त्व बदल नहीं जाता, राम रहीम दो नाम होने से एक के दो नहीं हो जाते। उपासना के भिन्न-भिन्न विधानों से उपास्य का क्या बिगड़ता है? दो भिन्न भिन्न गहने बनाये जाने के कारण क्या सोना बदल जाता है?[4] फिर लड़ना भगड़ना क्यों? सन्त इसीलिए ऐसा मत तयार करते हैं जिसमें वैर न हो

निरवैरी निहकामता साईं सेती नेह।
विषया सूं न्यारा रहे सतनि का अंग एह।[5]

तीर्थ व्रत सन्ध्या-तर्पण पूजा पाठ रोजा नमाज आदि बाह्य विधानों में जो मानवता को विभाजित कर उसे हिन्दू मुसलमान नाम देते हैं सन्तों का विश्वास नहीं।[6] जो ईश्वर को घट घटवासी कहे वह उसे किसी पाषाण में किस तरह अवसित कर सकता है! चींटी के पग की आहट सुनने वाले को सुनाने के लिए ऊँची आवाज की अपेक्षा कहाँ? आचरण को सुधारे बिना पुराण

१ क० ग्र० पृ०२ क० व० पद १८२।
२ द्रष्टव्य—जो० स० प० र सा०, पृ० २१०।
३ कबीर व०, प० २३७।
४ वही, पृ० २०८।
५ क० ग्र०, पृ० ४४।
६ विशेषत द्रष्टव्य—बीजक रमनी ६२, बीजक शब्द २३, कबीर ग्रन्थावली पृ० १००, गरीबदासजी की बानी, पृ० १८३।

कुरान किस काम के ? सन्तों का मत है—सत्य और विश्वजनीन मत। उसका मत जहाँ मानवता ही नहीं पशुसृष्टि भी शान्तिपूर्ण जीवन बिता सकती है।

जोसमनी सन्त कवि भी आडम्बरों का विरोध कर एक व्यापक सर्वहित कर उपासना-मार्ग को अपने पाठकों के सम्मुख रखते हैं। परमात्मा के पूजागृह म पन्थ या सम्प्रदाय बनाने की आवश्यकता नहीं

हरिमिलन पथे नाहिं पथ छोडि जग भुलाई।
प्रभु के ठाउ न वाह्य ममता पोल हरि भाई॥[1] —शशिधर

अपने हृदयस्थ के दर्शन करने के लिए पन्थ तथा मतमतान्तरों की अपेक्षा हो ही क्यों ? वह तो अनुभवगम्य है। माया ममता का निरास हो तो वह सहज प्राप्य है और माया ममता के रहते हुए कोई कितने ही देवों की पूजा क्यों न कर ले भ्रम मिट नहीं सकता।[2] अन्य सन्तों की तरह जोसमनी सन्त भी पित तर्पण सन्ध्या आदि वाह्य विधानों को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखते हैं और न उन्हे कपडे रगना, जटा भार धारण करना तथा नग्न रहना ही भाता है

केते सन्ध्या तरपन पूजा पानी आप
केते मुर्दा के नाउँलि सति होइ पिंड तर्पे
केते कपरा रग रगे केते जटा राख भारि।
केते नग्न लाज भूले केते काम दलदारी।[3] —शशिधर

वेणुवादन के साथ पाषाण पूजा की—जैसा कि नेपाल मे प्राय देखा जाता है—जोसमनी निन्दा करते है। उनके विचार से योगी बनने के लिए बाहरी बाल मुडाने से कुछ नही होता—कबीर ऐसो को मुडी हुई भेड मानता है—हृदय की वासना के बालो को उतारना आवश्यक है और ऐसा मुण्डन कोई विरला ही करता है

ज्ञान कि छुरा विज्ञान को बाड लगाई
मत वराग म हजाम माया मुडाई
काम रस राग मोही बाल बहाई
निरमुनि मडा सिष्य विरला भाई
बहु भेष भाती भाति सब पाखडा
तर न तर वदरखाति मुण्ड मुण्डी
जो कोही भक्त पत्थरू पुजे बेणु घण्ड बजाई
एक दिन पत्थरू टुटे तुह देवता काँहाँ समाई।[4]

१ जो० स० प० र सा०, पृ० १८८।
२ वही पृ० १९२।
३ वही पृ० २११।
४ वही, प० २३२।

इसी तरह वेद-पुराण के उस अध्ययन को वे निरर्थक मानते हैं जिससे मन में दयाभाव पैदा न हो।[1]

जाति-पाति और वर्ण-व्यवस्था में वे आस्था नहीं रखते, वे इसे मानवता के बीच की टट्टी मानते हैं।

जात कर्म वर्ण मर्य्यादा यह बीच टट्टी लगाई।
भ्रम गियो परयो चौरासी में ऐसो भ्रम जाल बछाई॥[2] —योगमण्डल

जोस्मनी कहते और करते तो लगभग वही हैं जो अन्य भारतीय सन्त किन्तु उनके न तो खण्डन में वह तीव्रता मिलती है और न स्वमत मण्डन में वह आग्रह और प्रबलता ही, जो कबीरादि भारतीय सन्तों की वाणियों में विद्यमान है। यथार्थतः यह नेपाल की सहज प्रवृत्ति है कि वहां सामंजस्य तथा स्वकीयेतर मतों के प्रति उदारता असीम है। और तो और 'अहिंसा परमो धर्म' वाला बौद्ध धर्म तथा बलि-पूजाप्रधान कर्म-काण्ड के बीच तक एक आश्चर्यकर सहिष्णुता मिलती है। अथ च जोस्मनी स्वयं उन बातों को अपनाते हैं जिनके विरुद्ध कहीं-कहीं उन्होंने सन्तमत की सामान्य प्रवृत्ति के कारण कुछ कहा भी। वे शालिग्राम की पूजा करते हैं, तुलसी की कंठी पहनते हैं, हंसानन्द की शिष्य-परम्परा में गेरुवा वस्त्र भी धारण किया जाता है ब्राह्मण गुरु का अधिक सम्मान जोस्मनियों के वर्ण विश्वास को भी प्रकट करता है वेद-पुराण का अध्ययन भी वे श्रद्धापूर्वक करते हैं।[3] कहने का जोस्मनी योगी के लिए गार्हस्थ्य-निषेध है।[4] किन्तु कार्य रूप में 'नादी' और 'गुरुमुखी' सन्तों की बात दूर रही दीक्षा देने वाले 'गुरुपुजा' जोस्मनी तक गृहस्थ पाये गए हैं।

इस तरह जोस्मनियों की कुछ बातें ऊपरी दृष्टि से सन्तमत विरोधी प्रतीत होती हैं, किन्तु विचार करने पर उनमें विरोधाभास मात्र देखा जाता है। सन्त आडम्बरविहीन विश्वासपूर्ण सत्य साधना को चाहते हैं। उनके अनुसार साधक

---

१ कहा भयो वेद पुराण पढ़िके दया न आयो मन का अभयानन्द प्रथम— जो० स० प० र सा० पृ० २५५।
२ जो० स० प० र सा०, पृ० २४५।
३ जो० ग्रन्थावली प्रथम, जो० स० प० र सा०, पृ० ४३४ तथा पृ० २०६ अच्युत दिलदास।
निर्गुण ब्रह्म के स्वास में नीकसे प्रकट भये वेद चारा।
सोही वेद से षटसास्त्र निकसे पुराण अठारा॥
४ योगी होइ क गस्तानी गर्या, बिसर्जीव बध गर्या बेपार गर्या, कीसान गर्या—एति चार कर्म गर्यानाइ भेष देनि प्रमाण गरि दिइ।
वही पृ० २१५।

मानिया ज म दुलभ है, मिल देह न बारम्बार
तरवर थे फल झडि पडया बहुरि न लाग डार ॥[1]
बडे भाग मानुष तन पावा । सुरदुलभ सब ग्रथन्हि गावा ।[2]

शशिधर की ही तरह ज्ञानदिलदास भी वेद विरोधी नही हैं प्रत्युत वेद विरोधी के लिए भय उपस्थित करने म किसी वदिक ब्राह्मण से पीछे नही रहत । तुलसी और वेद के निन्दक के लिए ज्ञानदिल के अनुसार ब्रह्मलोक का द्वार बन्द हो जाता है वे यमलोक जाते हैं ।

तुलसी र वद को जो निन्दा गछ
ब्रह्मलोक छोडि जेम लोक सछ
ब्रह्म चोला बाट घेर निन्दा भयो
पापी को अजिली भक्तिजन गयो ॥[3]

वेद की निन्दा तो कबीर भी नही करता भले ही वदिकों के प्रति उसकी श्रद्धा न हो ।[4] ज्ञानदिलदास तो वेद पढ़ने के लिए अधिकारी होने और न होने की बात तक म विश्वास करते हैं । कलियुग म शूद्र वेद पढ़ते हैं—यह उन्हे अच्छा नही लगता है [5] कि तु ज मना ब्राह्मण को ब्राह्मण ही मानने के पक्ष म भी वे नही हैं । वेदपाठ मात्र से ही मुक्ति को वे उसी तरह सम्भव नही मानते है जिस तरह कबीरादि स त । हिंसाहारी रा सी कम करने वाले विप्रो को—वदिक कमकाण्ड के नाम पर हिंसा करने वालो को वे पशुधाती मानते हैं

चार वेद परे पनी पार तरदनन
छेदने हिंसाहारो राक्षेसी कम
छेदने भयो भया क्या रह्यो धम
पसुधातो जति छन ब्रह्मा का जातो
गुहेला का फुल विलाउनि का पातो
ब्रह्मा हु भया ब्रह्म न चिन्या
बलि बाख्री कताछन पसि घोजी क्रिया ।[6]

ज्ञानदिलदास न धम के नाम पर दिखाय जाने वाले अनेक आडम्बरो के प्रीडास्पद गाता और सिद्धा म प्रभावित तथा बलिमासादि पूजा म विश्वास

१ कबीर हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २१, दो० ३४ ।
२ रा० च० मा० उत्तर काण्ड (गो० प्रे० गो० बारहवां स०, २०१८), पृ० ९११ ।
३ ज्ञो० स० प० र सा०, पृ० ३४७ ।
४ कबीर प्र० पृ० ६५ प० स० ६२ ।
५ ज्ञो० स० प० र सा०, पृ० ३३४ ।
६ वही पृ० ३४५ ।

रखने वाले नेपाल की स्थिति को कटु आलोचक की दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है। नेपाल के समस्त सन्तो मे ज्ञानदिलदास का व्यक्तित्व सर्वाधिक तीखा है। पूजा के नाम पर पशुओं की नृशंस हत्या कराने वाले नेपाली पुरोहित को वे अच्छी दृष्टि से नही देखते हैं। रात म गाय मारन और दिन म रोजा करने वाले ढोगियो की खिल्ली उडाने वाले कबीर[1] की तरह ज्ञानदिल प्रात काल उठकर समाधि करने के पश्चात पशुघात करने वालो की खबर लिए बिना नही रहते

छेन्ने धागड को पकाइ हालु रक्ती,
तस्त कन भनु यमराज को भक्ति।
प्रात उठी समाधी पसुघात पूजा,
बइकुण्ट जान लाग्या आधा बाटो कूजा।[2]

नेपाली पुरोहितो का कैसा जीता जागता चित्र ज्ञानदिलदास निम्नलिखित पंक्तियो मे खीचता है

भासामा बायो छन धोति पाटा फेछन
सुभन बुझ उसे बक्वात गछन।[3]

अपने मन स य पुरोहित कितने ही वाग्मी तथा पडितमानी क्यो न हो ज्ञानदिलदास को सूझ-बूझ रहित लगते हैं। कबीर भी यही कहता रहा कि पोथी पढकर कोई पण्डित नही होता है।[4] बाहरी वेष भूषा से कोई भक्त या साधु नही बन जाता।[5] ज्ञानदिलदास वर्णाश्रम धर्म को मानते हैं। अन्य सतो की भाति वे जाति निरपेक्ष मनुष्यता को स्वीकार नही करते हैं। उनके सम्प्रदाय के आदि गुरु शशिधर पर भारतीय सन्तो का इतना प्रभाव है कि उस भेदभाव भरा नेपाली समाज भी नही हटा सका, किन्तु ज्ञानदिलदास उसी परम्परा मे होते हुए भी ब्राह्मण के विशेषाधिकारो को अमान्य नही ठहराता है। वर्ण विभाग को ज्ञानदिलदास कर्मानुसार उसी तरह मानता है जसे पुराण।

ब्रह्म छेत्री बसे सुद्र सब थिया ताहा
आपनु आपनु कम बाडी दिया ताहा
ब्रह्मलाई समाधी छेत्रीलाई नीआ
गोठ र घर बेपार बसे लाई दीया

---

१ कबीर वचनावली पृ० २३६, दो० स० १७६।
२ जो० स० प० र सा०, पृ० ३४५।
३ वही, पृ० ३४५।
४ क० व०, पृ० १३४।
५ वही, पृ० १०१।

तीन जात को सेवा सुद्र ले गनु
बाहीये को कम गरी सबले छ तनु।[1]

वेद पढने का अधिकार ज्ञानदिल ब्राह्मण को ही देता है। शूद्र को पुराण पद्धति पर इस अधिकार से वंचित करता है।[2] वह कलियुग की निन्दा इसलिए करता है कि इसमें शूद्र वेदाध्ययन करने लगे हैं और ब्राह्मण हिंसाहारी हो गये हैं।

ब्रह्मा को वेद सुद्र पर्या छन
हिंसाहारी ब्रह्म जो छन योज गरद मन[3]

ब्राह्मण को दान देना वे परपद का मार्गावलम्बन मानते हैं

विप्र भिखारी दुखितलाई दान
परपद को राहा यस गरि जान।[4]

ब्राह्मण भी वे उसी को मानते हैं जो वेदाध्ययन-कर्ता हो। हलवाहक ब्राह्मण को वे कलियुगी समझते हैं

कलि का ब्रह्म जति सतमा गिर्या का
दस काम छोडी कोप मा फिर्या का
ब्रह्म चोला जति छन बडो निन्दा गर्या
हलो छ पियारो वेद न पर्या।[5]
कांधमा हलो जुवा गोरु छन काहीं
बडा हुँ हामी भन्छन नरलोक माहीं॥[6]

इस तरह वे अप्रत्यक्ष रूप से जात्यभिमानी हल न चलाने वाले नेपाल स्थित 'कुमइया' ब्राह्मणों का समर्थन करते हैं जो हिन्दी सन्तपरम्परा के विचारों के प्रतिकूल है

भक्ति का अन्य सन्तों की ही भाँति ज्ञानदिल भी परम साधन मानते हैं। वे भक्तों की निन्दा न करने का उपदेश देते हैं। उनके विचारानुसार समस्त कर्मकाण्डों से वह गति सम्भव नहीं जो भक्तिलभ्य है

भक्ति का देउ प्रापनु गति पाउला
जेम लोक छाडी सतलोक जाउला

---

१ ज्ञो० स० प० र सा०, पृ० ३४६ (उदयलहरी)।
२ स्त्री शूद्र द्विज-बन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा श्रीमद्भागवत प्र० ४, श्लोक २५।
३ ज्ञो० स० प० र सा० पृ० ३४४।
४ वही प० ३४०।
५ वही प० ३६०।
६ वही पृ० ३६१।

भक्ति जन को निन्दा कसले न गनु
सब ले पर्या छ जेमलोक तनु।[1]

भक्त बनने के लिए कर्मों के परित्याग की बात नानन्दिलदास नहीं कहते हैं बल्कि कबीर की भांति उन कर्मों को और भी दढना से करने का उपदेश देते हैं जिनमे ज्ञान और भक्ति का विकास हो

भक्ति जन भया का नित्ते कम गर्या
जेमलोक छाडी सतलोक सर्या।[2]

परमतत्व को खोजने के लिए नाना आडम्बर रचन तथा इधर उधर भटकने के प्रयास को नानदिलदास भी सामान्य सत विश्वासानुसार निरर्थक मानत हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि नर मे ही नारायण है

नर मा नारायण छ थला मा जल छ
पाप को अग्री ससारमा बल्छ।[3]

अलग अगल रास्ते बनाने और नाना वचना म फसने वाले—नानदिल के अनुसार—उस तत्व को समझते ही नहीं। पाठ पूजा आदि बाह्य विधान उसे प्राप्त करने के साधन नहीं हैं। कबीर का साहब तिल ओले मिल जाता है।[4] वह उसके समीप ही है। उसकी वस्ती मवास' म है।[5] नानदिल का गुरु शशिधर नाना पन्था का भूलभुलैया मानता है। नानदिलदास भी अपने अग्रणी सन्तो के विश्वास को दुहराते हुए कहते हैं कि बाह्य विधाना से उस परमतत्व का दर्शन नहीं हो सकता है। सूक्ष्म विचार की आवश्यकता है। वे पण्डितो की इस बात का उपहास करते हैं कि वे समीप की वस्तु को दूरस्थ समझते हैं

पण्डित मनिजन घेर बाढा लाउ छन।
नेरा को चीज दूर बताउँ छन।[6]
पाठ पूजा न्यास सदा दिन गछन।
सुस्ता विचार विना को काहाँ तछन॥[7]

नानदिलदास ज्योतिषिया की आलोचना करने म बडा रस लेते हैं।

---

१ जो० स० प० र सा० पृ० ३४७।
२ वही, पृ० ३५६।
३ वही पृ० ३४०।
४ कबीर का रहस्यवाद रामकुमार वर्मा, पृ० १५७, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद (सन १९६१)।
५ कबीर वचनावली पृ० १८० पद २७।
६ जो० स० प० र सा०, पृ० ३२४।
७ वही, पृ० ३२५।

नेपाली जनता म तथाकथित ज्योतिषियों की भविष्यवक्तृता को ज्ञानदिल न खूब देखा भाला होगा और यह अनुभव किया कि किस तरह यह ज्योतिषी मनुष्य को मिथ्या आशा म चक्कर भटकाता है उसे भ्रममय बनाकर स्वयं पैसे ठगता है और प्रत्येक क्रिया की निर्विघ्न परिसमाप्ति क लिए मुहूर्त निकालने पर काम बना तो सारा श्रेय अपने आप लेता काम न बना तो किसी दूसरे व्यवधान की कल्पना करता है। और तो और मोनाथ किए जाने वाले कर्मों के प्रारम्भ करने के लिए भी ज्योतिषी से विचार करवाना—इस तरह मन छोडकर भगवान मात्र का ध्यान करना ज्ञानदिल को मिथ्या प्रपच लगा। जिस तरह कबीर कहता है कि भक्ति के लिए तिथिवार पूछना सच्चे साधक का काम नहीं है[1] उसी तरह ज्ञानदिल भी उसके लिए ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाना अच्छा नहीं मानते हैं। ससार को बनाने के लिए कोई मुहूर्त निकालता है या निकाल स। उसे मिटाने के लिए उसकी क्या आवश्यकता है ?

> ज्योतिष ले मुक्ति कसै हुन्यो काँहाँ
> सहचारी न सक्नु चार जुग माँहा
> ग्रहहरु तारा छन थाँड गरि थोक
> सुद्धि बुद्धि न पाया भक्ति जन लाइ सोच।[2]

उनका दृढ़ विश्वास है

> चतुराइले न हुन्या मिल्द न चाहा
> भक्ति जन ले सोयो अजम्य को राहा
> धन्ने हो ज्योतिषी तिनलोक देयछन
> जेम का पुतले घुमि घुमि हेक छन।[3]

ज्ञानदिलदास का आलोच्य ज्योतिषी या पण्डित कबीर के पण्डित जसा ही है और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों म— वह पत्राधारी अधकचरा ब्राह्मण है जो ब्राह्मण मत के अत्यन्त निचले स्तर का नेता है—बहुत भदना आदमी है स्वर्ग और नरक के सिवा और कुछ जानता ही नहीं जातपाँत और छुआछूत का अध उपासक है तीर्थस्नान व्रत उपवास का ठूठ समर्थक है—तत्त्वज्ञानहीन, आत्मविचार विवर्जित विवेक बुद्धिहीन अटट गँवार।[4] यथायत तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण पण्डित तथा शास्त्र ज्ञाता की तो ज्ञानदिलदास प्रशंसा करते हैं।

---

१ सत्य कबीर की साखी युगलानन्दजी, पृ० ४६।
२ जो० स० प० र सा० पृ० ३५६।
३ वही, प० ३५६।
४ कबीर प० १३१ ३२।

कुडलिनी योग म ज्ञानदिलदास का पूरा विश्वास है। अपने हिन्दी भजनो म हठयोग की वे ही बातें वे भी बार-बार कहते हैं जो कबीरादि भारतीय तथा शशिधरादि नेपालीय हिन्दी सन्तो ने कही। वे सुषुम्ना द्वारा गगनमण्डल म पहुचकर अनहद नाद का सुनना साधक का चरम लक्ष्य मानते हैं। नेपाली रचना उदयलहरी म व खण्डन-मण्डन पर अधिक उतर आए हैं, फिर भी उनके योग विषयक महत्त्वपूर्ण विचार स्थान-स्थान पर देखे जाते हैं। कबीर का सहज माग ज्ञानदिलदास का ज्ञात है

साधु को साधना सहज सीतलो।[1]
सहज आनन्दमा सुरत लगाउ। कमल आसन बांधी सुरत रह्या को॥[2]

अनहद की सूक्ष्म डोरी से मन प्राण को खींचकर धूनी जगाकर ही ज्ञानदिल के अनुसार मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

अनहद को पलातो सुक्ष्म डोरि पाया
मन प्राण पची धुनि जगाया
मुक्ति पदारथ तहि नेर पाया।[3]

इडा पिंगला तथा सुषुम्ना म नदी भावना योग विधानानुसार ज्ञानदिलदास म भी पाई जाती है। सुमेरु पर स्थित सत्यलोक के सुन्दर मन्दिर म राम क अकल होने की बात भी अन्य सन्तो स मिलती है।

ईडा र पिंगला सुस्त बहछन
सुस्मना को भेद विरल कहछन
सुमेरु का उपर सतलोक धाम
सुन्दर महल मा अकल राम॥[4]

ज्ञानदिलदास नेपाली सन्त साहित्य म वही स्थान रखते हैं जो कबीर का हिन्दी साहित्य म है। खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति भी उनकी कबीर जैसी है। हाँ, कबीर निश्चित विचारधारा को लेकर चलता है। ज्ञानदिलदास परम्परा स जोसमनी होने हुए भी किसी सुनिश्चित धारणा को नहीं रखते हैं। सुधार व चाहते हैं किन्तु उनके विचार परिस्थितियों के अनुसार नए-नए रूप धारण कर लेते हैं। अवश्य ही अक्खड़पन ज्ञानदिलदास म भी वही है जो कबीर म पाया गया है भले ही उसकी मात्रा कम हो। कबीर के मन म हिन्दू मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं है। व दोनों क समान नेता हैं किन्तु ज्ञानदिलदास सन्त

---

१ जो० स० पृ० र सा० प० ३२८।
२ वही प० ३२८।
३ उदयलहरी जो० स० प० र सा०, पृ० ३२६।
४ वही, प० ३३०।

सम्प्रदाय म दीक्षित होते हुए भी हिन्दू हैं। अपने ढग का हिन्दुत्व ही उनका स त त्व है। समस्त सन्त साहित्य म कबीर को श्रद्धा की दष्टि स देखा जाता है। जोस्मनी सम्प्रदाय के प्रमुख प्रचारक शशिधर कबीर के विचारो को ग्रहण कर उसके प्रति अपना सम्मान दिखाते है। ज्ञानदिलदास भी शशिधर के माध्यम से अथवा स्वय रचनाएँ पढकर सीधे प्रभाव म आकर कबीर के विचारो को कही नेपाली म तो कही हिन्दी म अपनी छाप लगाकर पाठका के सम्मुख रखत हैं कि तु किसी कबीरपथी को कबीर बनाकर उपदेश देते हुए भी उन्हे हम पाते है।[1] इससे सिद्ध है कि व कबीर के तो भक्त है किन्तु कबीर के नाम पर ऊट-पटाँग बातें करने वाले कतिपय तथाकथित कबीरपथियो से उनकी नही बनती है। वे उन्ह पथभ्रष्ट मानत हैं।

ज्ञानदिलदास का व्यक्तित्व और व्यवहार

परम्परावादी जोस्मनी गुरु श्यामदिलदास के शिष्य होन पर भी ज्ञान दिलदास अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को रखते है और जोस्मनी सम्प्रदाय म ही नही समस्त सन्त परम्परा म व कुछ ऐसी बातो को अपनाते हैं जिससे उनके पहल कुछ और विवेचना को जोडन की अपेक्षा है। वे ज्ञानदिलदास हैं जो जोस्मनी सम्प्रदाय को दो भागा म बाटते हैं—१ खागी २ त्यागी। दार्जिलिंग म अपने मत का प्रचार करत हुए ज्ञानदिलदास का जब ईसाई पादरियो ने विरोध किया और पादरी रवरेण्ड ए० टनबुल न उन्ह दार्जिलिंग छोडकर जान को कहा तो निर्भीक और समथ ज्ञानदिल न जाने से पहले उनसे भेट करनी चाही किन्तु टनबुल न उपेक्षापूवक कहला भेजा कि यदि ज्ञानदिल उनका चेला बन जाय तो भेंट हो सकती है। इस पर ज्ञानदिल ने टनबुल को शास्त्राथ के लिए ललकारा। व तयार हो गय। तय हुआ कि जो हारेगा उसके धमग्रन्थ जला दिये जायेंगे। शास्त्राथ हुआ। पादरी हार गये और बाइबिल को जलाया गया। ज्ञानदिल ने उसकी राख की गोलियाँ बनाकर अपने और अपने शिष्यो के गले म कठी बाँधी। जिन्होंने कठी पहनी व खागी कहलाय जो इस राख की कठी को धारण न कर पाय व त्यागी हुए।[2] त्यागी जोस्मनी तुलसी की कठी पहनत रह जबकि खागी जोस्मनिया न भस्मकठी धारण करना प्रारम्भ किया। दादू व ब्रह्म सम्प्रदाय की भ्रमणशील शाखा खाकी कहलाई जाती है।[3] यह हो सकता है कि ज्ञानदिल व उपर उक्त घटना स पूर्व किसी खाकी साधु का प्रभाव पडा हो और उक्त

---

१ जो० स० प० र सा० प० ३७४ ७८ (रामवाणी ७ और ८)।

२ द्रष्टव्य—जो० स० प० र सा०, प० १०१ स १०३ तक।

३ हिन्दी सन्त साहित्य त्रिलोकी नारायण दीक्षित, प० ६६।

घटना ने उस प्रभाव को भस्म-कंठी धारण करवाकर कार्य रूप प्रदान किया हो।

सिक्कम जाकर नानदिलदास ने गेलिंग और सामदोंग में धाम स्थापित किये। च्यासुंग इस्टेट के मालिक जेरुग देवान ने जो कट्टर बौद्ध था देखा कि उनके इलाके में एक विधर्मी अपने मत का प्रचार कर रहा है किन्तु नानदिल के प्रभाव से वह बहुत दिनों तक किंकर्तव्यविमूढ़ बना रहा। उसकी अवस्था को श्री जनकलालजी इस तरह चित्रित करते हैं

नानदिल को पृष्ठभूमि जनता को श्रद्धामा अडेको थियो अन उनी सहसा नानदिललाई आफ्नू इलाकामा प्रचारकार्यबाट वंचित गराउन असमर्थ थिए। उनका मनमा नानदिल को प्रचारकार्य प्रति अनेक तर्क वितर्क हुन थाल्यो। यस्तो विरोधी प्रभाव उनका मन मा भये पनि उनी किंकर्तव्यविमूढ़ भएर बसेका थिए।'[1]

अन्त में नामक जेरुग देवान वहां पहुंचता है किन्तु नानदिलदास अपने आसन से उठे बिना ही उसे बैठने का संकेत करते हैं। इस पर शक्ति फुफकार उठती है और अकिंचन साधु का मठ सैनिकों द्वारा ध्वस्त कर दिया जाता है किन्तु नानदिल के प्रभाव को जनता के हृदय से मिटाने में वह असमर्थ सिद्ध होती है। यहां तक कि वह नानदिल के भौतिक अस्तित्व तक का कुछ बिगाड़ नहीं कर पाती है। अनेक साधुओं और जनता की उपस्थिति देखकर नानदिल को छूने का भी साहस शासक जेरुग देवान कर नहीं पाता है।[2]

एक बार जब योगध्यान टूटने पर नानदिल ने अपने सामने एक संन्यासी को देखा तो उन्होंने उसके चरण धोकर चरणामृत लिया जिसे देखकर गाँव के कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने नानदिल को बहिष्कृत करने की धमकी दी। उन्हें विप्र-वंशज नानदिल का एक अब्राह्मण के चरण धोने में सारे ब्राह्मणों का अपमान प्रतीत हुआ। नानदिल इस धमकी से कब डरने वाले थे। उन्होंने इस बात का विरोध करने का निराला ढंग निकाला। वे दिनदहाड़े हाथ में मसाल लेकर सिंगला बाजार में घूमने लगे। पूछने पर उन्होंने कहा कि मेरी जाति खो गई है उसे खोज रहा हूँ। इससे बहुत से अन्य लोग उनके चेले बन गए।

इलाम के 'बड़ा हाकिम' ने ब्राह्मणों के षडयन्त्र के परिणामस्वरूप नानदिलदास को कैद कर लिया किन्तु प्रधान मन्त्री रणोद्दीप सिंह ने अपने गुरु को तुरन्त छोड़ देने की आज्ञा प्रसारित की। बड़ा हाकिम की कुछ नहीं चली। नेपाल का खूंखार प्रधान मन्त्री जंगबहादुर भी नानदिल से प्रभावित रहा। उसने नानदिलदास को शान्ति का प्रतीक श्वेत पताका तथा प्रचार का प्रतीक नगाड़ा

---

१ जो० स० ए० र सा०, पृ १०६।

२ वही, पृ० १०८, ११०।

प्रदान किया जिन्हें लेकर ज्ञानदिलदास सं० १६३३ में मागनाथ मार्ग से प्रचार के लिए काठमांडू से निकल पड़े।[1]

उपर्युक्त घटनाओं से ज्ञानदिलदास के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व का ही परिचय नहीं मिलता प्रत्युत यह भी स्पष्ट होता है कि वे वस्तुतः हिन्दू धर्म के सुधारक थे। बौद्ध जेठा देवान उन्हें विधर्मी मानकर विरोधी बन जाता है। विरोधी तो उनके ब्राह्मण भी दिखाई देते हैं किन्तु वे ही जो ढोंगी हैं, मांसाहारी हैं, ब्राह्मण होकर भी वेद नहीं पढ़ते हैं और पढ़ते भी हैं तो समझते नहीं हैं जिनकी इसीलिए वे कटु आलोचना करते हैं। ज्ञानदिलदास स्वयं उपाध्याय ब्राह्मण थे। जब उन्हें ब्राह्मणों ने बहिष्कृत करना चाहा तब बहिष्कार को निष्क्रिय बनाने के लिए उन्होंने पूर्वोक्त युक्ति निकाली। ब्राह्मण बने रहने के मोह को वे छोड़ नहीं सके। अन्य सन्तों के विचारों के... को वामन की सृष्टि के व्यापक सिद्धान्त को ज्ञानदिल निश्छल भाव से अंगीकार न कर सके। ज्ञानदिलदास आलोचना करते हैं उस ब्राह्मण की जो हल वाहता है न कि उस ब्राह्मण की जो अपने को बड़ा बनाने के लिए हल न चलाने के कारण सन्त ज्ञानदिल की दृष्टि में आलोच्य बनता है।[2] टक्बुल के साथ शास्त्रार्थ में जीतने पर 'बाइबिल' जलाई गई। यदि ज्ञानदिलदास हार जाते तो उनका कौन सा धर्मग्रंथ था जो जलाया जाता? वेद पुराणों को ही सम्भवतः ज्ञानदिल अपने धर्मग्रंथ मानते होंगे जो उनके जीत जाने के कारण जलाये जाने से बच गये। ब्राह्म सन्तमत में तो पोथियों की महत्ता तब थी ही नहीं जिन्हें बचाने के लिए ज्ञानदिल प्रयत्न करते। उनके शिष्य स्वामी रामदास तक ने वेदादि को मिथ्या प्रमाणित करने का प्रयत्न किया, इस बात का उल्लेख मिलता है।[3]

किंवदन्तियाँ बताती हैं कि ज्ञानदिलदास होम भी करते रहे। धूनी तो वे रमाते ही थे। उन्होंने मूर्तिपूजा का आम प्रचलन किया।[4] रुमजाटार मठ के सम्बन्ध में जो राजीनामा पत्र मिलता है उसमें ज्ञानदिलदास के लड़के रविदिलदास द्वारा मन्दिर में नारायण की स्थापना के आयोजन का उल्लेख हुआ है।[5] रविदास का लड़का तथा चेला दिलराम शालिग्राम की पूजा किया करता

१ जो० स० प० र सा० जनकलाल, पृ० ६३।

२ ज्ञा० प्र० रागआसा पद १४।

३ जो० स० प० र सा०, परिशिष्ट ११ पृ० ४६७।

४ वही पृ० ४८४।

५ वही परिशिष्ट, पृ० ४६६ में उद्धृत पत्र से "गुरु रविदिल ले म बस मित्र नारायण स्थापना गछु मन्दिर बणाउछु कागज पत्र गरि देऊ मंजूर छ छ न भनि हामिलाइ भन्नु हुदा हाम्रो चित्त बुझ्यो।

था।[1] खागी सम्प्रदाय मे अजपाजाप के अतिरिक्त ढोल, सितार आदि वाद्यो के साथ हरिकीतन प्रारम्भ हुआ।[2] नानदिल का देवतामण्डल भी सनातनी हिदुआ का-सा है। कबीर का सवस्व सत्पुरुष है और उसका पयप्रदशक गुरु परम श्रद्धेय ब्रह्म रूप है। नागिघर भी गुरु को ब्रह्मा का अवतार मानता है और देवी-देवताओ म से विष्णु और शिव मे उसकी भक्ति है। नानदिल का देवमण्डल वहत्तर है। गुरु के अतिरिक्त बुद्धिदाता गणपति गायत्री सावित्री तथा सरस्वती माता उसके श्रद्धा भाजन हैं

श्री गुरु गणपति बुद्धि का दाता
गायत्री सावित्री सरस्वती माता।[3]

नानदिलदास हिन्दुओं के विश्वासानुसार ब्रह्मा विष्णु और शिव को क्रमश उत्पादक पालक सहारक मानते हैं

ब्रह्मालाई उत्पती विष्णुलाई रच्छे
सिवलाई दिया सदा सब भच्छे
हुकुम्भयो धनि को जगतमा आई
रजा ई चलाया माया अधिकाई।[4]

जहाँ सन्ता ने—स्वय शशिघर न—माया की निदा की है वहाँ नानदिलदास उसे जगदम्बा कहकर धयवाद देते हैं

धये हुन माता जगदम्बि माई।[5]

श्री जनकलालजी के अनुसार नानदिलदास मास भी खाते रहे। प्रत्यक्ष रूप स वे मासाहारियो की निदा करते हैं। कही ऐसा निश्चित प्रमाण उनकी कृतियों से नही मिलता है कि व मास भक्षण करते थे। श्री जनकलालजी किसी कबीर (कबीरपथी) से कहे नानदिलदास के निम्नलिखित पद के अनुसार उन्हें मासाहारी मानते हैं। इस कथन को वे खागी जोसमनिया के मास भक्षण को पहनाया गया आध्यात्मिक बाना किंवा बहाना समझते हैं

साधु कबीर अगम अम्बीर मैं तो हूँ मड स भोखारिआ
मड स बिना हड्ड स चारै जुग फिरता है मैं तो मड स भिखारिआ ॥साधु०॥
कौने नाम की बखाडिया सन्तु कौने नाम कि सूतदीयाआ
कौने नाम की थम्बा गडाइ कौना पग से छेदनिआ ॥साधु०॥

---

१ जो० स० प० र सा०, पृ० ४११।
२ वही, पृ० ४८७।
३ वही, प० ३२२।
४ वही पृ० ३४१।
५ वही, पृ० ३४२।

शशिधर के प्रति असीम श्रद्धा रखते हुए भी वे लकीर के फकीर नहीं बनते हैं। वस्तुतः सम्प्रदाय में जो ढोंग आ गया था उसे दूर करने का उन्होंने सफल प्रयत्न किया। सन्त अगमदिलदास ने जोस्मनी सम्प्रदाय में प्रवेश पाने के लिए शुल्क निर्धारित कर दिया था। वे गुरुमुख होने वाले शिष्य से ५० रु०, 'गुरुमुखी' से २५ रु० तथा गद्दी में ५ रुपये शुल्क लिया करते थे। इस अनाचार की ओर ज्ञानदिलदास बड़ी तीखी दृष्टि से देखते हुए कहते हैं

आफ्नु कर्म छोडी ब्रह्मज्ञान लीयो
ब्रह्मज्ञान लियो र मद घेर पीयो
जगतमा ब्रह्मज्ञान सस्तो गरिदीयो
चार जात को अंशि पुग्यो धनी का ढोकामा
ब्रह्मज्ञान दि सक्यो धनका पोका मा
सुद्र साधु जनि छन घेर धन भएछन
कण्ठी धार गर्दा पचास रुपञा गएछन।[1]

सन्त ज्ञानदिलदास ने जोस्मनी सम्प्रदाय को नेपाली जनता के उपयुक्त बनाने का प्रयत्न किया और नेपाली काव्य साहित्य को अपनी कृति उदय लहरी द्वारा एक नई दिशा दिखाई। नेपाली-सन्त साहित्य में उनका नाम सर्वप्रथम निर्माता के रूप में विद्यमान रहेगा।

भारतीय सन्तों और नेपाली जोस्मनियों के काव्यशिल्प की तुलना

जोस्मनी सन्तों की काव्य भाषा हिंदी है। वही हिंदी जो कबीरादि भारतीय सन्तों की भाषा है जिसके पहले सधुक्कड़ी विशेषण लगाया जाता है। नेपाली होने के नाते ये सन्त जब गद्य में कुछ लिखने हैं तो नेपाली भाषा में लिखते हैं। पद्य रचना में इन्होंने हिंदी ही अपनाई है। अभयानन्द के दो चार भजन नेवारी में भी पाए गये हैं परन्तु उनकी अधिकांश रचनाएँ हिन्दी में लिखी हुई मिलती हैं। कहीं-कहीं अगमदिलदास की रचनाओं में नेपाली का पुट है। केवल ज्ञानदिलदास एक ऐसे जोस्मनी सन्त कवि हैं जिन्होंने अपनी उदय लहरी नेपाली भाषा में लिखी। इन्होंने हिन्दी में भी लिखा। उनके 'भजन संग्रह' के प्रथम दो भजनों को छोड़कर शेष सभी भजनों की भाषा हिन्दी है। जोस्मनी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक शशिधर ने जहाँ गद्य में निर्देश दिए हैं वहाँ वे नेपाली का प्रयोग करते हैं—जैसे

'गुन भाव कर्म को गती गरि अर्थ लागुन जान्छ र वस्त निगुन बानी क पनी। गुन भाव कर्म को गती गरि अर्थ लाग न जान्छ र अभिप्राय पाइद न। मन लाई स्थिर पढी विवेक पार्दछ र सतगुरु न कह्याको तत्वरूपी बानी का ॥

१ जो० स० प० र सा० पृ० ३५१।

जोन समय ते सतगुरु ले भाया का छन् ।। ररमनी ने प्रकाश हुन्छ ।। माग्मा घीप्ठा छोडी मनका लहरी सग मिनेर । ई द्रवमा जीवन बीचमा रग सीन भुली जाछ । जती मन माउछ सनी नालर स्वगी दीन्छ । जन्म सागर दगी बाहीर भाया भो पानी का विन्दु कही थायुने ।। केही धर्नीने कही गीन स्वगी दीन्छ । पानी पानीमा मिली राख्यो भन्या सागरेमा मील्दछ सागरे हो । सागर रूपी सतगुरु हुन । विन्दु जस्ता जीव हो बुझ्नु ।।[1]

यही शशिधर कविता करते समय हिन्दी लिखते हैं । श्री जनकलालजी ने उसे सधुक्कडी नेपाली कहा है जो सवथा अनुपयुक्त है । नेपाली और हिन्दी का घनिष्ठ सम्बन्ध है । वे एक ही परिवार की हैं किन्तु स्वतन्त्र भाषाओं के रूप म हिन्दी और नेपाली की विभाजक रेखा को पहचानना होगा जो सम्बन्ध वाचक अव्ययो, सवनामों तथा क्रियारूपा के साथ वाक्य रचना पर ध्यान देकर सरलतया जानी जा सकती है । निम्नलिखित कतिपय उदाहरणों को एतदर्थ प्रस्तुत किया जाता है

जो मति सांत राप होव निश्चल युग युगान्त
मति सांत रापि हरि मिल लीला येल अनन्त
अक्षर भेद कहि जाउ भाई
बावन रूप येल येलाई
अक्षर बोल अक्षर बुझि नि अक्षर अक्षर गाई
शब्द ताला शब्द कुची शब्द पोलि भेद पाई ।।[2]

—शशिधर

दया क्षमा दील बीच राखो सम करो मान अपमान
बुद्धी बीवेक से पहीचानि राखो तब सुजे ज्ञान बीज्ञान
जोगी सुन्ये समाद सो राखो ध्यान ।।[3]

—मोहमडल

मन राम हरी हरी क्यु नहि बोलता है
हरीनाम स्वहै सब घट भीतर मोह सब जग डुलाता है ।
डुली डुली थकित भयो प्रभु निगुण नाम से मुल्ता है ।।[4]

—प्रमदिल

---

१ जो० स० प० र सा०, पृ० २०३ (बराग्याम्बर) ।

२ जो० स० प० र सा०, प० १८७ ।

३ वही प० २४६ ।

४ वही, प० २४८ ।

जपे देवी भरवो गोरषनाथ दरसन दे हो भवानी ये
प्रथम देवी के उत्पन भेइ जनम भ ये कलासय
जोती जगमग चहूवर देवी के चौसठी जोगीनी माई के।[1]

—निर्वाणानन्द

माया से सब जगत पडा है सुन हो चित्त लगाई
झुठी जग को साच कराया साचा ब्रह्म छपाया
झुठी से सब जगत पत्याई साचा स्वप्न न पाई।[2]

—अभयानन्द

कबहु न गयो मेरो विषये को बानी
मट्टी के तन मे पवन के पानी
उड़ी चले पुरुष मम न जानी ॥[3]

—श्यामदिलदास

उत्तम जन्म मरण सो होई, फेरि न मिले यो जिन्दगी
करीले सुमिरण नीज समाधि जपी ले नाम हरी को।[4]

—अच्युत दिलदास

विषया की स्याली में सत्यको मोठाई
श्रद्धा की बाहू विवेक सो चढाउ ॥[5] —सतदिलदास

जपिये सतनाम अधारा हो जग में
धम की ढाल नाम तरवार
टुक टुक करि दे हो भ्रम की फाँसी ॥[6]

—अगमदिलदास

माता पीता बधु भाई चार दीन की सगत साथी
जब जेम आइके पकड लियो है पीटन लागे तब छाती ॥[7]

—धर्मदिलदास

जोस्मनियों की भाषा म हिन्दी की बोलियों के शब्द प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त हुए हैं और उसकी मूल प्रकृति खडी बोली है। सुसमृद्ध भाषा मे साहित्यिक विलक्षणताओं का प्रयोग कर काव्य रचना न तो सन्तों का उद्देश्य

१ जो० स० प० र सा०, पृ० २५०।
२ वही, प० २५७।
३ वही, प० २८५।
४ वही, प० २८६।
५ वही, पृ० २६५।
६ वही पृ० ३१०।
७ वही, पृ० २६२।

रहा और न वसा करना ही उन्हें भाता था। कविता करना उनका काय नहीं देखा जाता है। वे अपने विचार व्यक्त करना चाहते थे और समय शली में अपनी बात कहने की प्रवत्ति ने ही उनमें कविता करवाई। कबीर अपने पाठकों को सम्बोधित करता हुआ लिखता है

तुम जिनि जानो गीत है यह निज ब्रह्म विचार।
केवल कहि समभाइया आतम साधक सार रे।[1]

सन्तों के काव्यादर्श सम्बन्धी मतों को दिखाते हुए डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं

'सभी सन्तों का काव्यादर्श ब्रह्म का गुण-गान (बाह्याचारों की आलोचना) सहज भाषा सरल शली अलकारादिविहीन जनता में प्रचलित अतिसाधारण छन्द हैं। इन कवियो ने काव्य के महत्त्व को वहीं तक स्वीकार किया है जहाँ तक वह ब्रह्म के स्मरण में सहायक हो सके अन्यथा उसकी कोई उपयोगिता नहीं है।[2]

सहज भावों को जनता के सम्मुख रखना उनकी अभिव्यक्ति का स्वरूप है। अवश्य ही यह ढग—जहाँ वे ब्रह्म और जीव की बातें करते हैं उनके मिलन और विरह के वत्तान्त चित्रित करते हैं वहा विषम और कहीं-कहा अस्वाभाविक बन गया है किन्तु जहा वे लोक-पक्ष को लेकर चलते हैं वहाँ इनकी शली नितान्त अकृत्रिम तथा प्रभावोत्पादक बनी है। ब्रह्म और जीव की बातें आज तक किसी भाषा का कवि सरलतया अकित नहीं कर सका है। उसका कारण है विषय की दुरूहता। ब्रह्म चिन्तन विवेचना के सहज क्षेत्र से बाहर जा पडता है। मन वाणी से अगम्य अगोचर की व्याख्या के लिए प्रतीकात्मक भाषा की शरण में जाना पडता है जिसमें विरोधाभासों के प्राचुर्य से कभी-कभी दुर्बोधता आ ही जाती है। जो ध्यान में भी दुर्लभ हो उसका वर्णन लेखनी या वाणी किस तरह कर सकती है। गूढ व्यग्य तथा लाक्षणिक प्रतीकों द्वारा ही इन कवियो ने उसके स्वरूप को यत्किंचित स्पष्ट करने का प्रयास किया है। श्री प्रभाकर माचवे इस प्रवत्ति के विषय मे ठीक ही लिखते है

सभी निर्गुण सन्त कवियो में केवल अपने गुह्य परम अनुभव को सकेत शली में अभिव्यक्त करने की पद्धति दिखाई देती है बल्कि कुछ जन-साधारण की विचारशली से भिन्न और उल्टी विचित्र और सहसा समझ में न आने वाली भाषा में बात करने का भी उनका ढग होता है।[3]

१ कबीर ग्रन्थावली पृ० ८६।
२ हिन्दी सन्त-साहित्य पृ० १०६ ले० त्रि० ना०, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० दिल्ली स० १९६३ ई०।
३ हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त-काव्य, पृ० १७५।

जहाँ तक प्रसिद्ध अथवा सन्दर्भ-स्पष्टीकृत प्रतीकों का प्रश्न है, सन्तों की बात समझ में आ जाती है। जैसे—

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी। तेरे ही नाल सरोवर पानी।[1]

आलंकारिकों की दृष्टि में यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होगा। अर्थावबोध में पाठक को यहाँ कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती है। किन्तु जहाँ योग की गुत्थियों को सुलझाने के लिए सन्त विरोधमूलक प्रतीकों का काम में लाते हैं वहाँ अर्थ तक पहुँचना सरल नहीं। उदाहरणार्थ—

उलटि गंग समुद्रहि सोख ससि औ सूर गरासि।
नवग्रह मारि रोगिया बठे जल में बिम्ब प्रकास।[2]

ईश्वर को सन्तों ने प्रियतम कन्त, पाहुन पिता, जीव को औरत पूत, हंस मिघ, स्वान बूंद महावन, मछरी, पछी सूवा, चन्दन जगत को चौहट, परदेश, बन साप, माया को बिलाई, ताना गंग, महतारी, कन्या डाइन, छुरी कामिनी सौपिन नागिन, बुढ़िया डाल पवन, उलरो कोडो कामधेनु हस्तिनी, मन को कलाई, गुडी नदी, भूप, बैल और शरीर को माटी का नाट घर, पुरिया, सरवर, गुफा नगर, चरखा, बया, चीर, खेत, दीपक आदि प्रतीकों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। एक ही प्रतीक भिन्न भिन्न स्थलों पर पृथक-पृथक अर्थ के लिए भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे जुलाहा ब्रह्म और जीव दोनों के लिए आया है।[3]

प्रतीकों में यदि अलंकारों को खोजने का प्रयत्न किया जाय तो प्रत्येक वाक्यगत प्रतीक किसी-न किसी अलंकार का रूप धारण किया हुआ सामने आता है। दूसरे शब्दों में प्रायः सभी अलंकार थोड़ी बहुत प्रतीकात्मकता वहन करते ही हैं। उपमा में जो उपमान है वही रूपकातिशयोक्ति में उपमेय के लुप्त होने पर शुद्ध प्रतीक बन जाता है। समासोक्ति में आंशिक प्रतीकात्मकता रहती है। अप्रस्तुत प्रशंसा के सामान्य विशेष भावमूलक तथा कार्यकारण भावमूलक भेदों में प्रतीकात्मकता आधी रहती है क्योंकि वहाँ प्रस्तुताप्रस्तुत का प्राधान्य बराबर रहता है। अन्योक्ति में जो सादृश्यभावमूलक अप्रस्तुत प्रशंसा है, प्रतीकात्मकता बहुतांश में विद्यमान रहती है। वहाँ अभिधीयमान वाच्यार्थ से प्रतीकार्थ प्रधान रहता है।[4] रूपकातिशयोक्ति में प्रतीकात्मकता साम्य पर

१ क० ग्र०, पृ० ६५ पद ६४।

२ वही, पृ० १४१ १४२।

३ जीवात्मा (कबीर बीजक, पृ० ६४), परमात्मा (कबीर बीजक), पृ० २८।

४ अप्रस्तुतप्रशंसायामपि यदा सामान्य विशेष भावान्निमित्तनिमित्ति भावाद्वाभिधीयमानस्याप्रस्तुतस्य प्रतीयमानेन प्रस्तुतेनाभिसम्बन्धस्तदा अभिधीयमान प्रतीयमानयोः सममेव प्राधान्यम्। ध्वन्यालोक स० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ७२।

ही आधारित रहती है भले ही ऊपर से किसी बात में विरोध प्रतीत हो। जब किसी को गधा कहा जाता है तब स्वरूपतः विरोध है, किन्तु रूपकातिशयोक्ति के मूल में यह विरोध नहीं, प्रत्युत उपमेय और उपमान की मूर्खता की समरूपता है।

कबीर जन्म न बाजई टूटि गये सब तार।
जन्त्र विचारा क्या करै चले बजावनहार॥[1]

इसमें वर्णित वाच्यार्थ की संगति के लिए प्रसंग नहीं है किन्तु प्रकरण निरपेक्षता की स्थिति में इन वाच्यार्थ में कोई विरोध नहीं है कि सब तारों के टूट जाने से वाद्य नहीं बज रहा है। बजे भी कैसे ? बजाने वाला ही चल दिया। अवश्य ही कबीर को इस वाच्यार्थ से कुछ नहीं लेना है। उसे तो इस प्रतीकार्थ को व्यक्त करना है कि जीवात्मा से छोड़े गये शरीर में स्वतः कोई क्रिया नहीं होती है। उसके अंगावयव सब ढीले पड़ जाते हैं। ऐसी उक्तियां संत साहित्य में प्रायः मिलती है जो संतों के अभीष्ट अर्थ का ही नहीं अन्योक्ति का रूप धारण कर प्रसंग भेद से अन्यान्य अर्थों का बोध कराती हैं।

जोसमनी संत इसी तरह साम्यमूलक रूपकातिशयोक्तिस्थ प्रतीक को व्यवहृत करता है

श्री गंगाजमुना के निकटमा मालिनी बाग लगाई
क्या कलिला फूल तोडि ल्याई सोहि मालिनि मन पछुताई॥[2]

ज्ञानदिलदास शरीर और जीव के लिए क्रमशः महल और शुक प्रतीकों को प्रयुक्त करता है

महल तो कञ्चि बने रे साधु भाई महलु ता कञ्चि बने रे
कञ्चि महल पर सञ्चि सुगुवा तो उडि उडि चलि जाई।[3]

कबीर ने भी शरीर को माटी का बाट[4] तथा जीव को सूवा[5] माना है।

विरोधमूलक अलंकारों में वाच्य में विरोध रहता है। शुद्ध प्रतीकात्मकता की दृष्टि से देखा जाय तो विरोधमूलक अलंकार जहाँ कथ्य अर्थ प्रसिद्ध होकर सर्वथा नवीन आशय प्रकट कर अधिक प्रतीकात्मक हैं। साम्यमूलक अलंकारों में एक क्षण के लिए वाच्यार्थ में मन बहलाया जा सकता है किन्तु विरोधमूलक अलंकारों में प्रथम क्षण ही वह अपनी प्रसिद्धि से पाठक को झकझोर देता है। समाधान करता है प्रतीकार्थ।

१ क० ग०, पृ० ६६।
२ जो० म० प० र सा०, पृ० २२५।
३ वही पृ० १८३।
४ कबीर बीजक, प० ५।
५. कबीर ग्र०, पृ० २१४।

बूँद जो परी समुद्र मे सो जानत सब कोय।
समुद समाना बुद मे जाने विरला कोय।[1]

जब तक बूद और समुद्र का प्रतीकार्थ ज्ञात न हो तब तक पाठक चैन नही ले सकता है। ज्ञान होते ही चामत्कारिक अभिव्यक्ति से आनन्दित हो उठता है। नेपाली सन्त शशिधर तथा अभयदिलदास की उक्तियाँ कबीर के इस कथन से सर्वथा मिलती हैं

बुदमा समुद्र समाए को काहा बताउँ।
आप आप समाये को कहे नाउँ॥[2] —शशिधर
× × × ×
लहरी मे समुई डुवा (समुद्र ही डूबा)।
आपको समुझ छोता।
जो कोही इस पद को समुझे।
ताकु छुटेगा धोखा रे।[3]—अभयदिलदास या अभयानन्द

विभावनादि विरोधमूलक प्रतीकों का प्रयोग भारतीय तथा नेपाली सभी सन्तों ने किया है। कारण यह है कि गूढ रहस्य सृष्टि को समझाने के लिए प्रकृत सीधा मार्ग असमर्थ सिद्ध होता है। फलत सभी सन्त कभी-कभी प्रतीकाश्रित विरल विभावनादि विरोधमूलक अलंकारों से उसके रहस्य को समझाने का प्रयत्न करते हैं और कभी शुद्ध एवं जटिल प्रतीकात्मक विभावनादि से। तुलसीदास[4] और कबीर[5] की वाणियों में अपनी वाणी मिलाते हुए जोस्मनी सन्त इस तरह आध्यात्मिक रहस्य को समझाते है

बिना आँख देख बिना फल रस पाई।
बिना कान सुने बिना मृदु नाद बजाई।

---

१ कबीर बीजक पृ० ९८।
२ जो० स० प० र सा० जनकलाल, पृ० १७५।
३ वही पृ० २५६।
४ बिनु पग चल सुन बिनु काना। बिनु कर कर्म कर विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ भोगी॥
—रा० च० मा० बा० का०, पृ० १३५।
५ बिन मुख खाइ चरण बिन धाल, बिन जिभ्भा गुण गाव।
—कबीर ग्र०, पृ० १४०।

बिनु चरनन को दहु दिस धाव बिन लोचन जग सूझे।
—कबीर बीजक, ।

हो आधारित रहती है भले ही ऊपर से किसी बात म विरोध प्रतीत हो। जब किसी को 'गधा' कहा जाता है तब स्वरूपत विरोध है किन्तु रूपकातिशयोक्ति के मूल म यह विरोध नही, प्रत्युत उपमेय और उपमान की मूलता की समरूपता है।

कबीर जन्म न बाजई टूटि गये सब तार।
जन्त विचारा क्या कर चले बजावनहार ॥[1]

इसम वर्णित वाच्याथ की सगति के लिए प्रसग नही है किन्तु प्रकरण निरपक्षता की स्थिति म इन वाच्याथ म कोई विरोध नही है कि सब तारो के टूट जाने से वाद्य नही बज रहा है। बज भी कसे ? बजाने वाला ही चल दिया। अवश्य ही कबीर को इस वाच्याथ से कुछ नही लेना है। उस तो इस प्रतीकाथ को व्यक्त करना है कि जीवात्मा स छोडे गय शरीर म स्वत कोई क्रिया नही होती है। उसके अगावयव सब ढीले पड जाते है। ऐसी उक्तियाँ सन्त साहित्य म प्राय मिलती है जो सन्तो के अभीष्ट अथ का ही नही, अन्योक्ति का रूप धारण कर प्रसग भेद स अन्यान्य अर्थों का बोध कराती हैं।

जोसमनी सन्त इसी तरह साम्यमूलक रूपकातिशयोक्तिस्थ प्रतीक को व्यवहृत करता है

श्री गगाजमुना के निकटम मालिनी बाग लगाई
कचा कलिला फूल तोडि ल्याई सोहि मालिनि मन पछुताई ॥[2]

ज्ञानदिलदास शरीर और जीव के लिए क्रमश महल और शुक प्रतीकों को प्रयुक्त करता है

महल तो कच्चि बने रे साधु भाई महलु ता कच्चि बने रे
कच्चि महल पर सच्चि सुगुवा तो उडि उडि चलि जाई।[3]

कबीर ने भी शरीर को माटी का कोट[4] तथा जीव को सूवा[5] माना है।

विरोधमूलक अलकारो म वाच्य म विरोध रहता है। शुद्ध प्रतीकात्मकता की दृष्टि से देखा जाय तो विरोधमूलक अलकार जहाँ वण्य अथ असिद्ध होकर सवथा नवीन अन्याय प्रकट करे अधिक प्रतीकात्मक हैं। साम्यमूलक अलकारो मे एक क्षण के लिए वाच्याथ से मन बहलाया जा सकता है किन्तु विरोधमूलक अलकारो म प्रथम क्षण ही वह अपनी असिद्धि से पाठक को झकझोर देता है। समाधान करता है प्रतीकाथ।

१ क० ग्र०, पृ० ६६।
२ जो० स० प० र सा०, पृ० २२५।
३ वही पृ० १८७।
४ कबीर बीजक प० ५।
५ कबीर ग्र०, पृ० २१४।

बूँद जो परी समुद्र मे सो जानत सब कोय।
समुद समाना बुद मे जाने बिरला कोय।[1]

जब तक बूद और समुद्र का प्रतीकार्थ ज्ञात न हो तब तक पाठक चन नही ले सकता है। ज्ञान होते ही चामत्कारिक अभिव्यक्ति स आनन्दित हो उठता है। नेपाली सन्त शशिधर तथा अभयदिलदास की उक्तियाँ कबीर के इस कथन से सवथा मिलती हैं

बुदमा समुद्र समाए को काहा बताउँ।
आप आप समाये को कहे नाउँ॥[2] —शशिधर
× × × ×
लहरी मे समुई डुवा (समुद्र ही डूबा)।
आपको समुझ छोता।
जो कोही इस पद को समुझे।
ताकु छुटेगा धोखा रे।[3]—अभयदिलदास या अभयानन्द

विभावनादि विरोधमूलक प्रतीका का प्रयाग भारतीय तथा नेपाली सभी सन्ता ने किया है। कारण यह है कि गूढ रहस्य सृष्टि को समझाने के लिए प्रकृत सीधा माग असमथ सिद्ध होता है। फलत सभी सन्त कभी-कभी प्रतीकाश्रित विरल विभावनादि विराधमूलक अलकारा से उसके रहस्य को समझाने का प्रयत्न करते हैं और कभी शुद्ध एव जटिल प्रतीकात्मक विभावनादि से। तुलसीदास[4] और कबीर[5] की वाणियो म अपनी वाणी मिलाते हुए जोस्मनी सन्त इस तरह आध्यात्मिक रहस्य को समझाते हैं

बिना आँप देप बिना फल रस पाई।
बिना कान सूने बिना मुदू नाद बजाई।

---

१ कबीर बीजक पृ० ६८।

२ जो० स० प० र सा० जनकलाल पृ० १७५।

३ वही पृ० २५६।

४ बिनु पगु चल सुन बिनु काना। बिनु कर कम कर विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड भोगी॥
—रा० च० मा० बा० का०, पृ० १३५।

५ बिन मुख खाइ चरण बिन चाल, बिन जिभ्या गुण गाव।
—कबीर ग्र०, पृ० १४०।

बिनु चरनन को दहु दिस धाव बिन लोचन जग सूझे।
—कबीर बीजक, पृ० २८।

बिना पग चले बिना कर समाई ।
बिना भण्डार दान देव बिना रूप रूप देखाई ॥[1]

विरोधाभास द्वारा कबीर सब भेद भाव मिटाकर परमात्मा की शरण जाने की बात करता है

कुल खोया कुल ऊबेरे कुल राख्या कुल जाय ।
राम निकुल कुल भेटिल सब कुल रह्या समाइ ॥

उक्त उदाहरणों में वाच्यार्थ का सर्वथा परिहार नहीं हुआ है। आँख कान आदि प्रथम उदाहरण में कुल शब्द द्वितीय उदाहरण में तात्पर्यार्थ के साथ अपने सांकेतिक अर्थ भी रखते हैं। इनमें प्रतीकात्मकता सन्दर्भगत तथा अपेक्षाकृत कम मात्रा में है। शब्द शक्ति की दृष्टि से उक्त पदों की व्याख्या करने लगें तो इन्हें अजहत्स्वार्था लक्षणा के उदाहरण मानना होगा। जब सन्त अथवा वाच्यार्थनिरपेक्ष जहत्स्वार्था विपरीत लक्षणा का प्रयोग करते हैं तब उनकी उक्तियाँ शुद्ध प्रतीकात्मक विरोधमूलक अलंकार बन जाती हैं। ऐसी उक्तियाँ ही सन्त साहित्य में उलटी वाणी और आलोचकों द्वारा उलटबाँसी<उलटबानी अर्थात् उलटी बानी कही जाती हैं। अलंकार मात्र विरोधोक्ति में अनुपपन्न वाच्यार्थ की संगति समष्टिगत वाच्यार्थ करता है जबकि उलटबाँसी में प्रतीकात्मकता शब्दगत होती है और अनुपपन्न वाच्यार्थ की संगति प्रकरणसापेक्ष लक्ष्यार्थ करता है। जैसे—

विष का अमृत करि लिया पावक का पाणी ।
बाँका सूधा करि लिया सो साधु बिनाणी ॥[3] —दादू

यहाँ विरोध का परिहार इस तात्पर्य से सम्पन्न हो जाता है कि अपनी प्रबल साधना से वासनाओं के चक्कर में पड़े हुए दुःखी जीवन को आनन्दपूर्ण बना लिया। इस अर्थ में यहाँ साधारण विरोधाभास अलंकार हुआ। हाँ यदि विष अमृत पावक और पानी के वाच्यार्थ का सर्वथा तिरस्कार कर उनमें विशिष्ट अर्थमूलक प्रतीकात्मकता खोजने का प्रयत्न किया जाय तो यही उदाहरण उलटबाँसी का हो सकता है।

आँखोला दूर बज्रनि जगानो माँझि गगन[4]—यहाँ उलटबाँसी नहीं साधारण विरोधमूलक अलंकार मानना समीचीन होगा। इस तरह डॉ० सरनामसिंह का यह कथन कि उलटबाँसी में विभिन्न किस्म विरोधमूलक अलंकार का होना

---

१ क० ग्र० प० र ना० पृ १७६ ।
२ क० ग्र० पृ० २२ दो० ४५ ।
३ सन्तबानी संग्रह भाग १ पृ० ८७ ।
४ कर्मेश्वर १२ २१ ।

आवश्यक है।[1] सर्वथा सही है किन्तु श्री परशुराम चतुर्वेदीजी का यह कथन कि विरोध मूलक ही नहीं सभी अलंकार उलटवासियां होते हैं,[2] अतिव्याप्ति-दोष युक्त है। जिस वक्रता को दृष्टि में रखकर व रूपकादि अलंकारों को उलटवासी कहते हैं तदनुसार तो समस्त काव्य 'वक्रोक्ति जीवित' होने के कारण उलटवासी ही कहलाया जायगा। उलटवासी का उदाहरण होगा

बैल बियाइ गाइ भई बांझ
बछड़ा दूहै तीयूं सांझ॥[3]

इस पद में बैल, गाइ, बछड़ा, सांझ बांझ सभी का अपना विशेष अर्थ है। सामान्य समष्टिगत वाक्यार्थ से यहां काम नहीं चलता है। शब्दों में पूर्ण प्रतीकात्मकता है। सन्तों ने ऐसी उलटवासियों का कहीं कहीं प्रयोग किया है। धनिधर और कबीर की विभावना स्थित उलटवांसियां निम्नलिखित उदाहरणों में कैसी मिलती जुलती हैं।

तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा बिन फूला फल लागा।
साखा पत्र कछू नहिं वाके अष्ट गगन मुख बागा॥[4] —कबीर
तरवर वक्षेमा फुल बिना ठाडे बिना फूल कि फल लागा जी
साखा न पत्र कछु नहि बिजा अष्ट गगनमे दयन्दा रॉम॥[5]

—धनिधर

विषम अलंकार युत समान उलटवांसी द्वारा कबीर और जाम्भनी सन्त हठयोग वर्णित ब्रह्म रन्ध्र का रूप पाठकों के सामने रखते हैं

अवासे मुखि औंधा कुआ पाताले पनिहारि।[6] —कबीर
गगन मंडल मे ऊधमुखकूवा ताहा निरजा निरवासि।[7] —धनिधर
ऊर्ध्वमुखि कुवाम अमय शीगासन ताहा रहै कृष्ण मेरा भाई।[8]

—प्रेमस्लि

विभावित अलंकार द्वारा कबीर जिस तरह आत्म का ज्ञान अज्ञानता पर

---

१ 'कबीर की उलटवांसियां' नामक निबन्ध (कबीर—सं० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० १८६ से उद्धृत)।
२ कबीर साहित्य की परख, पृ० १६१।
३ क० ग्र०, पृ० ६६।
४ वही, पृ० १२३, प० सं० १६५।
५ जो० सं० प० र सा० प० २२६।
६ क० ग्र०, पृ० १३ दो० सं० ५४।
७ जो० सं० प० र सा०, प० २२६।
८ वही, प० ७४६।

जिसमे वह सवत्र व्याप्त परमतत्व को खोजने के लिए व्याकुल रहता है, आश्चर्य प्रकट करता है उसी तरह जोसमनी सन्त शशिधर भी।

पानी बिच मीन पियासि मोहे सुन सुन आवत हाँसी।
आतम ज्ञान बिना सब झूठा क्या मथुरा क्या कासी ॥[1] —कबीर
पानी म मिन पिपासि देख्यो सन्तु पानी म मिन पियासी
घटहि के वस्तु बाहिर ढूँड बन-बन फिरतो ऊदासि ॥[2] —शशिधर

इन पदो म विरोधात्मकता तो है जो उलटबाँसी का एक प्रधान लक्षण है किन्तु यहाँ प्रतीकात्मकता गौण पड गई है। वह अपनी उस विशुद्ध अवस्था म नही जिसम रहती हुई वह उक्त उक्तियो को उलटबाँसियाँ बना देती। उक्त पदो म उनकी द्वितीय अर्धाली द्वारा पूर्व अर्धाली का अर्थ स्पष्ट कर उसका विरोधोक्तित्व ही समाप्तप्राय कर दिया गया है। जोस्मनियो न विरोधात्मक उक्तियो तथा उलटवासियो को स्थान स्थान पर उल्लिखित करने म सकोच नही किया है। शशिधर साधक को बिना गाय का दूध बिना दूध का घी खाने पीने का उपदेश देता है बिना जड की शाखा बिना शाखा के फूल तथा बिना फूल के फल को चखने का परामर्श देता है और बिना स्याही के अक्षर बिना अक्षर की पुस्तक तथा बिना पुस्तक की गीता का गायक बनाना चाहता है।[3] वह जल बिना खेलने वाली मछली को जानता है[4] उसका सुमरु पवत बिना पानी डूबन लग जाता है।[5] श्री जनकलालजी न सुमरु का प्रतीकार्थ सष्टि और पानी का ज्ञान लिया है और अर्थ किया है—ज्ञान न होने के कारण सष्टि नष्ट हो रही है।[6] पूरे पद म विरोधमूलक उक्तियो को प्रकट करन की कवि की प्रवत्ति को ध्यान म रखकर उक्त अर्थ सगत नही लगता है। विरोधपूर्ण उक्तियो का समाधान उस प्रतीकार्थ द्वारा किया जाना चाहिए जिसम स्वय विरोध हो, किन्तु विपरीत बातो का होना यथार्थ हो। ज्ञान के बिना तो ससार नष्ट होता ही है। यहा वाच्य विरोध का समाधान व्यग्य विरोध द्वारा नही हुआ। उक्त पक्ति का अर्थ यही समीचीन है कि सृष्टि इस मिथ्या माया म—जिसका कोई अस्तित्व है ही नही केवल प्रतीति है—मग्न है। मायामय ससार को सन्त मिथ्या मानते हैं फिर भी लोग भनकर उस असत के चक्कर म पडकर नष्ट होते हैं।

१ क० व० प० २०३।
२ जो० स० प० र सा०, प० २२६।
३ वही प० २४०।
४ वही प० २२४।
५ सुमेरु पवत डूबन लाग्यो बिनु पानी—मेरे धनि पवत डूबन लाग्या। वही प० २२४।
६ वही पृ० ३२।

प्रभयादि बादशा के बिना गाया का दृश्य पेश है। प्रथम स्थिति में धरती के बिना दिवल व ता के पूरन मोहा है। जाम्भनी सम्प्रदाय के मूल प्रचारक नानिवर की अभिव्यक्ति का नानकिल की हिन्दी और नेपाली रचनाओं में स्पष्ट अनुकरण देखा जाता है। एक स्थल पर वे बिना धरती के मन्दिर, बिन्दु में सरोवर तथा बिना दीपक के प्रकाश को देखने की बात करते हैं

बिना धरति को देवल देखा बिन्दु सरोवर पानी
बिना दीप को मन्दिर उज्यालो बोलत अमृत बानी ॥[1]

यहाँ तीन विरोधोक्तियाँ हैं—प्रथम और तीसरी में विभावना तथा दूसरी में विरोधाभास अलंकार है। ऐसी उलटबाँसियाँ नानकिलदास की रचनाओं में अधिक नहीं मिलती हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने स्वान्तःसुखाय जिस तरह दृष्टि में रखा, उसी तरह पर जा लिखाई था। अवश्य जिस गूढ़ विषय का लेकर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये उसे स्पष्ट करने के लिए उन्हें भी प्रतीकों का उन्मुक्त प्रयोग करना पड़ा और जो आलोचक रूपक आदि उन अलंकारों को भी जिनमें सन्तों की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग हुआ अतएव परम्परागत होने के कारण जिनमें 'उलटी वाणी' की दुरूहता बिलकुल भी नहीं है उलटबाँसी मानते हैं, उनकी दृष्टि में नानकिलदास की बानी में भी उनका प्राचुर्य मिले तो कोई आश्चर्य नहीं।

अन्य सन्तों की भाँति नानकिलदास ने इडा, पिंगला, सुषुम्ना को क्रमशः गंगा, यमुना, सरस्वती माना है और उनके संगम को त्रिवेणी।[2]

त्रिवेनी मांपि फकिर को तातो।[3]
गंगा जमुना नदी नहाना सुषिमनी सागर जाना जो।[4]
गंगा जमुना त्रिवेणी बिच में नेष सहस्र ।[5]

राम के रूपक को अपनी वाणी में उतारने के लिए नानकिल ने स्थान स्थान पर यमुना का नाम लिया है और कृष्ण मिलन मथुरा में ग्वाल-बाल सुत व दा वनवासी के साथ गोकुल को वर्णित करने का प्रयत्न किया है। 'गगनमण्डल

१ जो० स० प० र सा० प०, ३८१।
२ (क) गंगा जमुना अन्तरवेद। सरसुती नीर बहै परदेस—दादूदयाल की बानी भाग १ प० १७३।
(ख) तिरवेनी एक संगहि संगम सुन्न सितार बहु धावरे।
—धरनीदास की बानी, पृ० १८।
(ग) त्रिवेणी मनहि न्हवाइए। सुरति मिले जो हाथिरे।—क० ग्र०, पृ ८८।
३ जो० स० प० र सा०, पृ० ३६८।
४ वही, पृ० ३७२।
५ वही, पृ० ४०३।

रूपात्मक चदरिया का बखान ज्यो-का त्यो धर दन क उल्लास को दिखाता है[1] उसी तरह ज्ञानदिलदास को जीवन सूचक नाव के जिसे सुरमुनि तक पार नही ले जा सके, पार लगन पर हम उल्लसित पाते है।[2] अपनी नेपाली रचना 'उदय लहरी म ज्ञानदिलदास मन को मृग तथा भक्त को ग्रहरी का परम्परित रूपक दन के पश्चात भक्त के विविध भावना को सागरूपक द्वारा शिकारी के उपकरण सिद्ध कर अपना अभिव्यक्ति कौशल दिखाता है

> काम क्रोध लोभ भक्ति जन को वरी
> मन रूपी मगवा भक्ति (भक्त ?) फियो ऐरी।
> शब्द को गोली रजक चढाउ
> सिलका बान ले तमगुन लडाऊ
> काम क्रोध लोभमा तिन बिर जान
> घुक चुक न गरी सिधा गरि दान।[3]

कबीर की तरह मस्ती म झूमता हुआ ज्ञानदिल अपन विचारा को पाठका के सम्मुख रखता है। व्यग्यात्मक शली म अपने आपको प्रकट करना उस खूब आता है। वह अपन आपको बिगडा हुआ मानता है उसी तरह जस गाय के मुह म जाकर तिनके बिगड जाते हैं—उनका दूध बन जाता है जस ज्योति के सग बान बिगड जाते हैं—व ज्योतिमय हो जाते हैं

> ज्ञानदिल बिगडे हरि गुण गाई अम्बिरस पाई ॥ धु० ॥
> सब जन मत बिगडो हो मेरे भाई हामुता बिगडे हो मेरे भाई
> गौवा के सग म त्रिण बिगडे त्रिण दूद म मिले मेरे भाइ ॥
> सुगुरा के सग म निगुरा बिगडे वतन जोति म मीले मेरे भाइ
> दास ज्ञानदिल सुनो भाइ साधु मेरे साहेब मिलि गये सतगुरु पाइ।[4]

ज्ञानदिलदास की नेपाली रचना म स्थानीय रग उभर आया है। सन्त जब उमग म आत है तो उस भावावेश की अवस्था मे उनकी भाषा असम्बद्ध हो जाती है परन्तु भावयोगस्थ होन के कारण उनकी उक्तिया कवित्व की सरस स्वाभाविकता से मण्डित हो उठती हैं। ऐसी ही स्थिति म ज्ञानदिलदास सम्प्रदाय निरपेक्ष हो झूमता हुआ दिखाई देता है

> गगा को सिर्मा यो रानी भिर्मा
> फुल्फुल्यो गो ग्यानीं ॥

---

१ क० ब०, प० २५१ पद, २२३।
२ जो० स० प० र सा०, पृ० ३०८ (रागवाणी १३)।
३ जो० स० प० र सा०, प० ३३२।
४ वही प० ३७०, (रागवाणी) ३।

नौविसे भेडो भडवाला परे
भ गयो जोगिनी ॥
हिरा को दर्बार सुन गरिपवर ॥
भ गयो जोगिनी ॥[1]

गगा के ऊपर रानी भिन्ट (रानी नाम का पर्वताचल) म नानी फून उठा, नौ बीस (१८०) भेडा के भडवाल (गड्हा) पडन पर उसका गुरुग जाति का शिष्य दीनदयालु गुरु (ज्ञानदिलदास) की कृपा स हिरा (हीरा) अर्थात ब्रह्म के दरबार म आकर योगी हो गया। यहाँ दुनिया की विषयवासना स निरस्त हो गुरुकृपा से विरक्त होने की बात ध्वनित होती है। इसी भजन के तीसरे पद म प्रस्तुत रूप म रमजाटार के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। किन्तु अप्रस्तुत आध्यात्मिकार्थ की व्यजना भावोन्मादजनित ग्रस्त यरतता मे भी होकर ही रहती है

गगा को तरन भेडी को चरन
नुन खानु कुत्ति को।
हिदय चिरी ज्ञान बताइ दिने
को होला उत्ति को।
हिरा को दर्बार सुन गरि पर्वर
को होला उत्ति को।[2]

गगा के किनारे भेडो के चारागाह म रहना और कुत्ते की पीठ पर लाया हुआ नमक खाना—यह रमजाटार की सुपरिचित जीवनचर्या है। इस तरह जीवन बिताते हुए को हृदय फाडकर ज्ञान बता द—वहा ईश्वर के दरबार म पहुचाने वाला गुरु कौन होगा ? इसका प्रतीकार्थ यह निकाला जा सकता है कि मायामय ससार म इन्द्रियो के वशीभूत मूढजनो के बीच पडे हुए तथा मन की वासना की गुलामी करने वाले (कुतिया का नमक खान वाले—कबीर भी मन को कुत्ता कहता है[3]) अति अकिंचन दीन हीन को अच्छी तरह ज्ञान देकर जो परम ज्योति का दर्शन करवा दे ऐसा दीनवत्सल गुरु कौन होगा ?

प्रस्तुत और अप्रस्तुत को सम्बद्ध करने म कही कही तो ज्ञानदिलदास की रचना मे एक मजे हुए कलाकार की सफाई मिलती है। कवि की मस्ती तथा भावानन्द पाठका तक सहज ही सप्रेषित हो जाता है। जसे—

यो रमजाटार्को कोदा को पिठो
निगुन को दाऊन।

---

१ जो० स० प० र सा० पृ० ३६७।
२ वही, प० ३६७।
३ क० ग्र०, पद ६ प० ८१।

धम र कम गुरुड ले गन्यो
छकपन्यो बाहून ॥[1]

यहाँ प्रथम चरण मे रूमजाटार म कोदा के आट के मिलने का पता लगता है जिसका तब तक कोई गुह्य अर्थ नही निकलता है जब तक दूसर चरण 'निगण को दाऊन' का रूपक सामन न आ जाय। निर्गुण को 'दाउन' अर्थात् आट मे डाला जाने वाला घी आदि का मोयन जिसमे वह चिकना, स्वादिष्ठ तथा खस्ता हो जाता है—रूपक देने स कवि कोदो के आटे का भी स्वादिष्ठ बन जाना सिद्ध करता है। अर्थ अब भी पूरी तरह स्पष्ट नही होता है जिसे पीछे तृतीय और चतुर्थ चरणों का अर्थ खोलकर रखता है। कोदो का आटा (साधारण मोटा अन्न) यह निम्न जाति का गुरुड है जिसने निगुण ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य बना लिया और 'बाहून' अर्थात् ब्राह्मण वह ज्ञान प्राप्त न कर सकने के कारण जैसे-का तसा ही रहा। निगुण शब्द का प्रयोग कर कवि ने अपने कथन को वक्रोक्तिमय भी बना दिया है। एक तो कोदो का आटा और उस पर भी 'निगुन' (गुणहीन) मोयन[1] वाच्यार्थ मे जो निगुन कोदो को पिठा' का और भी अरुचिकर बनाता है वही भावार्थ म उसकी अभद्रता मिटाता ही नही प्रत्युत उसे महत्त्व प्रदान करता है।

ज्ञानदिलदास न एक सर्वथा स्थानीय रूपक को अपनी रचना मे प्रयुक्त किया है। कबीर ने जिस भाव का प्रकट करने के लिए खजूर के ऊँचे पेड का रूपक प्रयुक्त किया[2] उसकी अभिव्यक्ति के लिए ज्ञानदिलदास चप्लेटी ढुगो को काम म लाते है। यही फकीर रूपी उस भारवाहक का विश्राम स्थल है जो प्राणवायु की चढाई का राही है। 'चप्लेटी ढुगा' उपमान का उपमेय लुप्त है। श्री जनकलालजी आज्ञा चक्र को चप्लेटी ढुगा मानते हैं[3], किन्तु युक्तियों के अभाव म इसे माना नही जा सकता है। या तो इसका प्रतीकार्थ प्रत्यक चक्र मानना होगा—इन चक्रो को पाकर ही साधक के प्राण ऊपर उठने और अन्त मे सहज-शून्यावस्था मे पहुचते हैं जो इडा पिंगला और सुषुम्ना की त्रिवेणी के ऊपर जाकर प्राप्त होती है—या अन्तिम चक्र सहस्रार को चप्लेटी ढुगो' समझा जाना चाहिए जहा साधकात्मा लौकिक जीवन-जनित पापपुण्यादि के भार मे मुक्त हो सुरतानन्द के क्षेत्र म पदार्पण करती है। कर्मों का बोझ तभी तक रहता है जब तक आत्मदर्शन न हो। दर्शन हो जान पर हृदय की गाँठ खुल जाती है संशय निवृत्त हो जाते हैं और शुभाशुभ कर्मों का क्षय हो जाता

---

१ जो० स० प० र सा०, पृ० ३६६।
२ क० व०, पृ १२२, पद ३२६।
३ जो० स० प० र सा०, पृ० १२७।

है।[1] श्री जनकलालजी ने न जाने किस तरह शरीर लिया नेपाली में ज्यान का अर्थ प्राण ही होता है। प्राणवान होने के कारण ही कभी कभी शरीर के लिए भी उसका प्रयोग होता है। हठयोग की दृष्टि से भी ज्यान का अर्थ शरीर लेना संगत नहीं है। भयाउरे लोकगीत की धुनि में ज्ञानदिलदास की भावोन्मादिनी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में मिलती है

उकाली ज्यान को चल्लेटी ढुंगो फकिर को विसाउनी।
त्रिवेनी माथि फकिर को तांती पुल्यो है निसानी॥[2]

नेपाली जीवन की सहज परिस्थितियों के आधार पर निगूढ़ रहस्य को समझाने का ज्ञानदिलदास का प्रयत्न सर्वथा स्तुत्य है। इस विशेषता को आंकने के लिए श्री जनकलालजी का निम्नलिखित कथन उपयुक्त ही है

यति कठिन विषयलाई दिन दिन जीवन का घटना विषयसित उपमा दिई बोध गराउनु साधारण कुरा होइन। यो ज्ञानदिल को ठूलो विशेषता हो।[3]

सन्तों के कल्पना विधान की यह प्रमुख विशेषता देखी जाती है कि जहां एक ओर उनकी रचना गहन दार्शनिकता को प्रदर्शित करने को नाथों और सिद्धों के अनुकरण पर दुरूह प्रतीकात्मक उलटवांसियों के कारण अत्यधिक क्लिष्ट बन गई है वहां दूसरी ओर स्वाभाविक एवं अनुभूत दैनिक जीवन के चित्रों को उपस्थित करने के कारण अत्यधिक सरल। नेपाली सन्तों की अभिव्यक्ति में भी वे दोनों बातें देखने को मिलती हैं। कबीर ने जिस तरह नित्य व्यवहार में आने वाले चरखे का रूपक प्रयोग कर आध्यात्मिक अनुभूति निवेदित की[4] उसी तरह जोसमनी सन्त शशिधर भी उसे प्रयुक्त करता है।[5] हिन्दी सन्तों की तरह[6] नेपाली भाषा का सन्त कवि ज्ञानदिल शरीर को मिट्टी का कच्चा घड़ा मानता है

अले छ कि भरे छ भोलि छ मर्नु
कच्चामाटीको छाला क्या न छ तन्नु

---

१ भिद्यते हृदयग्रन्थि श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥ श्रीमद्भागवत अ० २, श्लोक २१।

२ जो० स० प० र सा० पृ० ३६८।

३ वही पृ० १२७।

४ कबीर ग्र०, पृ० ८२

५ जो० स प० र सा० पृ० २३१, रा० वा० १७।

६ यह तन काचा कुम्भ है लिया फिर था साथ।
—कबीर वचनामृत (साखी भाग), स० मुन्शीराम पृ० ७४,

पाउनु छ दुलभ मनुसे को चोला
यो जन्म वित्या पछि फिर कसो होला ॥[1]

जोस्मनी सन्तों की शब्दावली उसी तरह अनगढ किन्तु स्वाभाविक है जैसे भारतीय सन्तों की। काव्यप्रणयन उनका उद्देश्य नहीं था। वे अधिक पढे-लिखे भी नहीं थे। जो कोई पढा लिखा था भी उसे भी जनसाधारण के बीच प्रभाव जमाने के लिए उसी भाषा को प्रयुक्त करना अच्छा लगा जो जन जन की हो अतएव जन जन को प्रभावित कर भी सके। बहुत-से प्रान्तों और मण्डलों की शब्दावली उनकी रचनाओं में मिलती है। छन्दोविधान पर उन्होंने अधिक बल नहीं दिया है किन्तु उनके भजन और गीतों में लय का अभाव नहीं है। उसके लिए ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व करने में सन्त कवियों ने हिचक नहीं दिखाई है। जोस्मनी सन्तों के नीचे दिए पद्यांशों के रेखांकित स्थलों को देखने से यह बात पुष्ट हो जाती है।

वत्तीस कोठरिमे दस दरवाजा बाउन्न वनिआ को डेर था।
तीन सये साठि चुडामणि बाधे कोठा चोफेर वन्त था।[2]

—शशिधर

जाहा देखों ताहा साहेब मेरा पुली गइ भ्रम सारा॥[3]

—अभयानन्द

शब्दालंकारों का प्रयोग नेपाली सन्त साहित्य में बहुत कम मिलता है। कहीं-कहीं अनुप्रास की छटा बड़ी स्वाभाविकता के साथ दिखाई देती है

चारो चन्चल चोरपेलेनि सुष्मि चाबुक लगाना जी
पाँच पचीस पातस नाचे मन मदग बजाना जी॥[4] —ज्ञानदिलदास

काल कला काया तन देही ।[5]
चचल चोर को चाबुक मारो ।[6]
पाच पचिस पातरू नाच मन माता ले बजाई।[7] —शशिधर
जिव जग जब पिव जगाउ ।[8] —धोकलदास

---

१ जो० स० प० र सा० पृ० ३४२।
२ वही, पृ० २३५।
३ वही पृ० २५८।
४ वही पृ० २५८।
५ वही, पृ० २७७।
६ वही, पृ० २७८।
७ वही, पृ० २३१।
८ वही, पृ० २४४।

अन्त्यानुप्रास

क्या दरबार क्या बाजार सोया सबत्र के लाजा ।[1] —अभयानन्द

बहुत माया बहुत उडाया बहुत तुमने पाया जगत म ।[2]

—अभयानन्द

सौगन सुरता तमु साचो नाहि फिरत दिन म

आसामा कोहि पासा हो जग मे ।[3] —अभयदिलदास

अन्तिम उदाहरण की प्रथम पक्ति म आद्यानुप्रास भी है। यमक के भी दो एक उदाहरण ज्ञानदिलदास की रचना म मिलते हैं

मान गुमान कि मता कयाको ।[4]

अगम निगम के गम कर लना ।[5]

चरण के आदि मे ध्वनिसाम्य की कला भी जोसमनियो को ज्ञात है

छट पट श्वासा घट पर बाधू

नट पट मन को अमन कराऊ

टटपट सूय मो दीप जगाऊँ

घटपट नेकमो एक सा जान

झटपट पद अभयानन्द पाऊँ ।[6]

—अभयानन्द

ज्ञानदिलदास के झ्याउरे और टङना भजनो म शब्दो का अनुकरण सवथा श्लाघ्य है। गति के साथ ध्वन्यथक शब्दो क प्रयोग स उनकी प्रगीतात्मकता और भी मनोरम हो चली है

बसी बाज्यो तिरिरी

अनहद को घन घन

कमल फुल्यो रन बन

भमरा को भन भन

राम जी ! जोगी घुम्यो फन फन जी ॥[7]

---

१ जो० स० प० र सा० पृ० २५६ ।

२ वही, पृ० २५४ ।

३ वही, पृ० ३१० ।

४ वही पृ० ३७३ ।

५ वही पृ० ३७३ ।

६ वही पृ० २७७ ।

७ वही पृ० ३६६ भजन स० २ ।

यथायत शब्दो को सोच समझकर प्रयुक्त करना और इस तरह चमत्कार प्रदर्शित करना जिस तरह भारत के हिन्दी सत कवियो को अभीष्ट नही रहा उसी तरह नेपाली सन्तो ने भी चमत्कार के लिए कविता नहीं की। व साधक प्रथम हैं—कवि पीछे और पण्डित या आचाय तो व हैं ही नही अतएव कला की दृष्टि से यदि इन सन्ता की रचनाआ म कुछ विशेष न मिले तो कोई आश्चय नहीं।

अध्याय चार

राम भक्ति-काव्य

नेपाली कवि भानुभक्त और हिन्दी कवि तुलसीदास

नेपाल के भानुभक्त और भारत के तुलसीदास का आविर्भावकाल भिन्न भिन्न होता हुआ भी परिस्थितियों की समानता के कारण बहुत कुछ एक सा है। इन दोनों की रामभक्ति के पीछे सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण की प्रेरणा पाने वालों के मतानुसार दोनों के काव्यों की विशेषताएँ एक ही हैं और जो भक्ति का स्रोत समाज निरपेक्ष प्राचीन भक्तिधारा को मानते हैं उनके इन कवियों पर दोषारोपण के तर्क भी एक ही हैं। हां तुलसी का मानस दूसरे श्रेणी के आलोचकों का उतना कोप भाजन नहीं बन सकता है जितना कि भानुभक्त का। कारण यह है कि तुलसी की प्रवृत्ति जहाँ सम्प्रसारण की रही वहाँ भानुभक्त की संक्षेप की। तुलसी ने अध्यात्म रामायण ही नहीं अन्य राम काव्यों की बातों की भी विशद व्याख्या की। इस व्याख्या में एक ओर उनकी मौलिकता उभर आई और दूसरी ओर न चाहते हुए भी कवि द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण तथा समस्याओं का समाधान-कथन किया गया। भानुभक्त ने संक्षेप करना चाहा फलस्वरूप एक ओर उन्हें मौलिकता दिखाने का अवसर कम मिला और दूसरी ओर वे अपने युग को अपेक्षाकृत कम दे पाये। उनकी प्रतिनिधि रचना 'रामायण' ने युग को जो दिया उसका बहुत कुछ श्रेय अध्यात्मरामायण को चला जाता है। भानुभक्त कृत रामायण का आरम्भ निम्नलिखित शब्दों से होता है

एक दिन नारद सत्यलोक पुगि गया लोकको गरौं हित भनी।[1] यदि यह 'एकदा नारदो योगी परानुग्रहकाङ्क्षया। पर्यटन विविधाल लोकान सत्यलोकमुपागमत्।'[2] इस अध्यात्मरामायण के श्लोक का अक्षरशः अविकल अनुवाद न होता तो हम भानुभक्त को अपने क्षेत्र में लोक हितपिता की संदेशवाहकता का श्रेय देने में कोई हिचक नहीं होती। उनके अनुवादक के रूप में उतरने पर ऐसा करने

---

१ भा० म० रा०, प्रथम पद।

२ अ० रा०, प्रथम श्लोक।

के लिए हृदय सहसा तयार नहीं होता है किन्तु तथ्य को भी कसे भुलाया जा सकता है। अध्यात्मरामायण की पोथी तो पहले से ही नेपाल म विद्यमान थी। जन-साधारण को परानुग्रहकाम्यया का ग्रथ किसने बताया ? उस क्या पता कि भानुभक्त स पूर्व ही उस विचार को कोई रख चुका है अतएव भानुभक्तीय रामायण पढकर सामाजिक हृदय म यदि कहीं परहित साधन की इच्छा जाग्रत हुई तो उसके उस हृदय निर्माण का श्रेय भानुभक्त को न देना भी अन्याय है। भानुभक्त ने यह बहुत बडी बात की कि जनता को उसकी भाषा म वह वस्तु दी जिसके साथ उसका बहुत पुराना सास्कृतिक सम्बन्ध था। भूली हुई जनता को भानुभक्त द्वारा प्रदर्शित माग नवीन न होता हुआ भी नवीन लगा। नवल सिंह और गोकुलनाथ कृत अध्यात्मरामायण के हिदी अनुवाद क्रमश अध्यात्म रामायण और सीताराम गुणार्णव की तरह भानुभक्त की रामायण की उपेक्षा उसके अनुवाद होने पर भी नहा की जा सकती है क्योकि उसका नेपाली जन-जीवन पर बडा व्यापक प्रभाव पडा है। रामभक्ति के हिन्दी कवि तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण क विचार पूर्ण स्थलो म इतना अधिक जोडा है कि उससे उनका दर्शन स्पष्ट झलकने लगता है परन्तु भानुभक्त न एसे स्थलो—विशेषत स्तुति स्थलो को लगभग छोड ही दिया है। कथामात्र अवशिष्ट रही है—वह भी सक्षिप्त। एसा क्या हुआ इसका कारण स्पष्ट है। तुलसी न अपने लिए लिखा[1] भले ही वह ग्रन्थ बहुतो के लिए भी बन गया किन्तु भानुभक्त न घसियारिन के साथ वार्तालाप स उद्भूत मन कामना से लिखा।[2] विशिष्ट के लिए नहीं सवसाधारण क लिए लिखा। यही कारण है कि उन्होंने जनसाधारण की भाषा अपनाइ। लिखा तो तुलसी ने भी लोकभाषा म पर उन्होंने कदाचित् ही प्रचार की दृष्टि स उसे अपनाया हो अन्यथा व तत्कालीन साहित्यिक महत्त्व भी

---

१ स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा भाषा निबन्ध मतिमञ्जुलमातनोति।
रामचरितमानस बालकाण्ड पृ० ३० (गीताप्रेस गो० मझला साइज सटीक,

२ जन्म भर घास तिर मन दिइ धन कमायो।
नाम क्य रहोसपछि भनेर कुवा सनायो।
घासी दरिद्रि घरको तर बुद्धि कस्तो।
भो भानुभक्त धनि भक्न आज यस्तो॥
मेरा इनार न त सत्तल पाटि क्य छन।
जे धन र चीजहरू छन घरभित्रन छन॥
तेस घासि से कसरि आज दिये छ अर्ती।
धिक्कार हो मकन वस्तु न राखि कीर्ति॥
—भानुभक्त को जीवन चरित्र मोतीराम भट्ट, पृ० ८।

रचना वाली अधिक प्रचार प्राप्त ब्रजभाषा पर अवधी की अपना अधिक पसन्द करते। भानुभक्त ने अपनी रचनाएं नेपाली में क्यों लिखा, उसके पीछे उनकी मनोभावना यही है कि सब लोग सरलतापूर्वक उन्हें समझ सकें—'बुझन सानि सजिलो भाषा बनाई लिया'। किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ब्रज और अवधी को अपनाने में तुलसीदास का यह मन्तव्य रहा हो कि इनके प्रयोग द्वारा वे लोगों की श्रद्धा का अधिक अर्जित कर सकें।

तुलसी का रामचरितमानस भानुभक्त के समय तक पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका था। अतएव भानुभक्त के लिए तुलसीदास से प्रभावित होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि अध्यात्मरामायण का कहीं शब्दानुवाद तो कहीं भावानुवाद करने वाले भानुभक्त ने अपने क्षेत्र से बाहर जाकर कुछ बातें तुलसीदास की भी वहां सर्वांगमना तो नहीं अपना अपना ली। उदाहरण स्वरूप दो सन्दर्भ उद्धृत किए जाते हैं।

वन जाते समय अध्यात्मरामायण की सीता गंगा की स्तुति करती हुई कहती है कि लौटने पर मैं सुरापलिमांसादि से तेरी पूजा करूंगी।[2] अवश्य तुलसी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इतना ही लिखा

गिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥
पति देवर सग कुशल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी॥[3]

भानुभक्त ने अध्यात्मरामायण को छोड़कर तुलसी का अनुकरण करते हुए लिखा है

फिर्दा मा म पुजा अवश्य गरुला सामग्रि ठूलो गरी।
गंगे! आज त जाछु थोर बनमा केवल नमस्कार गरी॥[4]

अध्यात्मरामायण में राम शूपणखा से कहते है—मेरे पास मेरी पत्नी है तुम सौत के साथ कैसे रह सकोगी। बाहर मेरा भाई लक्ष्मण तुम्हारे अनुरूप है। उसी के पास जाओ।[5] यहां यह स्पष्ट नहीं है कि लक्ष्मण विवाहित है या कुंवारा। तुलसी ने उस शूपणखा से जिसने अपने आपको कुमारी बताकर मिथ्या भाषण किया समुचित उत्तर देने की भावना से 'अहहिं कुमार मोर लघु भ्राता'[6] इन शब्दों में अपने राम से मिथ्या भाषण करवाया। भानुभक्त ने बड़े कौशल से

---

१ प्रश्नोत्तर माला भानुभक्त अन्तिम पद।
२ अ० रा० अ० का०, ६ २२।२३।
३ रा० च० मा० अ० का०, ४१५।
४ भा० भ० रा०, पृ० ५०।
५ अध्यात्मरामायण, अरण्यकाड, ५।१२ १४।
६ रा० च० मा० ६१७।

तुलसी के प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी अपने नायक राम के चरित्र को मिथ्या भाषण के दोष से बचा लिया।

यस्तो वचन सुनि सिता कन हासि हेरी।
उत्तर दिया प्रभुजिले घर म छ मेरी।
सीता बुझी कन न भज त पती मलाई
भाई छ खालि बस भज पति भाइ लाई ॥[1]

इस पद की पूर्व अर्धाली म भानुभक्त तुलसीदास की पक्तियों को नेपाली भाषा म दुहरान स दृष्टिगत होते हैं किन्तु उत्तर अर्धाली म व अन्त अध्यात्म रामायण की बात कहते हैं और एक मौलिक शब्द अपनी ओर स भी जोड देते हैं। वह शब्द है खालि (खाली)। तुलसी जो कहना चाहते थ वह भी कह दिया गया राम का भूठ भी न बोलना पडा। एक कामुका का आकृष्ट करने म जितना महत्व कुवार का है उतना ही विवाहित होन पर स्त्री हीन का है।

अध्यात्मरामायण का अनुवाद करने वाल भानुभक्त की रचना म तुलसी के प्रभाव न कही-कही स्वोक्ति विरोध भी पदा कर दिया है। उदाहरणाथ अध्यात्मरामायण के अनुसार धनुयज्ञ म ज्या ही पाँच हजार वीर धनुष को खीचकर राम का दिखाते हैं, त्या ही व कमर बाधकर अन्य नरेशो के देखते देखते उस तोड देते है।[2] वहा धनुष का देखकर नरेशो की हिम्मत हार बठने की बात आती ही नही। भानुभक्त के जनक विश्वामित्र के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए जो कुछ कहते हैं उसस उनके ऊपर तुलसी का प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित होता है।

को सक्थ्यो धनु जो उठाउन बिना श्रीराम अगाडी सरी।
हिम्मत हारि सब घर फिरि गया दर्शन धनूको गरी।
राम ले पूर्ण गराय्यि बक्सनु भयो मेरो प्रतिज्ञा पनी।
यो चीज्या पनि सब कृपा चरण ले गर्दा भया को भनी ॥[3]

इस आशय को रखन वाला कोइ श्लोक अध्यात्मरामायण म नही है। तुलसी का ही राजगण धनुष तोडने के लिए उसकी जाच-पडताल कर और कुछ प्रयत्न कर अन्त म अपने समाज म जाकर बठ जाता है। यह ठीक है कि तुलसी रचित इस वृत्तान्त पर वतमान वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है किन्तु भानुभक्त के ऊपर वाल्मीकि रामायण का सीधा प्रभाव परिलक्षित नही होता है। अवश्य ही उन्होने पूर्वोद्धृत पक्तियो को लिखते समय 'मानस' को दृष्टि म रखा होगा।

---

१ भा० भ० रा० अ० का, भानुभक्त ग्रन्थावली, पृ० ५०।
२ अ० रा० बा० का०, ६।२२-२४।
३ भा० भ० रा० पृ० ३०।

भानुभक्त जनक के मुह स उस वचन को प्रकट करवाते समय यह भूल गये कि अध्यात्मरामायण का अनुवाद करते हुए वे कुछ ही पहले कह चुके हैं कि यनस्थल पर धनुष को पहुचाते ही राम ने उस तोड़ डाला

साचा बाणि राख्या र सो हिरत पा ग्रात्तित गर्न्या थ्या जस।
पांच हजार जिर ले उचालि बल ले ल्याया धनुप तस।
ताहाँ श्री रघुनाथ उठर नजिकै सो ही धनूष्य गया।
बाम हातमा सहज उचालि धनुत्यो राम्ले त सीदा भया ॥[1]

कई स्थलो पर तुलसी ग्रौर भानुभक्त ग्रलग ग्रलग ढग से चलते हैं। तुलसी के राम राज्याभिपेक की बात सुनकर दुखी हो उठते है

जनमे एक सग दोउ भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।
करनबेध उपबीत बिग्राहा। सग सग सब भगे उछाहा।
बिमल वस यह अनुचित एकू। वधु बिहाइ बडेहि अभिपेकू।[2]

भारत म राज्याभिपेक की बात से अत्यधिक खुश हो जाते हैं

भरतु प्राणप्रिय पार्वहि राजू। विधि सब जिधि मोहि सम्मत ग्राजू।[3]

बनवास क वत्तान्त स उत्फुल्ल हो उठते है

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाति मोर बड काजू।[4]

भानुभक्त क राम राज्याभिपेक की बात पर प्रकट रूप से खुश नही दिखाई देते हैं किन्तु उनके हृदय की उत्सुकता का ग्राभास मिल जाता है दुखी तो वे है ही नही। अध्यात्मरामायण के राम प्रकट रूप से प्रसन्न होते है।[5] वाल्मीकि रामायण के राम तो राज्याभिपेक की बात सुनकर अत्यधिक ग्रानन्दित हो उठते है।[6] भानुभक्त ने यहा अपने राम को संस्कृत के रामो की ग्रोर झुकाया है

यस्तो विन्ति गरी वसिष्ठ गुरु फिर जस्से गया थ्या घनी।
राम ले लक्ष्मण थे भन्या म तिमिलाई काम गन चूँला भनी।[7]

इसी तरह बनवास की बात पर भानुभक्त ने प्रकट रूप स तो राम के

---

१ भा० भ० रा० पृ० २६।
२ रा० च० मा० ग्र० का० पृ० ३४३ (मझला साइज सटीक गीता प्रेस, गोरखपुर)।
३ वही, पृ० ३६८।
४ वही, पृ० ३७७।
५ ग्र० रा० ग्र० का०, २।३६ ३७।
६ वा० रा० अ० का० ४ र ३४ ३५ ग्रौर ४३ ४४।
७ भा० रा० ग्र० का० पृ० ३५।

दु ख को नही दिखाया, पर उसकी व्यजना निम्नलिखित शब्दों में होकर ही रहती है। कौसल्या के भवन म पहुचने पर जब राम को कुछ खाने के लिए दिया जाता है तो वे कह उठत हैं

गयो खाया वेला भक्न त मिल्यो राज्य वन को।[१]

अध्यात्मरामायण की कैकेयी मथरा से प्रभावित होने से पूव बहुत अच्छी है किन्तु कौसल्या शकालु है। इसीलिए राम के राज्याभिषेक म कैकेयी द्वारा विघ्न की आशका से उसके निवारणाथ वह देवी की पूजा करती है।[२] कैकेयी क चरित्र को वनाने वाले अध्यात्मरामायण के श्लोक को[३] भानुभक्त न छोड दिया और कौसल्या तथा कैकेयी दोना को सामान्य सौता के रूप म चित्रित किया है। तुलसी की कैकेयी देवी विधानानुसार मथरा से प्रभावित होन से पहल उसी तरह साधु स्वभाव वाली है जिस तरह कि वह कौसल्या जो कैकेयी द्वारा राम को वन दिये जाने पर भी उसकी आज्ञा मानने की बात पर बल देती है।[४]

वाल्मीकि रामायण[५] और अध्यात्मरामायण म[६] रावण सीता को दो मास की अवधि देकर चला जाता है। यदि दो मास के बाद सीता उसकी पयकशायिनी नही होगी तो उसके पाचक काटकर उसका कलेवा बना डालेंगे। तुलसीदास ने यहा दो परिवतन किये। प्रथम कलेवा बनाने की बात छोड दी। दूसरा—दो मास के स्थान पर केवल एक मास की अवधि दिलवाई।[७] जिसे रावण

---

१ भा० भ० रा० अ० का० पृ० ४१।

२ अ० रा० अ० का०, १।२४।

३ अ० रा० अ० का० २।५४ ५६।

४ जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बडि माता।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
—रामचरितमानस अयोध्या काण्ड, ३७९।

५ द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृत ।
तत शयनमारोह मम त्व वरवर्णिनि ।
द्वाभ्यामूर्ध्व तु मासाभ्यां भर्तारिमामनिच्छतीम ।
मम त्वा प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डश ।
—वा० रा०, सु० का०, २० सग० ८।९

६ यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्या नाभिनन्दति।
तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम ॥—अ० रा०, सु० का०, २।४२।

७ मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।
रामचरित मानस, सुदर काण्ड, ६६५।

प्रेयसी बनाना चाहता है, जिसकी रूपराशि पर वह मुग्ध है उस काटकर खाने की बात कुरुचिपूर्ण है। तुलसी ने उसे मारने की धमकी तो दिलवाई पर प्रातराश बनाने की बात नहीं कहलाई। भानुभक्त अध्यात्मरामायण के आधार पर दो मास की अवधि दिलाते हैं और न मानने पर कलवा बनाकर खाने की ही बात नहीं करवाते, *बल्कि मीठा मसाला लगाकर 'मुटुवा' बनाने की धमकी दिलाते हैं।* इस अभिव्यक्ति पर स्थानीय रंग चढ़ा हुआ है।

> म हा दुइ मास बसनु तब उपर मेरा शयन मा कि ता
> बस्नित बस्नित यो पनी भनि भन्या काटेर टुक टुक गरी
> तरकारी मुटुवा बनाउनु असल मीठा मसाला धरी
> मासु खाई म छोडुला अभ्र पनी चेताउ ।[१]

अब ज़रा तुलसीकृत दूसरे परिवर्तन पर विचार करना है। दो मास की अवधि के बदले तुलसीदास ने एक ही मास की अवधि दिलाई। क्या तुलसी ने किसी विशेष विचार से एक मास घटा दिया या मौलिकता दिखाने की ही भोंक में यों ही कम कर दिया? वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि राम का राज्याभिषेक चैत्र मास में होना था जिसके बदले फिर उन्हें वनवास हुआ।[२] भरत को अवधि देते तथा विभीषण से विदा होते समय की राम की बातों से स्पष्ट है कि राम को चौदह वर्ष के बाद सौर चैत्र या चान्द्र वैशाख के प्रथम सप्ताह में ही घर लौट आना है।[३] *तुलसी भी राम का वनवास चैत्र मास में मानते दिखाई पड़ते हैं। उनकी* सीता हनुमन्नाटक की सीता की तरह दो पग चलते ही पसीने से तर हो जाती है।[४] लक्ष्मण प्यास बुझाने के लिए पानी लाने चले जाते हैं। प्राचीन रामायण इस बात में एकमत हैं कि शरद ऋतु के कुछ दिन बीतने तक सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया इसलिए राम की आज्ञा से लक्ष्मण उसे धमकाने जाते हैं।[५] सुग्रीव क्षमा मांगता है और खोज करने की आज्ञा देकर बानरों को इधर उधर भेजता है। उस समय वह यह आदेश सुनाता है कि एक मास बीतने के पहले ही सीता की सुधि न लाने पर वह उन्हें मृत्यु दण्ड देगा।[६] एक मास बीत

१ तुलनात्मक सुन्दर काण्ड स० बाबूराम आचार्य पद स० २१।
२ चैत्र श्रीमानयं मासः पुण्य पुष्पित काननः। यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम्॥—वा० रा० अ० का० तृ० स० ४।
३ अ० रा० अयोध्या काण्ड ६।५२-५३ वा० रा० १।११२।२३,२६ तथा ६।१२१।१६८ १६।
४ (क) कवितावली, अ० का० छ० स० ११ पृ० २७। (ख) हनुमन्नाटक। अंक ३ श्लोक १२वाँ।
५ अ० रा० कि० का०, ५ ६, वा० रा० सु० का० ३७-७।८।
६ वही (अ० रा०) ६, २५।२६।

जाने पर भी जब सीता की सुधि नही मिलती है तो बन्दर चिंतित हो उठते हैं। तुलसीदास ने उस चिंता को इस तरह व्यक्त किया है।

इहा विचारहि कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि करहि परस्पर बाता। बिन सुधि लएँ करब का भ्राता॥
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहु प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहा न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥[1]

शरद ऋतु के कुछ दिन बीतने पर लक्ष्मण के धमकाने के पश्चात सुग्रीव ने यदि बन्दरो को कार्तिक मास के आरम्भ मे भी सीता की खोज के लिए भेजा और सुग्रीव द्वारा दी गई एक मास की अवधि बीतने पर बन्दरो ने चिन्ता मे भी कुछ दिन बिता दिए तो भी हनुमान का मार्गशीर्ष के अंतिम अथवा पौष के प्रथम सप्ताह मे लंका जाना बन जाता है। तभी रावण सीता को उक्त धमकी देता है। ठीक चैत्र मास मे राम को घर भेजने की व्यवस्था की दृष्टि मे रखकर दो मास की अवधि अधिक संगत है क्योंकि यदि एक मास की ही अवधि दी गई होती तो सीता हनुमान द्वारा राम को सन्देश भेजती हुई यह कहने के बदले कि वह उनके बिना एक मास से अधिक जीवन धारण नहीं करेगी[2] यह कहती कि वह उनके बदले एक पक्ष से अधिक जीवित नहीं रहेगी। एक माह बीतते ही रावण उसे अपना प्रातराश बना लेगा—इसी बात को न होने देने के लिए वह पहले मरना चाहेगी और ऐसी स्थिति मे राम को माघ सुदी द्वितीया से[3] पहले आक्रमण करना पड़ता और ७२ दिन के युद्ध तथा १५ दिन के मध्य विराम के बाद दी हुई तिथि से[4] पहले ही रावण के मारे जाने पर चैत्र मास के अन्त होने मे फिर भी कुछ दिन रहते और उस अवस्था मे राम दस पाँच दिन लंका मे आराम से रह सकते थे भरत वनवास की अवधि बीतने अर्थात चैत्र मास तक जीवित रहता ही उसकी दशा स्मरण कर राम को अयोध्या लौटने की उतनी त्वरा नहीं होनी चाहिए थी जितनी कि स्वयं तुलसी तक दिखाते हैं

१ रामचरितमानस तुलसी, कि० का०, पृ० ६७८—गीता प्रेस गोरखपुर (म० सा०) स० २०१८ बारहवाँ संस्करण।

२ वा० रा० सु० का०, ४० १०।

३ आग्नेय रामायण पृ० २२।

४ द्रष्टव्य—आग्नेय रामायण पृ० २३ जिसके अनुसार रावण चैत्र बदी चतुर्दशी को मारा जाता है और वैशाख सुदी चतुर्थी को राम अयोध्या को प्रस्थान करते हैं। पष्ठी के दिन वे नन्दीग्राम मे भरत को मिलते हैं।

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्पसम-जात।[1]

लका म कुछ दिन बिताना उनके लिए अनिवार्य हो जाता क्योंकि भरत से पूर्व घर जाने से पिता की आज्ञा का भग हो होता। वाल्मीकि और अध्यात्म रामायणों के अनुसार राम अवधि बीतने पर पचमी के दिन भारद्वाजाश्रम पहुँचते हैं।[2]

तुलसीदास द्वारा किये गए उक्त सशोधन के पीछे कोई विशेष बात नहीं दिखाई देती है। वाल्मीकि रामायण म सदेश भेजती हुई सीता जब कि पहले कहा जा चुका है यह भी कहती है कि वह राम से पृथक रहकर केवल एक मास ही जीवित रहेगी[3] सम्भवत इस आशय से कि राम यथाशीघ्र सीता को छुड़ाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दे ताकि दो मास की अवधि बीतते-बीतते उसे मुक्त कर लिया जाय और इस तरह वह रावण के अतराल बनने से बच जाय या फिर वह मरकर उस दुर्गति का परिहार कर सके। तुलसीदासजी ने वाल्मीकि रामायण की सीता के इन शब्दों से ही निर्णय कर लिया कि रावण ने सीता को एक ही मास की अवधि दी और उसी रामायण के दो मास की अवधि वाले श्लोकों पर विचार ही नहीं किया अथवा इस अनौचित्य को दूर करने के लिए उन्हें प्रक्षिप्त मान लिया हो और इस विचार से जान बूझकर सशोधन किया हो कि दो मास अवधि रहने पर सीता एक मास के बीतते ही प्राणत्याग क्यों करे। फलस्वरूप उन्होंने दो मास की रावणप्रदत्त अवधि को भी एक मास म परिणत कर दिया। भानुभक्त ने अध्यात्म रामायण की बात ज्यों की-त्यों रखकर अपने को तटस्थ बनाए रखा।

तुलसीकृत 'मानस' आदि राम भक्ति सम्बन्धी रचनाओं और भानुभक्तीय रामायण की तुलना सम्बन्धी निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(क) जहा तुलसी ने शिव-पार्वती के सवाद म मानस की विस्तृत भूमिका बाँधी है वहाँ भानुभक्तीय रामायण म अत्यधिक सक्षेप से काम चलाया गया है।

(ख) रामादि का बचपन अध्यात्मरामायण म भी कम है। भानुभक्त ने इस मार्मिक स्थल का सकेतमात्र किया है, किन्तु तुलसी ने अपनी रचनाओं मे दशरथ कुमारों की बाललीलाओं को दिखाने का भरसक प्रयत्न किया है।

---

१ रामचरितमानस पृ० ७५६, ल० का० गीता प्रेस गोरखपुर, मझला साइज सटीक, सवत २०१८।

२ (क) अ० रा०, सु० का०, १४।१५ श्लोक।
(ख) वा० रा०, सु० का० १२७ १।

३ धारयिष्यामि मास तु जीवित शत्रुसूदन।
मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज।—वा० रा० सु०का०,४० १०।

(ग) अध्यात्मरामायण में अहिल्या को तपोमग्न दिखाया गया है।[1] यह स्पष्ट नहीं है कि वह शिलारूप है या शिलावस्थित। दोनों बातें मानी जा सकती हैं। भानुभक्त ने तुलसी के समान अहिल्या को शिलारूप दिखाया है। किन्तु तुलसी के विपरीत राम से ब्राह्मणी अहिल्या को प्रणाम करवाया है। तुलसी के राम अहिल्या को नमस्कार नहीं करते हैं बल्कि अहिल्या ही राम का नमन करती है।

तिन लाई करणा गरी हजुरले कुल्चो दिया हो भनी
यसतो बिति गुया जस ति ऋषि का श्रीराम तुरन्त गया
देख्या पत्थर एक ठूलो र रघुनाथले कुल्चि दींदा भया
सुन्दर मूर्ति भयी खडा भयि नवीन ताहाँ अहल्या पनी।[2] —भानुभक्त

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरण कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥
परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहि आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही।[3]

—तुलसीदास

अध्यात्मरामायण की अहिल्या बड़ी स्तुति करती है किन्तु भानुभक्त ने स्तुति को छोड़ दिया। तुलसी ने स्तुति तो करवाई, किन्तु अध्यात्मरामायण के समान वेदान्त की दुर्बोध बातें नहीं आने दीं।

(घ) भानुभक्त अध्यात्मरामायण का आधार लेकर विश्वामित्र के आश्रम से जनकपुरी जाते समय ही केवट से चरण धोने की हठ करवाते हैं, किन्तु तुलसी का केवट वनवास के समय राम के चरण धोता है।

(ङ) परम्परा तथा प्रमाणों के विपरीत अध्यात्मरामायण के श्लोक[4] का यथासंख्यानुदर्शन की दृष्टि से ग्रथन कर भानुभक्त ने भरत और शत्रुघ्न की पत्नियों के नामोल्लेख में गलती की है। वे भरत की पत्नी श्रुतकीर्ति तथा शत्रुघ्न की माण्डवी मानते हैं। तुलसी ने इसके विपरीत माण्डवी को भरत की और श्रुतकीर्ति

---

१ दर्शयामास चाहल्यामुग्रेण तपसा स्थिताम।
राम शिला पदास्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम। अ० रा०, बा० का०, ५ ३६।
२ भा० अ० रा० बा० का०, पृ० २४।
३ रामचरितमानस पृ० २०८।
४ उर्मिला चौरसौ कन्या लक्ष्मणाय ददौ मुदा।
तथैव श्रुतकीर्ति च माण्डवीं भ्रातृ कन्यके।
भरताय ददावेका शत्रुघ्नायापरां ददौ॥—अ० रा० बा० का० ६ ५५।५६।

को शत्रुघ्न की पत्नी माना है।

सीता पत्नि भयिन रमापति कि ता लक्ष्मण जि की उर्मिला।
पत्नी हुन श (श्रु)तकीर्ति ता भरत की शत्रुघ्न की माण्डवी।[1]

—भानुभक्त

कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुनसील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई।
जानकी लघु भगिनी सकल सुन्दरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै।
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी।[2]

भानुभक्त ने अध्यात्मरामायण के श्लोक के एका अपरा शब्द पर ध्यान न देकर उक्त अनुवाद कर दिया। वाल्मीकि रामायण में यह बात स्पष्ट कह दी गई है कि भरत का विवाह माण्डवी से और शत्रुघ्न का विवाह श्रुतकीर्ति से हुआ।[3]

(च) तुलसीदास प्रसन्नराघव का आधार लेकर राम और सीता का विवाह राम लक्ष्मण परशुराम संवाद के बाद कराते हैं। भानुभक्त अध्यात्मरामायण के अनुसार पहले विवाह सम्पन्न करवा देते हैं। पर लौटती हुई बरात को परशुराम रास्ते में मिलते हैं।

(छ) अध्यात्मरामायण में परशुरामजी का राम से क्रुद्ध होने का प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि राम उनके नाम को धारण किए हुए हैं।[4] किन्तु भानुभक्त यहाँ तुलसी के प्रभाव में आकर परशुराम के क्रोध का कारण धनुभंग ठहराते है

कस्को पुत्र त होस बता मकन रे जारो पुरानो धनू
भाच्नमा अति गर्व भो तकन ता धेरै कुरा क्या भनू

---

१ भा० अ० रा०, बा० का० पृ० ३०।
२ रा० च० मा०, पृ० ३०१ ३०२।
३ तथवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत।
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन।
शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वरः।
श्रुतकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
—वा० रा०, बा० का० ३७।३१ ३३
४ त्वं राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम।
द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै।
—अ० रा०, बा० का०, ७।११।

यो ता हो हरिको धनू बिर भया तांदो यसमा चढा
भद खुब रिसले रह्या परशुराम रामक अगाडी खडा ॥[1]

अवश्य ही धनुष के विषय म तुलसी और भानुभक्त के परशुराम की धारणा भिन्न भिन्न हैं। तुलसी के परशुराम 'धनुही सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल ससार'[2] कहकर शिव धनुष को कठोर बताते हैं किन्तु भानुभक्त के परशुराम उसे जीर्ण शीर्ण अतएव सुभज्य बताते हैं जबकि ऐसी बात तुलसी का लक्ष्मण कहता है।

(ज) भरत राम को घर लौटाने के लिए वन जाता है और हठ ठानता है कि यदि राम घर नही लौटे तो वह भी साथ चलेगा अथवा प्राण-त्याग कर देगा। तुलसी के राम जब भरत की बात को मानने लगते है तभी उसके हृदय म विचार पैदा होता है कि रामचन्द्रजी पिता की आज्ञा पूर्ण करने के लिए राज्य छोडकर वन आये हैं। उसके स्नेह के कारण यदि उन्होंने घर लौटना स्वीकार किया तो यह उसकी बडी नीचता होगी

जो सेवक साहिबहि सकोची निज हित चहसि तासु मति पोची ।[3]

इसलिए वह दूसरे क्षण ही कह उठता है—

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव।
जो सिर धरि धरि करिहि सब मिटिहि अनट अवरेब ॥[4]

भानुभक्त के राम भरत को समझाने क लिए गुरु को सकेत करते हैं। उनके समझाने पर भरत मान जाता है।[5]

(झ) भानुभक्त का शरभग चितारूढ हो आत्महत्या करता है भले ही भगवान का दर्शन करने के कारण ससार मे मुक्त हो जाता है[6] किन्तु तुलसी आत्महत्या के दोष से मुक्त करने के लिए योगाग्नि पैदा करवाते हैं।

अस कहि योग अगनि तनु जारा
राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा।[7]

---

१ भा० भ० रा०, बालकाण्ड पृ० ३१ ३२।
२ रा० च० मा०, पृ० २५७।
३ वही, पृ० ५४६ अ० का०।
४ वही पृ० ५४८।
५ भा० भ० रा० अ० का०, पृ० ६१, अ० का०।
६ असल ताहि चिता बनाइ हरि को दर्शन नजर ले गरी।
ताहा देह दहन गरी चलि गया ससार सागर तरी॥
—भा० भ० रा०, पृ० ४६।
७ रा० च० मा० अ० का०, पृ० ६०५, गी० प्रे० गो०, म० स० १२वां।

इसी तरह पीछे शबरी का हाल हुआ है।[1] भानुभक्त की शबरी चिता में जल जाती है। तुलसी यहाँ भी उसे योगाग्नि द्वारा जलवाते हैं।[2] आत्महत्या से अपने पात्रों को बचाना—यह बात तुलसी के चरित्र चित्रण की प्रमुख विशेषता है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने ऐसी बहुत सी घटनाओं का उल्लेख किया है जहाँ आधार ग्रन्थों—अध्यात्मरामायण और वाल्मीकि रामायण के पात्र स्वयं जीवनान्त करना चाहते हैं किन्तु तुलसी ने उनके उस स्वभाव को परिवर्तित कर पाठकों के सम्मुख रखा है।[3]

(ञ) तुलसीदास सीताहरण से पहले राम से सीता को अग्निप्रवेश की आज्ञा दिलाते समय यह सूचित नहीं करवाते हैं कि भिक्षुरूप में रावण तुम्हारा हरण करेगा।[4] यह सम्भवतः इसलिए कि रस को दृष्टि में रखकर इसे गुप्त रखने की आवश्यकता थी। यद्यपि दोष परिहार इतने से ही सम्भव नहीं होता है कि राम की लीला को सीता न जानें। रस की दृष्टि से यह भी सन्तोष है कि राम सीता को अग्नि में छिपाकर पीछे छाया सीता का रावण द्वारा अपहरण होने पर रोना प्रारम्भ करें। राम का रुदन तभी पाठकों को प्रभावित करता जबकि या तो आश्रय राम सीता के अग्नि प्रवेश की अभिज्ञता न रखते या फिर पाठक इस रहस्य को न जानते पर हाँ, आलम्बन को हरण की बात न बताकर कवि ने सीताहरण वृत्तान्त के नीरस स्वाँग की अस्वाभाविकता को कुछ तो कम किया। तुलसी की छाया सीता के लिए रावण द्वारा हरण अनाशंकित अनुभव है। परन्तु अध्यात्मरामायणानुयायी भानुभक्त के राम सब कुछ पहले ही सीता को बता देते हैं।

सीते! अदृश्य भइ लौ बस अग्नि माहां
छाया सिता पनि बनायर छोड याहा
एक भिक्षु को रुपलि रावण आज आई
हर्या छ दुष्ट तिमिलाइ स्वरूप छपाई।[5]

(ट) तुलसीदास का लक्ष्मण नहीं जानता है कि पंचवटी की वह सीता छायारूपिणी है जिसका रावण ने अपहरण किया और न यही जानता है कि स्वर्ण मृग मारीच है

लछिमनहूँ यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।[6]

---

१ भा० भ० रा० पृ० ६४।
२ रा० च० मा० पृ० ६४१।
३ तुलसीदास एक समालोचनात्मक अध्ययन डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद पृ० २६५।
४ रा० च० मा०, अ० का०, पृ० ६२६।
५ भा० भ० रा० अ० का पृ० ५५।
६ रा० च० मा०, पृ० ६२६।

भानुभक्त का लक्ष्मण जानता है कि स्वर्ण मृग राक्षस मारीच है। उसे इस बात तक की जानकारी है कि वह 'लक्ष्मण' पुकारकर छल कर रहा है। इस बात का भी निषेध नहीं किया गया है कि वह सीता के अग्निप्रवेश की बात जानता है। फलत यह निष्कर्ष निकलता है कि लक्ष्मण भी राम की तरह सारे स्वाँग के रहस्य को जानता है।

छल्का बचन सुनि सिता जि बहुत डराइन
लक्ष्मण जिलाइ तिमि जाउ भनी अह्राइन
लक्ष्मण जिले हुकुम यो सुनि विन्ति पाया
हे माइ ! जो मृग थियो प्रभु ले त मार्या
यस्तो कहाँ मृग थियो मृग रूप धार्ने
मारीच राक्षस थियो र त आज मारो
ठाकुरजिले तहिं गिराइदिदा कराओ
हे भाइ लक्ष्मण ! भन्या भनि छल गरायो
ज्योति स्वरूप तहिं भयो र मिल्यो हरीमा
लक्ष्मण जिका बचन सुनि सिया रिसाइन।[1]

इस तरह न केवल राम बल्कि लक्ष्मण भी लीला करता हुआ दृष्टिगत होता है। सभी पात्र सब कुछ जानते है फिर भी राम मृग के पीछे दौड़ते हैं। सीता हा लक्ष्मण !' सुनकर डर दिखाती और लक्ष्मण के समझाने पर क्रुद्ध होती है और लक्ष्मण जान बूझकर सीता की बात से खिन्न हो उठता है। सीता हरण होने पर राम फूट फूटकर रोने लगते हैं जबकि उन्हें ही नहीं पाठकों को भी पता है कि सीता को छिपा दिया गया है। परिणाम स्वरूप चरित्र चित्रण और रस परिपाक की दृष्टि से भानुभक्तीय रामायण में तुलसीकृत रामचरितमानस से भी अधिक दोष दिखाई देते हैं। लक्ष्मण भले ही मारीचादि की सभी बातें जानता उन्हें लक्ष्मण के शब्दों में पाठकों के समक्ष रखकर भानुभक्त ने सारे सन्दर्भ को सर्वथा अस्वाभाविक स्वाँग बना दिया है।

(ठ) अध्यात्म[2] तथा वाल्मीकि[3] रामायणो के अनुसार रावण अपने सिरों को काटकर ब्रह्मा को तुष्ट करता है और ब्रह्मा ही उसे वरदान देते हैं। यही बात भानुभक्त भी लिखते हैं

१ भानुभक्तीय रामायण, पृ० ५७।

२ अथ वर्ष सहस्रे तु दशमे दशम शिर। छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्राप्तश्चाथ प्रजा पति। वत्स वत्स दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत।

—अध्यात्मरामायण उत्तर काण्ड, सर्ग २ ११।

३ अथ वर्ष सहस्रे तु दशमे दशमं शिर।
छेत्तुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामह। वा० रा०, उ० का० १० १२।

नौ शिर होम गिरि गिर दस पनि तहाँ दीने तयार भो जब
ब्रह्मा आइ हटाइ वर माग दिन्छु भनिले इच्छा बमोजिम भनी ॥[1]

तुलसी के अगस्त्य बालकाण्ड म रावण की जो कथा सुनाते हैं उसके अनुसार रावण की तपस्या से प्रसन्न तो ब्रह्मा अकेले हुए हैं किन्तु वरदान नकर और ब्रह्मा दोनो मिलकर देते हैं। यहाँ सिरो के समपण की बात उल्लिखित नहीं हुई।

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥

\+ \+ \+

एवमस्तु तुम्ह बड तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा॥[2]

सिरों को समपण करने का उल्लेख तुलसी पीछे रावण अगद सवाद म करते हैं। रावण अपनी वीरता का बखान करता हुआ अगद स कहता है कि उसने अपने सिरो को फूलो की तरह उतारकर अनेक बार शिव की पूजा की है।[3]

इस तरह जहा भानुभक्त का रावण विरचिभक्त है वहाँ तुलसी का रावण विरचि और शिव दोनो का उपासक है और सिर तो उसने केवल शिव को ही चढ़ाये।

(ड) अध्यात्मरामायण का अनुवाद करने वाले भानुभक्त ने लका म युद्ध क बीच राम के समक्ष सप्तर्षियो को उपस्थित किया है तथा उनके शब्दो म रावण और कुम्भकर्ण स भी रावणि (मेघनाद) क वध का महत्त्व अधिक आका है। यहा राम के पूछे जाने पर अगस्त्य द्वारा रावण का जन्मादि वृत्तान्त वर्णित है। तुलसी ने यह कथा बालकाण्ड म दिखा दी है और सप्तर्षियो को युद्धस्थल म नही आने दिया है।

(ढ) तुलसी राम द्वारा रामेश्वर की स्थापना लकाकाण्ड म ही करवा देते हैं। भानुभक्त उत्तरकाण्ड म जाकर उनसे करोडो लिंगो की स्थापना करवाते हैं। दोनो के राम शिवोपासक है और वे दोनो मूर्तिपूजक है किन्तु उपासना के स्थान और समय भिन्न भिन्न हैं।

(ण) भानुभक्त ने भरत राम का मिलन युद्धकाण्ड म कराया किन्तु तुलसी ने उसे उत्तरकाण्ड म स्थान दिया है। प्रबन्ध की दृष्टि से यही समीचीन प्रतीत होता है। युद्धकाण्ड की समाप्ति रावण वध पर ही हो जानी चाहिए। राम-भरत मिलन यह दूसरा प्रकरण है जिसका युद्धकाण्ड स पृथक दिखाया जाना

१ भा० अ० रा०, पृ० १८३।
२ रा० च० मा०, पृ० १७६ १८०।
३ रा० च० मा० पृ० ७६२।

उपयुक्त है। शौय पयोधि के लवणजल म मिलनमाधुरी का विलयन अनुपयुक्त वतान्तसकरता है।

भानुभक्त की शैलीगत मौलिकता

पहले लिखा जा चुका है कि भानुभक्तीय रामायण अध्यात्मरामायण का अनुवाद है। बालकाण्ड को छोडकर अन्य काण्डो म भानुभक्त न कही शब्दानुवाद तो कही भावानुवाद किया है। बालकाण्ड म भानुभक्त की इतनी ही मौलिकता दिखाई देती है कि उन्होन स्तुतिस्थलो को छोड दिया है। शेष बातें लगभग 'दीप स्थान दीप, पिण्डस्थाने पिण्ड' की पद्धति पर ज्यो की-त्यो लिख दी हैं। इस तरह भानुभक्त न अध्यात्मरामायण स भिन्न कदाचित ही कोई मौलिक बात कही हो। हा, कतिपय स्थलो पर उनकी लेखनी की एसी छाप पडी है कि वहाँ उनका निजीपन निखर आया है अतएव मूलत अनुवादक होने हुए भी भानुभक्त की कही कही शैलीगत मौलिकता निर्विवाद है। उदाहरणाथ अध्यात्मरामायण म हनुमान के समुद्र पार पहुचने का वणन इस तरह किया गया है

पुनरुत्प्लुत्य हनुमान दक्षिणाभिमुखो ययौ
ततो दक्षिणमासाद्य कूल नाना फल द्रुतम।
नाना पथि मृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम
ततो ददश नगर त्रिकूटाचल मूधनि ॥[1]

तुलसी ने इस सक्षिप्त वणन को सात चौपाइया और दो चतुष्पदी छन्दा म व्यक्त किया

ताहि मारि मारुत सुत बीरा। बारिधि पार गयउ मति धीरा।
तहा जाइ देखी बन सोभा। गुजत चचरीक मधुलोभा।
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मग वृन्द देखि मन भाए।
सल बिसाल देखि एक आगें। तापर धाइ चढेउ भय त्यागें।
उमा न कछु कपि क अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई।
गिरि पर चढि लका तेंहि देखी। कहि न जाय अति दुग विसेषी।
अति उतग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा।
कनक कोट विचित्र मनि कृत सुदरायतना घना।
चहु हट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहुविधि बना।
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गने।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बने।
बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गन्धव कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।

१ अ० रा० सु० का०, १ ३६।

कहुँ माल देह बिसाल सल समान अतिबल गजहीं।
नाना प्रकारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं।[1]

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' और भानुभक्तीय रामायण का प्रधान स्रोत अध्यात्मरामायण है। तुलसी ने उसे विशदता प्रदान की तो भानुभक्त ने प्राय उसका सक्षेप किया। इस स्थल पर भी हम देखते हैं कि तुलसी का वर्णन अध्यात्म रामायण की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा कवित्वपूर्ण है। भानुभक्त भी यहाँ अपनी प्रवृत्ति के विपरीत पूर्वोक्त मूल से अधिक लिखते हैं और यहा उनकी शैली भी अपनी है। तुलसीकृत उक्त वर्णन से भी भानुभक्त का वर्णन अधिक भव्य है। उसमे प्रकृति की सजीवता अपेक्षाकृत अधिक है

ताहाँ देखि कुदी गया र हनुमान पौच्या जस तीर मा
लका पूरि तहाँ त्रिकूट गिरिका देख्या उपर शीरमा
वरि परि ताँहि तीरमा पनी वक्ष फल फुल
परि छ जउन बन मा गदछन पक्षिल गुल
भ्रमरहरु लता का फूलमा हल्लि हल्ली
घुनुनु घुनुनु गर्दै हिंडदछन वल्लियल्ली
नजर थरि परी को जो छ शोभा नजर भो
त्रिकुट गिरि उपर का पूरिमा फेर नजरगो।[2]

यद्यपि ऐसे स्थलो की विरलता है फिर भी भानुभक्त की शैलीगत मौलिकता तथा उनकी कवित्वशक्ति का इनसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

नेपाली कवि रघुनाथ और हिन्दी कवि तुलसी

अध्यात्मरामायण का दूसरा अनुवादक कवि रघुनाथ है। मूलग्रन्थ के ठीक भाव को नेपाली म उतारने की अक्षमता से ही इनके 'सुन्दर काण्ड' म यत्किंचित मौलिकता देखी जाती है वह प्राय सक्षेप और सम्प्रसारण रूप म प्रकट हुई है। कही किसी स्थल का भावमात्र लिया गया है तो कही दो एक शब्द अपनी ओर से जोडकर छन्दोविधान तथा भावपूर्ति का आग्रह निभाया गया है। कही अशुद्ध अनुवाद हुआ है। उस जान-बूझकर किया गया परिवर्तन मानकर मौलिकता से मडित करना अनुपयुक्त है। रघुनाथ न रामायण के पूरे काण्ड लिखे या केवल सुन्दर काण्ड—यह अभी तक अनिर्णीत है। जब तक अन्य काण्ड उपलब्ध नही हो जाते तब तक रघुनाथ का कवित्व केवल सुन्दरकाण्ड पर ही निर्भर है। यहा यह देखना कि इस काण्ड म व कौन स स्थल हैं जिनसे हिन्दी रामभक्ति-काव्य के अग्रणी कवि

१ रा० च० मा०, सु० का०, पृ० ६८८ ८६।
२ तुलनात्मक सुन्दर काण्ड, बा० रा० आचार्य भा० रा० पृ० १७ १८।

तुलसी के मानस का उल्लेखनीय साम्य अथवा वैषम्य है। मनियार सिंह के 'सुन्दर काण्ड' से इसकी तुलना करना इसलिए ठीक नहीं है कि दोनों कवियों के रचना-विधान में अन्तर है। पहले की शैली मुक्तकात्मक और दूसरे की इतिवृत्तात्मक है।

तुलसी लंकादहन के बाद सीता से हनुमान को विदा दिलाते हैं जबकि रघुनाथ अध्यात्मरामायण के अनुसार एक बार हनुमान को चूड़ामणि दिलाते हैं, फिर उससे लंका-दहन करवाते हैं और तब जाने समय एक बार फिर सीता से अन्तिम विदा लिवाते हैं। इस तरह रघुनाथ का हनुमान सीता से दो बार विदा लेता है। वर्तमान वाल्मीकि रामायण में भी हनुमान दो बार विदा लेता है। उसी की छाया अध्यात्मरामायण पर पड़ी। विदा लेने की कथावस्तु की आवृत्ति के मूल में कोई विशेष बात नहीं दिखाई पड़ती। यह वाल्मीकि रामायण की त्रुटि ही पीछे की रामकथाओं में चलती रही। आश्चर्य तो यह है कि लंका जलाकर जब हनुमान सीता के पास लौटता है तब लंकादहन की कोई भी बात नहीं चलती। डा० एच० याकोबी का—जो वाल्मीकि रामायण के लंकादहन को प्रक्षिप्त मानते हैं—समर्थन करते हुए कामिल बुल्के ठीक ही लिखते हैं

'इस वर्णन की पुनरावृत्ति का कारण यह है कि लंकादहन के विस्तृत प्रक्षेप के बाद मौलिक कथावस्तु से सम्बन्ध स्थापित करना था और इसका सबसे सरल उपाय विदा का वर्णन दुहराना समझा गया है।'[1]

तुलसी ने एक ही बार—लंकादहन के अनन्तर—हनुमान से विदा लिवाई है और कथासूत्र को विच्छिन्न भी नहीं होने दिया है। अनुवादक भानुभक्त और रघुनाथ ने इस तरह सम्बन्ध निर्वाह कर आवश्यक परिवर्तन करने का प्रयास नहीं किया।

तुलसी का हनुमान लंकिनी से विदा पाकर विभीषण के पास जाता है जहाँ उसे सीता का पता लगता है परन्तु भानुभक्त और रघुनाथ हनुमान को लंकिनी के कथनानुसार ही सीता की खोज लेते हैं।

पायानन र कता म जा भनि तहाँ मनमा विचार भो जस।
सम्झया लंकिनी का वचन रति गया अशोक वन मा तस।[2]

—भानुभक्त

वहा देखी लंका यचन पनि सम्झया र मन मा।
गया त्य बाटा से गरिकन असोका उ वन मा॥[3] —रघुनाथ

सीता को प्रभावित कर अपने वश में करने को आये हुए रावण का

---

१ रामकथा कामिल बुल्के, पृ० ३६७।
२ तुलनात्मक सु० का० पृ० २८।
३ तुलनात्मक सु० का०, पृ० २८।

अध्यात्मरामायण में नीच भजन के हेर के समान बताता है।[1] रघुनाथ ने भी रावण को भजन का पगाड का रूप दिया है। तुलसी को यह उपमा अच्छी नहीं लगी। एक रमणी के हृदय की जीवन के लिए प्राप्त रावण को भजन का पगाड' कहकर विद्रूप बनाना उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इतना ही लिखा

तेहि अवसर रावन तहँ आवा।
सग नारि बहु किए बनावा।[2]

यहाँ बहु किए बनावा यथार्थ 'रावण और नारी दोनों का विशेषण हो सकता है। रावण का विशेषण बनकर यह कामुक मनुष्य के हृदय का अच्छा परिचय दे देता है। भानुभक्त का कथन यहाँ तुलसी के अनुसार ही है। अवश्य ही उन्होंने टाटव्यात की बात नहीं कही।

आयो रावण जल्दि तहिं नजिक सय स्त्री लिई साथ मा।[3]

तुलसी की सीता हनुमान से सन्देश नहीं कह पाती है। उसका कारण है सीताजी की पति दुःख कातरता। उन्हें इस बात का डर है कि यदि उन्होंने अपने दुःख सुनाए तो राम खिन्न हो जायेंगे।[4] भानुभक्त और रघुनाथ की सीता में ऐसी उदात्त भावना नहीं देखी जाती है। तुलसी की सीता का सा संयम उक्त कवियों की सीता में नहीं है। हनुमान के विदा होते समय वह अपने शोक को हृदय में दबा नहीं पाती। भानुभक्त की सीता अध्यात्मरामायण के विपरीत तुलसी की सीता के समान शोक को मन में धारण करने का प्रयत्न करती तो है[5] किन्तु क्षणमात्र उसका संयम टूट जाता है और वह कह उठती है

तिमि क्न नजिक मा देखि चुप छुसि हुन्थ्यां।
घडि घडि रघुनाथ का मिष्ट वार्ता म सुन्थ्या।
अब कसरि य मस्ता दुःख ले प्राण धरूं ॥[6]

नरो के साथ बानरों की मित्रता कैसे हुई—सीता के यह पूछने पर रघुनाथ का

---

१ दशास्य विंशतिभुज नीलाञ्जनचयोपमम।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्न पत्रखण्डेष्वलीयत॥—अ० रा० सु० का० २।१४।
२ रा० च० मा० सु० का०, पृ० ६६३।
३ तु० सु० का०, पृ० ३५।
४ कपि के चलत सिय के मन गहबरि होइ आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर नीर नयनन्हि छायो।
कहन चह्यो सदेस नहिं कह्यो पिय के जिय की।
जानि हृदय दुहस दुःख दुरायो॥ —गीतावली ५ १५।
५ तुलनात्मक सुन्दर कां०, पृ० १३७ १३८।
६ तुलनात्मक सु० का० बाबूराम पृ० १३८।

हनुमान सारा वृत्तान्त फिर दुहरा देता है जिसे अनावश्यक समझकर तुलसीदास छोड़ देते हैं और एक ही चौपाई में उस कथा का संकेत दे देते हैं जिससे पाठक पहले ही परिचित हो चुका है

नर बानरहिं संग कहु कैसे । कही कथा भइ संगति जैसे ।[१]

भानुभक्त ने यहाँ तुलसी की ही पद्धति अपनाई और कथा की पुनरावृत्ति के दोष से अपनी रचना को बचा लिया । संक्षेप में लिख दिया

फेर वृत्तान्त गरी सुनाई सब बात औंठी दिया पो तस । [२]

नेपाली कवि वाणी विलास पाण्डे और हिन्दी कवि तुलसी

वाणी विलास पाण्डे के चित्रकूटोपाख्यान पर रामचरितमानस की सुस्पष्ट छाया है । कई पद तो वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से ऐसे मिलते हैं कि उन्हें मानस का अनुवाद कहने में कोई हिचक नहीं हो सकती है । दोनों कवियों के राम के मुखचन्द्र का वनवासी चकोर की भाँति देखते हैं ।[3] राम लक्ष्मण के विषय में जानने की इच्छुक ग्रामस्त्रियाँ सीता से एक ही ढंग का प्रश्न पूछती हैं

स्यामल गौर किसोर बर सुन्दर सुषमा ऐन ।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन ।
कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।[४]

—तुलसीदास

जस का चन्द्र समान नेत्र सबको मन मोह पारी लिया ।
सुन्दर मा पनि कामदेव कन कडोर लाजार गराई दिया ।
यस्ता श्याम र गौर वर्ण दुई जो होलान जगत मा कउन ।
तस्मात सुन्न म चाहू गछु यिनिका नाता हजुर को जउन ।[५]

—वाणीविलास

दोनों कवियों के सीता प्रदत्त उत्तर भी हू ब हू मिलते हैं । उत्तर देने का एक ही ढंग है ।

१ रा० च० मा०, सु० का०, पृ० ६८६ ।
२ तुलनात्मक सु० का०, पृ० ७१ ।
३ (अ) एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा ।
रामचन्द्र मुख चंद चकोरा ॥ —रा० च० मा०, पृ० ४२५ ।
(आ) जस्त चन्द महा चकोर बहुत खुब हेर्छन् एक दिठ् भई ।
तस्त श्री रघुनाथ का सकल जन हेर्या निरन्तर रही ।
—चि० कू० उ०, तीसरा श्लोक ।
४ रा० च० मा० पृ० ४२७ ।
५ चि० उ०, पृ० ७वाँ पद ।

नेपाली कवि लेखनाथ की रचना 'मेरो राम' और हिन्दी राम भक्ति-काव्य-कृतियाँ

बीसवीं शती में भी समाज और राजनीति से तटस्थ होकर लिखा गया लेखनाथजी का 'मेरो राम' एक ऐसा काव्य है जिसमें कवि की भक्ति भावना उसके व्यक्तित्व को एक नया रूप प्रदान करती है। 'पिंजरा को सुगा', 'सत्यस्मृति', 'तरुणतपसी' आदि में युग को पहचानने और प्रभावित करने वाले लेखनाथजी चाहते तो 'मेरो राम' को उत्कृष्टतर तथा अपने स्वभावानुसार बौद्धिक बना सकते थे किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि 'मेरो राम' को जैसे उन्होंने अपने ही लिए लिखा हो। उनकी विद्वत्ता तथा मौलिक काव्य-साधना उस मात्रा में इस काव्य में नहीं मिलती जिस मात्रा में वे उनकी अन्य प्रमुख कृतियों में पाई जाती हैं। उनके विषय में श्री रत्नध्वज जोशीजी के निम्नलिखित शब्द व्यापक दृष्टि से सर्वथा युक्तियुक्त होते हुए भी 'मेरो राम' में पूर्णतः लागू नहीं होते हैं।

'विद्वत्ता को दृष्टिबाट यहाँ भन्दा तजिला लेखकहरू अनेक थिए। तथापि एकाग्रता पूर्वक नेपाली कविता को समृद्धिमा जीवन का बाजी लगाउनेहरूमा यहाँ हुनु हुन्छ। यहाँ का कृतिहरूमा अनुकरण का ठाउँ मौलिकता ले लियो।'[1]

लेखनाथजी मूलतः समाज और युग के कवि थे। उनकी अधिकांश कृतियों में सामाजिकता तथा लोकहितकारी तत्त्वचिंता विद्यमान है। श्री यज्ञराज सत्याल के विचारानुसार इनकी कविता में राष्ट्रीयता, आत्ममर्यादा स्वावलम्बन, आत्मविश्वास तथा अहिंसात्मक प्रतिरोध का चित्रण है और वे नेपाली साहित्य में बुद्धिवाद के जन्मदाता हैं।[2]

यह सब सही है, किन्तु 'मेरो राम' में उनका दृष्टिकोण सर्वथा आत्मपरक है। रचना का नाम भी इस बात की पुष्टि करता है कि उसका राम उनका अपना है। उसमें अपने युग और समाज को देखने वाली उनकी पैनी दृष्टि नहीं मिलती प्रत्युत सर्वसमर्थ प्रभु राम के समक्ष उनका लोकानपक्षी व्यक्तित्व नतमस्तक दृष्टिगत होता है। वे स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'मेरो राम' की प्रेरणा उन्हें तब मिली जबकि उन्होंने आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित देहाती पुरोगम सुना, जिसमें एक बुढ़िया स्लेट लेकर पाठशाला गई। वहाँ उसने अध्यापक से राम लिखना सीखा। इस पर वह हर्ष-गद्‌गद हो यह सोचकर आँसू बहाने लगी कि उसके हाथ से पतित पावन भगवान् राम का नाम लिखा गया जिससे उसके २१ कुल मुक्त हुए। यह सब सुनकर लेखनाथजी के हृदय में जो भावोदय हुआ उसके विषय में वे लिखते हैं

---

१ आधुनिक नेपाली साहित्य को झलक रत्नध्वज जोशी, पृ० ६।
२ नेपाली साहित्य की भूमिका यज्ञराज सत्याल, पृ० ५२।

भूला पाकर किष्किन्धा का राज्य और दारा सुग्रीव।
स्वयं ब्रह्म ही माया मय है कितना-सा है जग का जीव।[1]

लखनलालजी का यह परिवर्तन सम्भवत इसलिए करना पड़ा कि उन्होंने शरदागम को बिलकुल स्थान ही नहीं दिया अतएव वर्षागमन पर ही लक्ष्मण भेज दिया गया। यदि पूर्वोक्त दो पदों के बीच में शरद ऋतु का वर्णन होता तो फिर यह परिवर्तित रूप सामने न आ पाता अथवा उन्होंने यह सोचकर यह बदलाव किया होगा कि वर्षा ऋतु में विरह-व्यथा अत्यधिक सताती है फलत उन्होंने सुग्रीव को सीता की खोज करने के लिए प्रेरित करने के निमित्त अपने लक्ष्मण को वर्षा ऋतु में ही भिजवा दिया। इस बात का बड़ा खेद है कि उनके जीवित रहते हुए अनेक बार मिलने पर भी इस विषय में मैं उनसे पूछ नहीं पाया। अब वे इस संसार में नहीं रहे अतएव अनुमान द्वारा उक्त परिवर्तन की संगति मिलानी पड़ रही है। अन्य बातें प्राय अध्यात्मरामायण के अनुसार ही हैं और जिन बातों का अध्यात्म रामायण में अभाव है उनका समावेश मेरो राम में भी नहीं हो पाया है। उदाहरणार्थ—

(क) परशुराम बारात के अयोध्या लौटते समय रास्ते में मिलते हैं।

(ख) रावण अंगद संवाद का अभाव है।

(ग) युद्ध काण्ड में ही राम भरत का मिलन दिखाया गया है।

(घ) काण्डों की योजना तथा नामकरण भी अध्यात्मरामायण के अनुसार है।

(ङ) उत्तरकाण्डस्थ राम-गीता तो अध्यात्मरामायण का अक्षरश अनुवाद है। प्रमाण स्वरूप दो पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं —

जो भन्थ्यो त्यो अविद्या-जनित गुणमयी बुद्धिमा चित्प्रकाश।
सोही चिदभास लाई ऋषिमुनि सबले भन्दछन जीवनास।
शुद्धात्मा भास भन्दा अलग छ विभु त्यो साक्षि भावाभिराम।
जस्ले तत्व सम्झ्यो हृदय विच उही देख्छ सबन राम॥
तप्ताय पिण्ड हेर्दा जसरि सँग सँगै टप्प आयो फलाम।
देखिन्छन तो मिलेका गुण विनिमय ले ऐक्य भावाभिराम।
त्यस्तै यो सेन्द्रियान्त करण विच चिदादित्य तादात्म्य भास।
पर्दा अन्योन्य भासछन जड अजड दुब सर्वथा एकनास।[2]

इनमें किस तरह अध्यात्मरामायण की रामगीता की छाया पड़ी है—यह निम्नलिखित श्लोकों पर विचार करते ही स्पष्ट हो जाता है

---

१ साकेत पृ० ४३०।

२ मेरो राम' उ० का०, ३४ ३५वें श्लोक।

अनाद्य विद्योदभवबुद्धिबिम्बितो
जीव प्रकाशोऽयमितीयते चित ।
आत्मा धिय साक्षितया पृथक स्थितो
बुद्ध्यापरिच्छिन्नपर स एव हि ॥
चिद्विम्बसाक्षात्मधियां प्रसगत
स्त्वेकत्र वासादनलोक्तलोहवत ।
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते
जडाजडत्व च चिदात्मचेतसो ॥[1]

इस तरह लेखनाथजी का 'मेरो राम' अध्यात्मरामायण' का अनुजीवी है। रामगीता को छोडकर अन्य स्थलो पर उन्होने आध्यात्मरामायण की कथा को सक्षेप मे सूचित किया है जिसम उनकी मौलिकता उभर आई है। रामगीता म वे अनुवाद रूप म सामने आते हैं। अपने मेरो राम का वकल्पिक नाम 'रामायण सार देकर लेखनाथ स्वय स्वीकार करते हैं कि उनकी रचना किसी रामायण का सक्षिप्त रूप है। वह रामायण अवश्य ही आध्यात्मरामायण है। तुलसीदासादि भक्त हिन्दी कवियो ने भी आध्यात्मरामायण को आधार बनाया है, किन्तु वह उनके काव्यो के अन्यान्य स्रोतो म स एक प्रधान स्रोत है। रामकथा सम्बन्धी अन्य स्रोतो स भी उन्होने बहुत कुछ ग्रहण किया है।

मेरो राम मे कवि का दृष्टिकोण राम की गुणगरिमा का स्मरण कर हृष-गदगद होना प्रतीत होता है। जहा राम की आलोचना उनके मेरो राम मे देखी भी जाती है वह परम्परागत रामकथा के कारण। अपनी ओर से रामचरित्र म दोष देखना उनका मन्तव्य नही है। राम के चरित्र पर वाली ने प्रबल आक्षेप लगाया है। वह ठीक आध्यात्मरामायण[2] जसा ही है।

वाली ले राम देखी कठिन सित भने यो करा वीर ! राम !
व्याधा को तुल्य तिम्रो म उपर किन यो नीच मादान काम ?
तिम्रो वीरत्व लाई किन किन मन ले दिन्छ धिक्कार भारी।
कत्रो दुर्नाम होला लुकिकन यसरी वीर के ज्यान मारी।
वाली सुग्रीव हामी उभय सम थियौं खास तिम्रा निमित्त।
सीता को खोज गर्यौं म पनि किन धर्यो पापमा न्यग्र चित्त।
यो सुदा भ्रातपत्नी-गमन विषय को पाप यद्वा विराम।
देखाई बाण तानी कन चुप हुनुभो राजनीतिज्ञ राम' ॥[3]

---

१ अ० रा०, उ० का०, ५ (४० ४१)।
२ अ० रा० कि० का० २ सग ५१ ६२ श्लोक।
३ मेरो राम कि० का०, ६ १० पद।

अध्यात्मरामायण में जो उत्तर बाली को दिया गया है उससे लेखनायजी की तृप्ति नहीं हुई। यही कारण है कि उनके राम बाली के आक्षेप लगाने पर निरुत्तर हो जाते हैं। तुलसीदास अपनी ओर से कुछ न कहकर अध्यात्मरामायण के उत्तर को दुहरा देते हैं

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इनहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई॥[1]

छिप कर क्या मारा—यथायत इसका उत्तर न तो अध्यात्मरामायण ने दिया और न अनुवर्ती कवियों ने ही। आधुनिक युग के लेखनायजी ने इसे सर्वथा राजनीति बताकर समाधान करने का प्रयत्न किया है। बाली को छिपकर मारना व राम की राजनीतिज्ञता मानते हैं जैसा कि उनकी पूर्वोद्धृत पंक्तियों से स्पष्ट होता है। वस्तुतः अदृश्य होकर बाली के हनन में आदर्श राजनीति के दर्शन कदाचित् ही होते हैं। लखनायजी ने सुग्रीव और राम की मैत्री को तुलसी की तरह निश्छल[2] नहीं माना। वे सारे मैत्री-वृत्तान्त को परिस्थितियों की यथार्थता मानते हैं। राजनीति का ही एक उदाहरण समझते हैं। सुग्रीव और राम समान विपत्तिग्रस्त होने के कारण एक दूसरे के मित्र बन बैठे

दोउ कान्ता वियोगी नियति-वश दुख राज्य लक्ष्मी विहीन।
दोउ को बात गर्दी हृदय बिच उठयो भाव अर्के नवीन॥
मैत्री भी वाइ जोरी, उभयतिर भयो काय को इन्तजाम।
लागू भो सुनु बाली-बल चरित सब मित्रताबद्ध राम'॥[3]

पूर्ववर्ती अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस तथा साकेत का पढ़कर[4] 'मेरो राम' लिखने वाले प्रतिभा सम्पन्न लखनायजी के लिए राम के इस चरित में राजनीति को ढूंढने के प्रयास के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। 'राजनीति में सब चलता है' कहकर लोग सन्तोष कर लेते हैं। सुग्रीव से मैत्री कर महाबली बाली

---

१ रा० च० मा० कि० का०, पृ० ६६३।
२ (क) कीन्हीं प्रीति कछु बीच न राखा। —रा० च० मा०, कि० का०, पृ० ६५७।
(ख) लेत देत कछु सक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥ वही, पृ० ६६०।
३ मेरो राम कि० का०, ४था पद्य।
४ साक्षात्कार के समय कवि ने स्वीकार किया कि उसने 'साकेत' और 'मानस' को कई बार पढ़ा।

को छिपकर मारने के कारण राम को राजनीतिज्ञ मानना लखनाथजी के भक्तिपूर्ण हृदय का निर्णय है इस दिशा में वे तुलसीदासजी के अनुयायी हैं। तुलसी के राम प्रायः तीनों के पाप समान होने पर भी—बाली को तो व्याध की तरह मारते हैं किन्तु सुग्रीव और विभीषण को राज्य प्रदान करते हैं। यह स्वीकार करते हुए भी तुलसीदास भक्तिभावना के वशीभूत हो इस कार्य को भी अपने आराध्य राम का एक गुण मान लेते हैं

जेहि अघ हतेउ व्याध जिमि बाली। फिर सुकण्ठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूत विभीषण केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी॥[1]

यथार्थतः सुग्रीव राम मैत्री तथा बालिवध दुःखी व्यक्तियों का विपत्ति से छुटकारा पाने का एक सामान्य चातुर्यपूर्ण प्रयास है। यहाँ न कोई आदर्श है और न उत्कृष्ट कूटनीतिज्ञता ही। समान दुःखी आपस में मिल जाते हैं एक का दुःख दूर हो जाने पर जब वह दूसरे को भूल जाता है तो उसे क्रोध आता है, वह अग्नि के समक्ष बने हुए मित्र को मारने को उद्यत हो जाता है। तुलसीदास अध्यात्म रामायण के अनुसार मैत्री करवाते है और उसी के अनुसार राम कार्य को भूल जाने पर सुग्रीव को मारने के लिए राम को उद्यत करवाते हैं।[2]

जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली

यह लिख चुकने पर तुलसीदासजी को ध्यान आया कि उनके आराध्य का चरित्र सदोष हो रहा है तथा अध्यात्मरामायण का सहारा छोड़कर पहले उन्होंने जो भेदभाव रहित निश्छल मैत्री की बात कही थी उसका विरोध हो रहा है तो शिव के मुँह से पार्वती को कहलाया

जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहु कोहा॥
जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन रघुबीर चरित रति मानी॥[4]

अपने उपास्य के चरित्र को बनाये रखने के लिए लखनाथीजी ने राम के क्रोध का उल्लेख ही नहीं किया। साकेतकार ने राम का नाम ही नहीं लिया। लक्ष्मण अपने आप क्रोध कर सुग्रीव के पास पहुँचता है।[5]

परम्परागत रामकथा में राम के चरित्र पर एक और स्थान पर कालिख

---

१ रा० च० मा० बा० का०, पृ० ५३।
२ बाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत। अ० रा०, कि० का० ५ १० श्लो०।
३ रा० च० मा० कि० का० पृ० ६७१।
४ रा० च० मा० पृ० ६७१।
५ भूल मित्र का दुःख शत्रु सा सुख भोगे वह कैसा मित्र !
पहुँचे पुर में प्रकुपित होकर धावो लक्ष्मण चारु चरित्र॥—साकेत, पृ० ४३०।

लगी हुई दिखाई पड़ती है। वह है शूर्पणखा के नाक-कान कटवाना। आधुनिक काल के प्रतिभावान मौलिक एवं आदर्शवादी राम भक्त कवियों को अपने आराध्य के चरित्र का यह दोष सह्य नहीं होता है फलत नेपाली कवि लेखनाथ ने हिन्दी-कवि मैथिलीशरण गुप्त के समान ही कुछ परिवर्तन कर उसे हलका करने का सफल प्रयत्न किया है। लेखनाथ शूर्पणखा को सम्भोग लुब्धा बनाते हैं। उसकी इच्छा पूर्ण न होने पर वह सीता को खाने दौड़ती है। इस पर उसके नाक-कान काट दिए जाते हैं

बस्ता गोदावरी को तट निकट तहाँ पर्णशाला बनाई।
यद सम्भोग लुब्धा दशमुख भगिनी जजमायेर आयो।
इच्छा उस्को न पुग्दा भटपट दगुरी जानकी तर्फ उल्टो।
त्यस्ले गर्दा त्यसको श्रवण सँग सँग काटियो नाक चुल्ठो।[1]

एक कामुक नारी राम पत्नी को मारने दौड़े तो उसे दण्ड देना अनुचित नहीं किन्तु तुलसी के मानस में जिस तरह राम और लक्ष्मण उपहास करते हुए कामातुर शूर्पणखा को एक-दूसरे के पास यह कहकर भेजते हैं कि वह उसके साथ परिणय करेगा[2] उसके बाद एक राक्षसी का सीता पर प्रहार करने के लिए झपटना विशेष अनुचित प्रतीत नहीं होता और तब राम के संकेत पर लक्ष्मण द्वारा उसे विद्रूप बनाने में उसके चरित्र की उत्तमता संदिग्ध हो उठती है।

गुप्तजी भी शूर्पणखा को माहित-सी मानते हैं। जब वह सीता को खाने दौड़ी तो उसके नाक-कान काट दिये गए

शूर्पणखा रावण की भगिनी पहुँची वहाँ विमोहित सी।[3]

× × ×

आर्या को खाने आई वह गई कटाकर नासा कर्ण।[4]

शूर्पणखा के साथ रामकृत उपहास को त्यागकर इन दोनों कवियों ने सम्भवत अपने आराध्य के चरित्र की रक्षा करनी चाही।

लेखनाथजी की शैली की तुलना हिन्दी कवियों की शैली से

हिन्दी कवि हरिऔधजी ने वर्णवृत्तों को लेकर अतुकान्त रचना की। लेखनाथजी ने मेरो राम में वृत्त तो वर्णिक ही अपनाया किन्तु दो-दो चरणों में तुक मिला दिया। इस तरह उन्होंने एक ओर चतुष्पादी पद रचना कर पिंगल के वृत्त नियमों का निर्वाह किया और दूसरी ओर दो-दो चरणों में तुक रखकर

[1] मेरो राम' अ० का० १३वाँ।
[2] रा० च० मा०, अ० का, पृ० ६१६ १७।
[3] साकेत पृ० ४१२।
[4] वही पृ० ४१३।

तुलसीदासादि हिन्दी कवियों की चौपाई पद्धति का अनुकरण किया। लेखनाथजी की शैली सरल, सुबोध तथा संस्कृत शब्दावली संयुक्त है। देशकालज, नियति, कुटिल घटनाचक्र, सातंक दुर्विचार, दुर्भेद्यता शक्तिप्राय जैसे शब्दों की भरमार है। जो संस्कृत निष्ठता तुलसी की अवधी में विद्यमान है वही लेखनाथजी की नेपाली में पाई जाती है बल्कि तुलसी ने तो मानस में ग्राम संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है, लेखनाथजी की रचना में पूर्ण-कशोर उच्चाभिलाष गूढ़भावाभिराम सम्भ्रमाक्रान्त मुक्तहृग्राश्रु लब्धतारुण्य जैसे समस्त शब्दों का प्राचुर्य देखा जाता है। इसका कारण है उनका वर्णवृत्त को अपनाना। गण क्रम में ह्रस्व दीर्घ वर्ण मिलाने के लिए अप्रसिद्ध शब्दों की शरण में जाना अनिवार्य हो जाता है। हरिऔध जी का प्रिय प्रवास इसीलिए ऐसी संस्कृत का काव्य बन गया जिसकी केवल विभक्तियाँ हिन्दी की हैं और कहीं तो विभक्तियों के रूप में अथ हेतु इत्यादि शब्दों का प्रयोग होने पर वह विशेषता भी मिट गई है।

मेरो राम में लेखनाथजी का प्रिय अलंकार उपमा रहा है। उत्प्रेक्षा रूपक तथा श्लेष के भी दो एक उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे—

भाई का साथ यस्त कमसित रहँदा मोद माधुर्य धाम।
मानू कन्दर्प जस्तो प्रमसित हुनुभो पूर्ण कशोर राम॥[1]

तुलसीदासजी राम के सौन्दर्य का वर्णन करने में एक कामदेव को असमर्थ समझकर करोड़ों कन्दर्पों को उपमान बनाते हैं।[2]

राम के वनवास की बात सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठता है। क्लिष्ट परम्परित रूपक का प्रयोग करते हुए लेखनाथजी लिखते हैं

देखी त्यो वन दाहोद्यत विकट शिखा कोप को धूम धाम।
साम्न भो इन पानी सरस वचन को देशकालज्ञ राम॥[3]

लेखनाथजी ने रामादि चार भाइयों को विष्णु की चार भुजाओं का उपमा दी है। इसमें वे चारों भाइयों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं —

ती तात वैकुण्ठवासी दनुजरिपु का चतुर्बाहु का खास धार।
ओजस्वी बाहुजाता नृप दशरथ का दिव्य चार कुमार॥[4]

गुप्तजी दशरथ के कुमारों को ब्रह्म का चार पूर्तियाँ मानते हैं।[5] ज्ञाना

---

१ मेरो राम बा० का० १०वाँ।
२ रा० च० मा० बालकाण्ड पृ० १६८ बालकाण्ड, पृ० २१६ अ० का० पृ० ४२३।
३ मेरो राम—अयोध्या का० १०वाँ।
४ मेरो राम—बा० का० ११वाँ।
५ साकेत, पृ० ११।

कवियों के उपमानो पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति और सम्पूर्णता चारो के सहयोग मे है वियोग मे नही। लेखनाथजी की दृष्टि उनकी शक्ति की ओर अधिक है तो गुप्तजी की सर्वव्यापकता की ओर।

लखनाथजी के उपमानो मे 'याहुली' पक्षी स्थानीय विशेषता को रखने वाला उपमान है। 'मेरो राम' मे यह उपमान दो बार प्रयुक्त हुआ है। पहली बार अयोध्याकाण्ड मे जब राम कौसल्या के पास जाकर अपने वनवास की बात कहने और वन जाने की आज्ञा माँगते हैं, तो वह शल्यविद्धा 'याहुली' की तरह गतिहीन हो जाती है

कौशल्या शल्यविद्धा हतगति बिचरी याहुली तुल्य गिर्दा।[1]

शल्यविद्धा याहुली की स्थिति अतिशय करुणाजनक होती है। बाण सहसा आकर 'याहुली' को आहत करता है। उससे पूर्व वह वन्य आनन्दानुभवो के बीच खोई रहती है। कौसल्या की बहुत अच्छी समानता उसमे है। वह आनन्दित है उसके पुत्र प्यारे राम का राज्याभिषेक होने वाला है। उसे क्या पता कि आड मे बैठी कैकयी शिकार खेल रही है। राम द्वारा निवेदित समाचार कौसल्या के लिए सहसा आ लगा बाण है और एक क्षण पूर्व आनन्द मनाती हुई माँ की अवस्था दयनीय याहुली से सर्वथा मिलती है। कौसल्या वचनविद्ध होकर गिरी याहुली बाण विद्ध होकर।

इस स्थल पर हिन्दी के दो प्रमुख कवियो के वर्णन परीक्षणीय हैं तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त आश्रम कौसल्या की छटपटाहट का अधिक दिखाने की ओर प्रवृत्त हुए है।[2] उनके द्वारा खींचा गया कौसल्या का चित्र उसकी मनोव्यथा को वाणी प्रदान करता है जबकि लखनाथजी द्वारा अंकित रूपक सामाजिक का कारुणिक स्थल का ध्यान करवाकर उनके हृदय को झकझोरने का प्रयत्न करता है। हिन्दी कवियो के वर्णन पर पाठक को एक क्षण ठहरकर विचार करने की आवश्यकता हो सकती है किन्तु लेखनाथजी का वर्णन इतना सीधा तथा सद्य ग्राही है

---

१ मेरो राम अयोध्या का० ६वाँ।

२ (क) सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी।
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू।
नयन सजल तन थर थर कापी। माजहि खाइ मीन जनु मापी।
—रा० च० मा० अ० का०, पृ० ३७७।

(ख) काप उठीं वे मृदुदेही। धरती घूमी या वेही।
बैठी फिर गिर कर मानो। जकड गई घिर कर मानो।
आँखें भरीं भुवन रीता। उलट गया सब मनचीता॥
—साकेत, पृ० ६७ ६८।

तुलसीदासादि हिंदी-कवियों की चौपाई-पद्धति का अनुकरण किया। लखनाथजी की शैली सरल सुबोध तथा संस्कृत शब्दावली संयुक्त है। दशकालन, नियति, कुटिल, घटनाचक्र, सातक दुर्विचार, दुर्भेद्यता शक्तिप्राय जैसे शब्दों की भरमार है। जो संस्कृत निष्ठता तुलसी की अवधी में विद्यमान है वही लखनाथजी की नेपाली में पाई जाती है बल्कि तुलसी ने तो मानस में ग्राम संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है लेखनाथजी की रचना में पूर्ण-श्रृंगार उच्चाभिलाष गूढ़भावाभिराम, सम्भ्रमाक्रान्त मुक्तहर्षाश्रु, लग्वतारण्य जैसे समस्त शब्दों का प्राचुर्य देखा जाता है। इसका कारण है उनका वर्णवृत्त को अपनाना। गण क्रम में ह्रस्व दीर्घ वर्ण मिलाने के लिए अप्रसिद्ध शब्दों की शरण में जाना अनिवार्य हो जाता है। हरिऔध जी का प्रिय प्रवास इसीलिए ऐसी संस्कृत का काव्य बन गया जिसकी केवल विभक्तियां हिंदी की हैं और कहीं तो विभक्तियां के रूप में अथ, हेतु इत्यादि शब्दों का प्रयोग होने पर वह विशदता भी मिट गई है।

मेरो राम में लखनाथजी का प्रिय अलंकार उपमा रहा है। उत्प्रेक्षा रूपक तथा श्लेष के भी दो एक उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे—

भाई का साथ यस्त क्रमसित रहेंदा मोद माधुर्य धाम।
मानू कंदर्प जस्तो क्रमसित हुनुभो पूर्ण के शोर राम॥[1]

तुलसीदासजी राम के सौंदर्य को व्यक्त करने में एक कामदेव को असमर्थ समझकर करोड़ो कंदर्पों को उपमान बनाते हैं।[2]

राम के वनवास की बात सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठता है। श्लिष्ट परम्परित रूपक का प्रयोग करते हुए लखनाथजी लिखते हैं

देखी त्यो वन दाहोद्यत विकट शिखा कोप को धूम धाम।
लागन भो छन पानी सरस बचन को देशकालज्ञ राम॥[3]

लखनाथजी ने रामादि चार भाइयों को विष्णु की चार भुजाओं की उपमा दी है। इससे वे चारों भाइयों के महत्व को स्वीकार करते हैं —

साक्षात वकुण्ठवासी दनुजरिपु का चतुर्बाहु का खास चार।
ओजस्वी बाहुजाता नव दशरथ का दिव्य चार कुमार॥[4]

गुप्तजी दशरथ के कुमारों को ब्रह्म की चार मूर्तियां मानते हैं।[5] दानो

---

१ मेरो राम बा० का० १०वां।
२ रा० च० मा०, बालकाण्ड पृ० १६८ बालकाण्ड, पृ० २१६, अ० का० पृ० ४२७।
३ मेरो राम—अयोध्या का० १०वां।
४ मेरो राम—बा० का० ११वां।
५ साकेत, पृ० १६।

कवियो के उपमानो पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति और सम्पूर्णता चारो के सहयोग म है वियोग मे नही। लेखनाथजी की दृष्टि उनकी शक्ति की ओर अधिक है तो गुप्तजी की सवव्यापकता की ओर।

लखनाथजी के उपमाना म 'याहुली' पक्षी स्थानीय विशेषता को रखने वाला उपमान है। 'मेरो राम' म यह उपमान दो बार प्रयुक्त हुआ है। पहली बार अयोध्याकाण्ड म जब राम कौसल्या क पास जाकर अपने वनवास की बात कहते और वन जाने की आज्ञा माँगते हैं, तो वह शल्यविद्धा याहुली की तरह गतिहीन हो जाती है

कौशल्या शल्यविद्धा हतगति विचरी याहुली तुल्य गिर्दा।[१]

शल्यविद्धा याहुली की स्थिति अतिशय करुणाजनक होती है। बाण मस्सा आकर 'याहुली' को आहत करता है। उससे पूव वह कय आनन्दानुभवो के बीच खोई रहती है। कौसल्या की बहुत अच्छी समानता उसमे है। वह आनन्दित है उसके पुत्र प्यारे राम का राज्याभिषक होने वाला है। उसे क्या पता कि आड म बठी ककेयी शिकार खेल रही है। राम द्वारा निवेदित समाचार कौशल्या के लिए सहसा आ लगा बाण है और एक क्षण पूव आनन्द मनाती हुई माँ की अवस्था दयनीय याहुली से सवथा मिलती है। कौसल्या वचनविद्ध होकर गिरी याहुली बाण विद्ध होकर।

इस स्थल पर हिन्दी के दो प्रमुख कवियो के वणन परीक्षणीय ह तुलसीदास और मथिलीशरण गुप्त आश्रम कौसल्या की छटपटाहट को अधिक दिखान की ओर प्रवत्त हुए हैं।[२] उनके द्वारा खीचा गया कौसल्या का चित्र उसकी मनोव्यथा का वाणी प्रदान करता है जबकि लेखनाथजी द्वारा अकित रखाएँ सामाजिक को कारुणिक स्थल का दर्शन करवाकर उनके हृदय को झकझोरने का प्रयत्न करता है। हिन्दी कविया के वणन पर पाठक को एक क्षण ठहरकर विचार करने की आवश्यकता हो सकती है किन्तु लखनाथजी का वणन इतना सीधा तथा सद्य ग्राही है

१ मेरो राम अयोध्या का० ६वाँ।

२ (क) सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी।
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू।
नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी।
—रा० च० मा० अ० का०, पृ० ३७७।

(ख) काप उठीं वे मृदुदेही। धरती घूमी या वेही।
बठी फिर गिर कर मानो। जकड गई घिर कर मानो।
आँखें भरीं भुवन रीता। उलट गया सब मनचीता॥
—साकत, पृ० ६७-६८।

कि बिना विचारे पाठक सहसा कराह उठता है।

दूसरी बात लखनाथजी ने 'याहुली' उपमान को तारा के लिए प्रयुक्त किया है। अपने पति की मृत्यु पर खुल बालो वाली शोकात तारा राम के पास धरती पर गिर पडी और याहुली सी होकर रोने लगी।

भन्द शोकात तारा जहिन विच लखिन राम क पाउनेर।

लम्बा भांत्री फिजारी विरह बन रुंदे याहुली भ भयेर'[१]

नेखनाथ तुलसीदास की तरह तारा क केशा को खुल छोडकर उससे विलाप करवाते है किन्तु जब उस धरती पर गिरात हैं तो अपनी प्रिय उपमा को काम म लाते हैं। याहुली का आहत हाकर गिरना लखनाथजी की कल्पना की अत्यन्त मार्मिक एव कारुणिक स्थिति है। अध्यात्मरामायण म भी मुक्तमूधजा तारा तो दिखाई गई है किन्तु वहाँ उसके किसी उपमान क दशन नही होत हैं।[२]

अशोकवाटिका स्थित सीता क वणन म लखनाथजी ने मूल आधार ग्रन्थ अध्यात्मरामायण से पर्याप्त भिन्नता दिखाई है जबकि तुलसीदास उसकी लकीर पर ही चलते रहे। अध्यात्मरामायण की साता हनुमान को अत्यन्त कृश, दीन एकवेणी मलिनाम्बर धारिणी देवता की तरह धरती म सोई तथा राम राम जपता हुई दिखाई दी।[३] तुलसी इसी की छाया को ग्रहण करते हुए लिखत हैं

कृस तन सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।[४]

लेखनाथ ने जानकी का स्वाभाविक तथा अत्यधिक मार्मिक चित्र उपमालकार द्वारा उतारा है

देखी अत्यन्त मलो दिवस विधु सरी जानकी प्राणप्यारी।[५]

दिवस विधु सरी उपमा सस्कृत साहित्य के लिए भले ही पुरातन हो—*नेपाली साहित्य के लिए सवथा नवीन है। प्राणप्यारी जानकी के रूप की दिवस विधु* के साथ समता म स्वाभाविकता है। अवश्य ही यहा मलो शब्द की सगति तब तक ठीक नही बठती जब तक कि उसका अथ मन्द या धूमिल न मान ल। सीता के रूप का मथिलीशरण गुप्त न बडे कौशल से चित्रित किया है। उन्होंने लका क वभव को पृष्ठभमि के रूप म लेकर मथिली की दयनीय दुदशा को गहराई म

१ मेरो राम कि० का०, ११वा।

२ अ० रा० कि० का०, सग ३ ६ठा।

३ ददश हनुमान वीरो देवतामिव भूतले।
एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम्।
भूमौ शयानां शोचन्तीं राम रामेति भाषिणीम्।
—अ० रा० सु० का० पृ० २ १०।

४ रा० च० मा० सु० का० ६६३।

५ मेरो राम सु का० पृ० ३३।

उभारने का प्रयत्न किया है

> नील जलधि मे लका थी या नभ मे सन्ध्या फली थी,
> भौतिक विभूतियो की विधि सी छवि की छत्रच्छाया-सी,
> य त्रों मन्त्रो तन्त्रों की थी वह त्रिकूटिनी माया-सी
> उस भव वभव की विरक्ति-सी वदेही व्याकुल मन मे,
> भिन्न देश की खिन्न लता-सी पहुँचानी अशोक वन मे
> क्षण क्षण मे भय लाती थीं वे कण कण आँसू पीती थीं,
> आशा की मारी देवी उस दस्यु देश मे जीती थीं।[1]

उस भव वभव की विरक्ति सी' तथा 'भिन्न देश की खिन्न लता सी कहकर गुप्तजी एक ओर सीता की निरीहता तथा अतिशय विवशता को दूसरी ओर राक्षसियो के बीच उसके पृथक् अस्तित्व को व्यजित कर देते हैं। य उपमाएँ भी लेखनाथजी की उपमा की तरह मार्मिक हैं।

सीताहरण के बाद राम के विलाप को दिखाने का लेखनाथजी को अच्छा अवसर मिला था क्योकि उन्होंने अध्यात्म रामायण के हरण से पूव सीता के अग्नि प्रवेश की बात गुप्तजी की ही तरह छोड दी—फलत राम की विरह-व्यथा व अधिक स्वाभाविकता स दिखा सकत थे। लेखनाथजी के राम का विलाप उसी तरह प्रभावपूण बन सकता था जिस तरह गुप्तजी के राम का। तुलसी क राम के विलाप की भाति उसम नाटक नहा दिखाई देना, परन्तु सक्षेपीकरण की प्रवत्ति न लेखनाथजी को यहाँ रमने नहीं दिया और एक उपमा मात्र से उन्हाने राम की हृदय व्यथा की सक्षिप्त एव अपूण अभिव्यजना से ही सन्तोष कर लिया।

> हेर्दा फर्केर आई कन रघुवरले पणशाला तमाम।
> रात्री को चन्द्रिका ले रहित नभ सरी देखियो दु खधाम।
> हा सीता ! हाय देवी ! अहह ! तिमि कहाँ ! के छ मेरो विराम ?
> भन्दा भन्द हुनू भो विरहवश कठ ! चेतना शून्य राम ॥[2]

पणशाला को राम न कौमुदी विहीन नैश गगन सा दु ख धाम देखा सीता विषयक राम की भावना का परिचय इसम मिलता ता है किन्तु उसका विकास नहीं देखा जाता। चित्र अधूरा लगता है। हा सीता ! हा देवी ! कहकर चेतना-शून्य हो जाना—यह जीवन की यथार्थता है इसका रसात्मक भाव चित्र यहा नहीं खिच पाया है।

गुप्तजी लेखनाथजी की अपेक्षा अधिक ता रहत हैं किन्तु मत व भी नहीं। उसका कारण है यदि व यहा रमने लगते तो इससे प्रबन्ध सदोष हो जाता।

---

१ साकेत पृ० ४३१ ३२।
२ मेरो राम लेखनाथ पद २२वा।

उन्होने यह कथा उस हनुमान से कहलाई जो शक्तिमूर्छित लक्ष्मण को जिलाने के लिए सजीवनी बूटी लाने के निमित्त लका से उडा और भरत के बाण से विद्ध हो अयोध्या म जा पडा।[१] वस्तु सघटना कुशल गुप्तजी ने सजीवनी को पहले से ही अयोध्या म रख छोडा जिसका प्रथम परीक्षण हनुमान पर हुआ। वह रातोरात लका वापस जाने की चिन्ता म है। ऐसे समय उसके मुह स निसृत शब्दो म राम के विलाप वर्णन पर अधिक समय देने म बडा अनौचित्य होता, फिर भी एक रूप कातिशयोक्ति अलकार प्रस्तुत कर उन्होने राम के हृदय की अपरिमित वेदना को प्रकट करने का प्रयत्न किया है

> आकर खुला शून्य पिंजर सा दोनों ने आश्रम देखा।
> देवी के बदले बस उनका विभ्रम देखा, भ्रम देखा।
> प्रिये, प्रिये, उत्तर दो, मैं ही करता नहीं पुकार अभग।
> शून्य कुज गिरि गुहा गत भी तुम्हें पुकार रहे हैं सग
> लक्ष्मण ने, मैंने भी देखा, सोती थी जब सारी सृष्टि।
> एक मेघ उठ— सीते ! सीते। गरज गरज करता था वृष्टि। [२]

जब सारा ससार सो रहा हो रात्रि के एकान्त क्षणो म सिसक सिसककर आँसू बहाने वाले घनश्याम राम के लिए गरज गरजकर वृष्टि करने वाले मेघ के रूपक म प्रकृति और मानव के साम्य को निकट से देखने का प्रयत्न दिखाई देता है। यहा उठ शब्द का प्रयोग उभयार्थसाधक है।

रघुनाथजी ने वन गमन के समय को दिखाते हुए जो उपमा प्रयुक्त की है उससे राम के हर्ष और प्रजा के विषाद की युगपत व्यजना होती है। राम वन को जा रहे है। प्रजा चारो ओर से उमडी आ रही है। राम वन जाते हुए भी अखिन्न हृदय हैं। कवि ने रामचन्द्र को चन्द्र तथा प्रजा को उस मलिन घन घटा के समान देखा जो चन्द्रमा के चारो ओर घिरी आ रही हो।

> सारा प्यारो प्रजा ले अघटित घटनाचक्र त्यो चाल पायो।
> चौतर्फी चन्द्रमा को मलिन घनघटा तुल्य उल्केर आयो।[३]

रामचन्द्र को चन्द्रमा की उपमा देकर कवि वन जाते समय भी उन्हे प्रफुल्लित सिद्ध कर देता है किन्तु प्रजा मलिन घनघटा है जिससे उसकी साश्रुनयनता तथा खिन्नता ध्वनित होती है। मलिन शब्द का प्रयोग यहाँ सर्वथा साभिप्राय है।

तुलसीदास और गुप्त यहाँ दोनो प्रजा का आना जाना दिखाते हैं। राम के समझाने पर प्रजा जाती है फिर प्रेमवश आ जाती है

---

१ साकेत ११वाँ स० पृ० ४१६।
२ साकेत पृ० ४२६।
३ मेरो राम—अयोध्या का०, १६वाँ।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। विकल लोग सब लागे साथा।
कृपा सिंधु बहुविधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं।[1]

मानस के वर्णन में यहां परिकरालंकार की अनूठी योजना है। प्रजा साथ लगती है क्योंकि वह विकल है। राम समझाते हैं क्योंकि वे करुणासागर हैं। प्रजा लौटकर भी फिर उधर ही चली आती है क्योंकि वह प्रेम विवश है।

गुप्तजी के अयोध्यावासी राम के समझाने पर लौट जाते हैं किन्तु वियोग का असह्य अनुभव कर फिर चले आते हैं। इस स्थिति की उपमा वे उन जलधि कल्लोलों से देते हैं जो आते जाते रहते हैं :

रख कर उनके वचन लौटते लोग थे
पाते तत्क्षण किन्तु विशेष वियोग थे।
जाते थे फिर वहीं टोल के टोल यों—
आते जाते हुए जलधि कल्लोल ज्यों।[2]

गुप्तजी प्रजा के हृदय के विलोडन को, तुलसी उसकी स्नेहजनित विवशता को और लखनाथ उसके असीम अवसाद को दिखाने में समान रूप से प्रयत्नशील हैं।

लेखनाथजी का मेरो राम उसी तरह रामायण का सार है जिस तरह 'मानस' का सार कवितावली। मेरो राम की वर्णन शैली भी प्रायः कवितावली की पद्धति से मेल खाती है। नीचे लिखे सांगरूपक आपस में किस तरह मिलते जुलते हैं!

लंका भो होम वेदी, उस बिच समिधा राक्षसी सैन्य सारा।
आगो मा क्रन्दनायो कपिदल, जयको घोष भो आज्यधारा॥
सम्पत्ति श्री धुवा भकन दशमुख को उडन लाग्यो तमाम,
बन्नू भो धीर धन्वी उस रणमख को मुख्य आचार्य राम।[3]

देखि ज्वाला जालु हाहाकारु दसकंध सुनि,
कह्यो, धरो, धरो धाए बीर बलवान हैं।
लिएँ सूल-सेल, पास-परिघ प्रचंड दंड,
भाजन सनीर धीर धरे धनु बान हैं।
'तुलसी' समिध सौंज लंक जग्यकुंड लखि
जातुधान पुंगीफल जव तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हवि
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं॥[4]

---

१ रा० च० मा०, पृ० ४००।
२ साकेत पृ० १२८।
३ मेरो राम पृ० ४२।
४ कवितावली सुंदर का० ७वां।

तुलसी ने जो बात सुंदर काण्ड में कही लेखनाथ ने वही युद्धकाण्ड में और इसी स्थान भेद को दृष्टि में रखकर थोड़ा परिवर्तन कर दिया। जहाँ तुलसी का होता हनुमान है तो लेखनाथ के मुख्य आचार्य राम।

कवितावली का कवि कई स्थानों पर रमता भी है किन्तु लेखनाथजी भगते ही रहे। कुछ तो ऐसे स्थल पर जो सर्वथा दार्शनिक एवं नीरस है। उत्तरकाण्ड के दार्शनिक रहस्य के उद्घाटन में उनकी लेखनी कुछ जमती है। उत्तरकाण्ड में तुलसी ने भी कवितावली में भक्तिभावना प्रदर्शित करने में अपनी लेखनी को आवश्यकता से अधिक कष्ट दिया। लेखनाथजी प्रतिभासम्पन्न थे। यदि वे सक्षेपीकरण की प्रवृत्ति न अपनाकर 'मेरो राम' लिखे होते तो वह वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से कहीं अधिक उत्कृष्ट होता फिर भी नेपाली रामभक्ति साहित्य में 'मेरो राम' का पर्याप्त महत्त्व है।

नेपाली कवि तुलसीप्रसाद ढुंग्याल का नेपाली संगीत रामायण और हिंदी रचनाएँ

भक्ति साहित्य में 'नेपाली संगीत रामायण' का भी अपना स्थान है। यद्यपि यह आधुनिक काल में रची गई कृति है फिर भी आधुनिकता से कोई मतलब कवि का नहीं दिखाई देता। तत्कालीन समाज की विचारधाराओं से वह तटस्थ है। इसके लेखक श्री तुलसीप्रसाद ढुंग्याल ने उस समय को, जिसमें उन्होंने इसे लिखना प्रारम्भ किया आदर्श माना अतएव समाज या देश की आलोचना सम्बन्धी कोई बात इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ढूँढ़ना निरर्थक ही होगा। इस समय को न तो ढुंग्याल को कुछ देना था और न उससे कुछ लेना था। श्री ३ महाराज भीम शमशेर जंग बहादुर के राजत्वकाल में उन्होंने इसका लिखना प्रारम्भ किया। रामायण लिखकर वे उन्हें राम राज्य की नींव डालने के लिए भी प्रेरित नहीं करना चाहते थे क्योंकि श्री ढुंग्याल के विचारानुसार श्री भीमबहादुर के राजत्वकाल में रामराज्य था ही। वे लिखते हैं

श्री रामभक्त श्री ३ भीम को समयमा नेपालमा सबल रामराज्य सुख को अनुभव गरे। सुन तोला को दाम रु० २६ ३० भयो चाँदी तोला को दाम ।४० पैसा भयो ।१० पैसा गजमा कपडा पाइने भयो नून रु० १। को चौबिस माना (तीन पाथी) पाइन्थ्यो चामल को भाउ रु० १। का सोह्र माना हुन आयो दाल को भाउ पनि रु० १। को सोह्र माना भयो। यस्तो गरी अरु चिजहरू का भाउ पनि एक को भन्दा आठ गुड बढ़ी सस्ता थियो।[१]

रामराज्य का अर्थ—श्री ढुंग्याल के अनुसार—भावों के गिरने से रहा।

---

१ नेपाली संगीत रामायण—भूमिका जो विक्रम संवत २०१६ को लिखी गई।

जनता के पास खरीदने को पसा न हो उसका स्तर गिरा हुआ हो और मुद्रा प्रसार अपेक्षाकृत कम हो—इत्यादि बातो का परीक्षण किए बिना ही वे श्री भीम बहादुर के काल को स्वर्णकाल मानते है। सच्ची बात यह है कि समाज निरपेक्ष भक्ति भावना से प्रेरित होकर ही यह रामायण रचित है। वे स्वय इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

यो भरो सानू पुष्प महामुनि व्यास बाल्मीकि तुलसीदास इत्यादि का कर कमल बाट निस्के का स्वादिष्ट अमृतमय भक्तिरस ले परिपूर्ण भये का ग्रन्थहरू सग तुलना गन कुन प्रकार ले पनि न हुने भएता पनि श्रीमदभगवत गीतामा भगवान श्रीकृष्ण को 'पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति' भन्ने वाक्य को आधार मा भक्ति को वेग ले निस्के की सवशक्तिमान भगवान का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का पाउमा वहा को आदशमय पवित्र लीला को यो छोटकरी वणन चढ़ाए को छु।'[1]

श्री ढुग्याल ने सगीत रामायण' की रचना अपने पूववर्ती रामायणकारो के अनुकरण पर की है। ऐसी नई बात इसमे नही देखी जाती है जो वाल्मीकि तुलसी तथा भानुभक्त ने न कह दी हो। अवश्य वणन करने म कहीं-कहीं श्री ढुग्याल अपने तक तथा शली को दिखाने म नही चूके और यह स्वीकार करने मे किसी भी आलोचक को कोई आपत्ति नहा होनी चाहिए कि श्री ढुग्याल की शली विवेचन सवाद शला कलापूण है अर्थात सक्षिप्त समथ सरल व्यक्तित्वव्यजक तथा अवसरानुकूल सवादो की योजना उनके काव्य म देखी जाती है।

प्रधानत श्री ढुग्याल न भानुभक्तीय रामायण का आधार लिया है किन्तु जहा-तहाँ वे तुलसीकृत रामचरितमानस से प्रभावित हुए हैं। मैं यहा कतिपय उन स्थलो को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूगा जहाँ श्री ढुग्याल की लेखनी हिन्दी राम भक्ति साहित्य की बात दुहराती है।

बालकाण्ड म 'धनुयन' को दिखाने मे ढुग्याल न तुलसीदास का पर्याप्त अनुकरण किया यद्यपि भानुभक्तीय रामायण की पोथी यहा भी उनके समक्ष खुली पडी होगी—ऐसा इस बात स सिद्ध होता है कि भानुभक्त कृत गलती को उन्होने भी ज्यो की त्यो दुहरा दिया। भानुभक्त की ही तरह ढुग्यालजी भी भरत की पत्नी श्रुतकीर्ति को और शत्रुघ्न की पत्नी माडवी को मानते हैं

भाई की छोरी तो श्रुतकीर्ति कुमारी सुन्दरी,
राजाले दिए भरत लाई खुशी ले दिल भरी।
भाई को विइन तो आर्को माण्डवी सुन्दरी
जनक ले दिए शत्रुघ्नलाई प्रफुल्लित मन गरी॥[2]

---

१ सगीत रामायण भूमिका तुलसीप्रसाद ढुग्याल, पृ० १।
२ सगीत रामायण, बालकाण्ड पृ० ४४।

ढुग्यालजी तुलसीदास के अनुसार ही धनुयज्ञ रचाते है। राजगण धनुप तोडने का प्रयत्न करता है। उसके न टूटने पर जनक पछतावा करता है

जे भयो भयो बुझाई चित लौ जाऊ घरमा
नपर अब बलका आफना कदापि भरमा
फजुल बोलें गरे है माफ मुख त म न हूँ
न बुझी प्रण गरेर विघन गन त म न हूँ
अगाडि थाहा हुदो हो यस्तो त कि गर्थे प्रण ?
मलाइ लाग्यो ये बेइजत को न तिरिशक्नु ऋण।[1]

भानुभक्तीय रामायण म वह सब-कुछ नही है। इन पक्तियो पर तुलसीदास की निम्नलिखित चौपाइयो का गहरा रग चढा हुआ है

अब जनि कोउ माख भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।
तजहु आस निज निज गह जाहू। लिखा न विधि बदेहि बिबाहू॥
× × × ×
जो जनतेहु बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होतेउँ न हसाई॥[2]

जनक के उक्त वचनो को सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठता है और कहता है कि राम की आज्ञा होने पर धनुप क्या सारे ब्रह्माण्ड को वह चकनाचूर कर सकता है। तुलसी के लक्ष्मण की उक्ति की ढुग्याल का लक्ष्मण सक्षेप म कह देता है

पाएत आज्ञा यो धनु एउट औलो से उचाली
हजार टुका बनाइदिन्थे तोडेर विगाडी
यो जाबो धनुत म के भनु ब्रह्माण्ड तमाम
उचालि दिन्थे हजुर को मर्जि पाए त है राम।[3]

विवाद समाप्त करने के लिए तुलसी के विश्वामित्र राम को धनुभग की आज्ञा देते है

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी।
उठहु राम भजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।[4]

ढुग्याल का अनुकरण हो निम्न है

यस्त मा विश्वामित्र स भन सो राम ! हजुर
अगाडि सर्नोस है सबमाथी अगाडि गजुर

---

१ मगार रामायण बालकाण्ड पृ० ३७।
२ रा० च० मा० बा० का० पृ० २४१।
३ रा० च० म० पृ० २४२ ४३।
४ म० रा०, पृ० २८।
५ रा० च० मा० पृ० २४३।

यो धनु तोडी सहज सित जनक विषाद
मिटाइदिनोस नत्र त भने पन भो फसाद।[1]

ढुग्याल का राम परशुराम सवाद यद्यपि भानुभक्त कृत सा ही है, फिर भी निम्नलिखित पक्तियो म मानस का प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित हो जाता है।

तजस्वी ठूला धर्मात्मा ब्राह्मन हजुर त परशुराम
हजुरका जोडा कसरी लाग्यें म त हु केवल राम।[2]

यह कथन तुलसी के राम के शब्दो का सक्षिप्त नेपाली रूपान्तर है

हमहि तुम्हहि सरिवरि कसि नाथा
कहहुन कहाँ चरन कह माथा।
राम मात्र लघु नाम हमारा
परसु सहित बड नाम तिहारा।[3]

इसी तरह रावण अगद सवाद म तुलसी का प्रभाव श्री ढुग्याल के ऊपर प्रत्यक्ष दिखाई पडता है। यह सारा प्रकरण यथावत तुलसी के रामचरितमानस का रूपान्तर मात्र है। अवश्य ही कुछ बातें सक्षेप म कह दी गई हैं। कुछ आगे पीछे क्रम परिवर्तन के साथ उल्लिखित है तथा कुछ बढाकर भी कही गई हैं। तुलसी के रावण और अगद का सवाद इस तरह प्रारम्भ होता है

कह दसकठ कवन त बदर। मैं रघुबीर दूत दसकधर।
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयहुँ भाई।[4]

ढुग्यालजी इन शब्दो का नपाली मे परिवर्तित कर लिखत हैं

सौद्ध छ रावण। तोरो काम का हो है सकट।
× × ×
अगद भन्छन हासेर राजन! दूत हुँ राम को
× × ×
बाबु को मित जानेर हित ठानेर है शठ!
सल्लाह दिन्छु म एउटा तिमी न गर यो हठ।[5]

राम को तुलसी का रावण तापस बताता है और अगद को इस लज्जा जनक काय के लिए फटकारता है कि वह अपने मुह म तापसदूत कहलाया।[6]

---

१ स० रा० पृ० ३८।
२ स० रा०, पृ० ५१।
३ रा० च० मा०, पृ० २६५।
४ रा० च० मा०, पृ० ७५७।
५ स० रा० ल० का०, पृ० ३०८।
६ रा० च० मा०, पृ० ७५८।

और दूसरी ओर उसे निर्बल बनाने का प्रयत्न कर उसकी बलवत्ता स्वीकार करता है।

शूर्पणखा की कटी नाक को लेकर तुलसी के अगद की व्यंग्योक्ति को ढुग्याल ने कुछ हेर फेर के साथ कहा है। रावण अगद से कहता है कि यदि राम उससे प्राण भिक्षा माँगे और विभीषणादि उसकी शरण में आ जाएँ तो सधि हो सकती है और बिगडी बात ठीक हो सकती है। इस पर अगद उसकी खिल्ली उडाता हुआ कहता है कि और बातें तो सब ठीक हो जायेंगी, पर शूर्पणखा की नाक कटने से जो तुम्हारी नाक कट गई है वह कैसे ठीक होगी।

> वहिनी तिम्रा सुन्दरी शूपणखा को कान।
> दण्डकवनमा छुटन गये फसाद हे भगवान।
> उसन शवला के गरी फेरि त्यस्तो नाक!
> यस्ले गर्दा पो मारी गयो नि तिम्रो नाक![1]

श्री ढुग्याल की इस उक्ति पर जानता अजानता राधेश्याम रामायण का प्रभाव देखा जाता है।[2]

सगीत रामायण के शिल्प पर हिन्दी काव्यो की छाप

रावण अगद सवाद में न केवल वस्तु बल्कि शिल्प भी लगभग वही है जो मानसादि में विद्यमान है। वही वक्रता तथा व्यग्योक्तियाँ ढुग्याल ने भी अपनाई हैं जो तुलसी के रावण अगद-सवाद में दिखाई देती हैं। पहले कहा जा चुका है कि मानस से अत्यधिक प्रभावित होने पर भी सगीत रामायण का मूल आधार भानुभक्तीय रामायण है और भानुभक्तीय रामायण में रावण अगद है ही नहीं। फलस्वरूप इस प्रकरण के लिए श्री ढुग्याल को सर्वथा तुलसी के मानस पर ही निर्भर रहना पडा और इससे सगीत रामायण में स्वोक्ति विरोध पैदा हो गया है। पहले कहा जा चुका है कि इस सवाद के अनुसार तुलसी का रावण—रघुवश में कालिदास के रावण की ही तरह—अपने सिर काटकर शकर की आराधना करता है। उसी के अनुकरण पर ढुग्यालजी अपने रावण से कहलाते हैं।

> हाय ले यिन उठाए मैले कैलाश पर्वत
> शकरलाई चढाए शिर काटेर कट कट।[3]

---

१ स० रा०, पृ० ३०६ १०।

२ तुलनीय—जब जब तुम घर में जाओगे तब तब नजरों में आयेगी।
श्री शूपणखा की कटी नाक कसे फिर जोडी जायेगी॥
—राधेश्याम रामायण लका काड, कथा स० १६, पृ० १४।

३ स० रा०, ३१४।

परंतु उत्तरकाण्ड में जहां श्री ढुग्यालजी फिर भानुभक्तीय रामायण खोलकर अपना कार्य लिखते हैं रावण द्वारा विश्वम्भर को[1] सिर चढ़ाने की बात कही गई है।

रावण गयो तप खातिर गोकर्णेश्वरमा
तन मन दिई त्यो बस्यो श्री विश्वम्भरमा
रावण ले गयो हवन उग्र नौ सिर काटेर
चढायो त्यस्ले विश्वम्भर लाई क्सरी आँटेर।
आँटे को थियो काटतछु भनी बाँकि त्यो एउटा शिर
त्यो बेला देख्छ ब्रह्माजीलाई सामुने दानवबीर[2]

कितना साम्य है तुलसी और ढुग्याल के अंगद की उस व्यंग्योक्ति में जिसमें वह वीर मानी रावण को अत्यधिक लज्जित एवं क्रुद्ध बनाता है। तुलसी का अंगद कहता है

कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते।
बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बांधि सिसुन्ह हयसाला।
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोडाई।
एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा।
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोडावा।
एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥[3]

समान भावभंगिमा से ढुग्याल का अंगद उन्हीं बातों को नेपाली में कहता है

सुनेथे मैले रावण क्या अनेक रह रह का।
कुन चाहिं रावण तिमि हौ भन्ने लाग्द छयो शंका॥
रावण एउटा बलिराजलाइ जित छु भनेर।
गयो रे पाताल खूब आफूलाई वीरमा गनेर।
रमाई सारा बालकहरू दग टाउके जनावर।
आए छ भन्दे त्यसलाइ पक्री घिच्याई सरासर।
दिए रे बांधि लगेर सोभ तबेला बिचमा।
भयो रे हांसो चौपट सएसहस का बीचमा।

---

१ मूल आधारग्रन्थ अध्यात्मरामायण, उ० का० द्वि० सर्ग के अनुसार विश्वम्भर ब्रह्मा के अतिरिक्त और कोई देव नहीं है।
२ स० रा०, उ० का०, ४७४।
३ रा० च० मा०, लं० का०, पृ० ७६२।

बलीराजलाइ लागेर दया छोडे रे त्यसलाई।
एउटा ले यस्त भनेको जस्ते लाग्द छ मलाई।
अर्कोले भन्यो तो कातवीर्य सहस्रबाहु ले।
पक्रे रे एउटा रावणलाई खालि एक बाहुले।
परन्तु देख्ता दग ओटा गिर भये को जनावर।
लगेरे घरमा त्यसलाई सारे लागेर रहर।
हुन्यो रे त्यहाँ तमासा खासा रावणजन्तु को
हास्ये रे सारा देखेर छाट त्यो खाठ जन्तु को
आखिर के ही न लागी आफ आएर पुलस्त्य
छुटाएथे रे तीसित बिन्ति गरेर खुलस्त॥
आयो रे एक दिन रावण एउटा किष्किन्धापुरमा।
वीर बाली सित लडद छु भने अर्घंगी सुरमा।
वीरमण्डली तो मेरा बुबा वीरवर बाली ले।
घुमाए थे रे काखिमा च्यापी तो शक्तिशालीले॥
आखिर सबै पृथिवी भरको समस्त भ्रमण।
देखिर हेर्दा काखि को काखि भडकै को रावण।
गए को देख्ता हवासहास रहे को सास मात्र।
छोडेर तिनले त्यसलाइ त्यहीं ठानेर दयापात्र।
त्यस दिन देखि भागे को रावण कहा गो कहा गो?
भएन फेरि कसो यत्ता पत्ता यहा गो वहा गो!
यस्ते छ कुरा किष्किन्धापुरमा रावण बारेमा।
कुन चाहि रावण हो तिमी राजन! भन यस बारे मा॥[1]

तुलसी ने पाँच चौपाइयों और एक दोहे में जो बात मार्मिक ढंग से कही—इस ढंग से कही कि उक्ति का व्यंग्यत्व अक्षुण्ण रहा, दुग्याल ने उसी को खोलकर इस तरह वर्णन किया कि उसकी काव्योपयोगिनी मार्मिकता बहुत-कुछ नष्ट हो गई। दुग्याल का उक्त वर्णन तुलसी के कथन का भाष्य-सा लगता है।

भानुभक्त ने लंकाकाण्ड का नाम युद्धकाण्ड लिखा है। दुग्याल ने तुलसी के अनुकरण पर उसको लंकाकाण्ड नाम ही दिया है। यह नाम अधिक समीचीन इसलिए है कि काण्डारम्भ से ही युद्ध प्रारम्भ नहीं हो जाता है। युद्ध की भूमिका और परिणामों को दृष्टि में रखकर लंकाकाण्ड की पूर्वापर तथा अवान्तर

---

१ स० रा० तु० प्रसाद दुग्याल, पृ० ३१४।

बातो को युद्धकाण्ड म सम्मिलित करने के औचित्य को सिद्ध नही किया जा सकता है। इस तरह तो शूपणखा के नाक कान काटे जाने क बाद क दृश्य तथा समस्त उत्तरकाण्ड भी युद्धकाण्ड के भीतर रखे जा सकते हैं।

निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचन स यह स्पष्ट है कि श्री दुग्याल न या तो भानुभक्तीय रामायण की बात दुहराई है या फिर रामचरितमानस की। य बातें भी जो संस्कृत रामाख्यानो से मानस तथा भानुभक्तीय रामायण म आई हं श्री दुग्यालजी ने सीधे उनसे न लेकर इन्ही रामायणो के माध्यम से ग्रहण की क्योकि उनसे जो बातचीत हुई उसम उन्होने स्वीकार किया कि उन्होन संस्कृत रामायणो को नही पढा। कुछ बात उनकी अपनी भी स्थान स्थान पर दिखाई देती ह जसा कि न चाहते हुए तक हो जाता है फिर दुग्यालजी का तो यह आग्रह था ही नही कि उनकी अपनी बात अनुस्यूत रहे। एक अभिव्यक्ति कभी कभी दूसरी अभिव्यक्ति को हठात खीच लाती है। वहाँ लेखक को पीछे पता लगता है कि वह कुछ ऐसा कह गया है जिसे लिखना उसका उद्देश्य नही था। अत म यही कहा जा सकता है कि श्री दुग्याल ने सगीत रामायण लिखते समय भानुभक्त और तुलसी के काव्य के आधारभूत संस्कृत रामायणो को सम्मुख नही रखा प्रत्युत नानापुराण निगमागम सम्मत रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायण का अनुवाद भानुभक्तीय रामायण को ही उन्होने माना—अन्यथा व गुण दोष—जिनका विश्लेषण किया जा चुका है और जिनक लिए भानुभक्त और तुलसीदास ही उत्तरदायी हैं सगीत रामायण म न देखे जाते।

नेपाली कवि ऋषिभक्तोपाध्याय उद्दीपसिंह थापा

श्री गुरु ऋषिभक्तोपाध्याय की राम कान्ति वर्णन और श्री उद्दीपसिंह थापा का कवयो का वर प्राप्ति अथवा रामायण अयोध्याकाण्ड भी इस शताब्दी क नेपाली क राम भक्ति सम्बन्धी लघु आख्यान हैं। रामकीर्तिवर्णन' का राम चरित्र तुलसी और वाल्मीकि क राम चरित्र स मिलता है। राम अपने पिता क राज्य को छोडकर वन जाते हैं। तुलसी क राम जिस तरह निःस्पृह हैं ठीक उसी तरह गुरु ऋषिभक्तोपाध्याय क राम भी दिखाई पडते हैं। नीचे लिखी कुछ पंक्तिया क शब्द पृथक्-पृथक् हैं किन्तु दोनो उदाहरणो द्वारा राम की निःस्पृहता समान रूप स व्यंजित हो रही है।

> सम्पत्ति जि को विनति कत्ति पनी न मानी।
> त्यो राज्यनाइ तृण जति पनी न ठानी।

मातजि को चरण के गिरि जिहि नाथ ।
पाल्नू भयो वन तरफ लिइ रानि साथ ॥[1]

कीर क कागर ज्यों नप चीर विभूषन उप्पम अगनि पाई ।
श्रौध तजी मग वास के रूख ज्यों पथ के साथ ज्यों लोग लुगाई ।
सग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धम क्रिया धरि दह सुहाई ।
राजिव लोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाईं ॥[2]

ऋषिभक्तोपाध्याय के राम राज्य को तणवत भी न समझकर वन चल जाते हैं। तुलसी के राम राज्य को तुच्छ तो नहीं मानते। बाप को राजु बहुत कुछ महत्त्व और ममता की रखता है किन्तु उनके हृदय की निःस्पृहता प्रेम राज्य को भी छोड़ बैठती है। तुलसी के राम का राज्य-त्याग अधिक दुष्कर है।

कैकेयी का वर प्राप्ति एक इतिवृत्तात्मक लघु रचना है जिसमें अयोध्याकाण्ड की कथा को अति संक्षेप में कहा गया है उसमें नाम को लेकर हिन्दी कवि केदारनाथ मिश्र के कैकयी महाकाव्य' की विशेषताओं को ढूंढना निरर्थक है। मिश्रजी के काव्य में आधुनिक युग की समस्याएँ तथा उनका समाधान है और भक्ति का नाम भी नहीं है जबकि उद्दीपसिंह थापा की उक्त रचना में कोई विशेष सन्देश नहीं मिलता है। वह भक्ति भावना से लिखा गया एक पुराणानुमोदित संक्षिप्त वत्तान्त है।

सुब्बा खड्ग प्रसाद श्रेष्ठ, गणेशमान श्रेष्ठ—इन दोनों कवियों ने राधेश्याम रामायण का आधार लेकर क्रमशः 'राधेश्याम रामायण' और 'सुन्दर काण्ड' लिखा है, खड्ग प्रसाद श्रेष्ठ का राधेश्याम रामायण' यथायत नेपाली अनुवाद है जैसा उनके नाम से भी प्रकट होता है। गणेशमान श्रेष्ठ ने प्रधानतः वस्तु भानुभक्त रामायण और शैली राधेश्याम रामायण से ग्रहण की हैं। कहीं कहीं राधेश्याम रामायण के भाव विधान को अपनाने में भी वे नहीं चूके। इन दोनों ग्रन्थों में मौलिकता बहुत कम है।

पदमप्रसाद ढुगाना और तुलसीदास—श्री पदमप्रसाद ढुगाना के रामायण सप्तरत्न' और तुलसीदास के रामचरितमानस में व्यापक साम्य है जो कई स्थानों पर वस्तु तथा शिल्प दोनों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ सीता विवाह-समय उपस्थित किया जाता है। तुलसीदास सीता को सौन्दर्य के प्रसिद्ध उपमानों से व्यतिरेक अलंकार के आधार पर अधिक सुन्दरी सिद्ध करने में जिस पद्धति को अपनाते हैं उसे ही श्री पदमप्रसाद ढुगाना भी प्रयुक्त करते हैं

---

१ रामकीर्ति वर्णन पृ० ५।
२ कवितावली (गीता प्रेस गोरखपुर) अ० का०, पृ० २०।

सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकबि कहाइ अजसु को लई ।
जौं पटतरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ।
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमा सम किमि बैदेही ॥[1]

—तुलसीदास

देख्ता सुन्दरता ति जानकिजिको आश्चर्य हुन्थ्यो मन ।
के दीनू उपमा र जो भगवती हुन आदि शक्ती जुन ॥
लक्ष्मी को उपमा दिनू यदि भने थोरै हुने भो अनी ।
मन्थिन लोक रती अनंग पति भ जोडा मिलनन भनी ॥
लक्ष्मी का सङ निस्कियौ विष अधी मरेय चन्द्रक्षयी ।
तिन्की वनि हुदा मिनी हुन गईन यस् न्यूनता न भई ॥[2]

नेपाली कवि सोमनाथ शर्मा का आदर्श राघव और हिन्दी कवि गुप्तजी का साकेत

सोमनाथ शर्मा के आदर्श राघव के नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें राम का आदर्श चरित्र चित्रित है। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि आदर्श राघव में कवि ने यथासम्भव मानव राम को चित्रित करने का प्रयत्न किया है अतिमानव को नहीं, किन्तु फिर भी कवि की भक्तिभावना प्रच्छन्न न रह सकी। वह स्थान-स्थान पर अपना रूप दिखा ही देता है। अवश्य ही श्री सोमनाथ जी ने सर्वोगी तथा अद्भुत घटनाओं को—जो सामान्य रूप से रामकथा में प्रचलित हैं—या तो छोड़ दिया है या उन्हें सम्भाव्य बनाने का प्रयास किया है। यदि हिन्दी साहित्य में इस तरह की काव्यकृति को हम ढूँढें जहाँ भक्तिभावना के साथ-साथ असम्भाव्य घटनाएँ न हों या कम हो तो वह साकेत है। यह ठीक है कि साकेत के आदर्श चरित्रों में राम लक्ष्मण सीता और उर्मिला (उर्मिला) का समान महत्त्व ही नहीं प्रत्युत उर्मिला और लक्ष्मण का गौरव कुछ अधिक प्रतीत होता है जबकि आदर्श राघव के आदर्श पात्रों में प्रमुखता सोता राम की ही है। लक्ष्मण और उर्मिला की उपेक्षा वहाँ उसी तरह हुई है जैसे संस्कृत रामायणों तथा रामचरितमानसादि अन्य हिन्दी काव्यों में किन्तु वस्तुविधान की काट छाँट करने में जो मनःचेतना मैथिलीशरण गुप्तजी की रही जाती है वही श्री सोमनाथ शर्मा की भी।

गुप्तजी ने राम को आदि में तथा जहाँ-तहाँ मध्य में भी ईश्वर माना अवश्य है परन्तु राम का ईश्वरत्व काव्य की वस्तुसंघटना तथा चारित्रिक विकास में कहीं बाधक सिद्ध नहीं हुआ है। सोमनाथजी भी राम को अवतार मानते हैं किन्तु

१ रामचरितमानस तुलसीदास पृ० २३७।
२ रामायण सप्तरत्न पदमप्रसाद ढुगाना (सुन्दरकाण्ड पृ० २५६ से उद्धृत)।

अपने पाठक को वे तुलसी की तरह इस बात की बार-बार याद दिलाते हुए नहीं दिखाई देते हैं। यही कारण है राम का ईश्वरत्व क्षीण रूप से व्यंजित होता है। जिस स्थल पर गुप्तजी राम को अवतार कहते हैं प्रायः उन स्थलों को छोड़कर वहीं सोमनाथ जी भी उन्हें अवतार मान लेते हैं—यह एक अद्भुत साम्य है। उदाहरणार्थ साकेत के प्रारम्भ में गुप्तजी राम को अनादि अनन्त का व्यक्त रूप मानते हैं।[1] सोमनाथजी भी काव्य के प्रारम्भ में राम को पुण्यमूर्ति पुरुषोत्तम की विभूति मानते हैं

संसार सार पुरषोत्तम पुण्य मूर्ति।
श्री रामचन्द्र हुन जो उनका विभूति॥[2]

किन्तु महत्योदार की कथा में अभिव्यक्त राम के ईश्वरत्व की अभिव्यंजना सोमनाथजी को सम्भवतः सह्य नहीं हुई। उन्होंने उस प्रकरण को ही छोड़ दिया। गुप्तजी ने परम्परागत कथावस्तु का तिरस्कार करना ठीक न समझकर उस प्रकरण को प्रकट तो किया परन्तु वहाँ अवतारत्व का उल्लेख नहीं होने दिया, तो भी उसकी व्यंजना हुए बिना नहीं रही।[3] यह प्रकरण है ही ऐसा कि इस त्याग बिना किसी दूसरे ढंग से राम के ईश्वरत्व का दुराव हो ही नहीं सकता है।

राम के हाथों मरने पर राक्षसों के गक्षसों के मुक्त होने में राम का ईश्वरत्व व्यंजित हुआ है। राम के हाथ से मरकर विराध को मुक्ति प्राप्त करनी थी।[4] राम ईश्वर हों तभी यह सम्भव था सोमनाथजी भी राम के हाथों से विराध और कबन्ध को मरवाकर क्रमशः परमपद तथा अगाध स्थान का अधिकारी मानते हैं।[5]

हनुमान द्वारा समुद्र को पार करने में भी दोनों कवि राम के ईश्वरत्व का भजन करते हैं। गुप्तजी का हनुमान उस महत्कार्य को प्रभु के ध्यान का फल मानता है। सोमनाथजी का हनुमान राम नाम स्मरण करने के कारण उसे सम्पन्न कर पाता है

काय का साधयामि प्रतिपल मनसा राम को नाम शब्द।
देह का पातयामि प्रियतम जन को काममा आज भन्द।

---

१ पापियों का जान लो अब अन्त है। भूमि पर प्रकटा अनादि अनन्त है। सा० प्र० स०, पृ० १८।

२ आ० रा०, पृ० २।

३ साकेत मथिलीशरण गुप्त पृ० ३२६।

४ किन्तु स्वयं माँगा था उसने मुक्ति हेतु यह दण्ड दुरन्त। (साकेत ११वाँ सर्ग, पृ० ४१२)।

५ रघुवर सग भिड़ने आइ लाग्यो विराध।
निहत भई तुरन्त स्यान पायो अगाध। आ० रा० ६ १४।

आत्मा सा जो न होगी अगम उदधि को पारमा पुग्न धीर।
उसले सुन्दर उनी तरंगिणिशिरमा सारथी कर्मवीर।[1]

यह बात ध्यान देने योग्य है कि साकेत और आदर्श राघव में प्रायः समान उद्देश्य को लेकर राम में ईश्वरत्व देखा गया है। भक्तिकाल के काव्यों में मानव राम के ही दर्शन होते हैं। आधुनिक भाषाओं में ईश्वर राम का रूप चित्रित हो चुका था। मानव राम को चित्रित करने की आवश्यकता थी। जिस तरह हिन्दी में मानस रामचन्द्रिका आदि में ईश्वरावतार राम की झाँकियाँ प्रस्तुत की जा चुकी थी उसी तरह नेपाली में भानुभक्त आदि कवि अवतारी राम का चित्रण कर चुके थे। राम के मानव रूप को काव्य में स्थान देने के हेतु नेपाली में श्री सोमनाथजी ने हिन्दी में श्री मैथिलीशरण गुप्तजी ने लिखने का प्रयास किया यद्यपि राम का विशुद्ध मानव रूप में ये भी न दिखा सके। इनका भक्त हृदय भगवान को सर्वथा छोड़ न सका।

आधुनिक काल का हिन्दी काव्य साकेत जिस तरह साकेत के वर्णन से प्रारम्भ होता है उसी तरह आदर्श राघव भी। अपने चरित्रनायक की जन्मस्थली के वर्णन से ग्रन्थारम्भ करना महाकाव्यकारों की सुपरिचित पद्धति है

देख लो साकेत नगरी है यही। स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।
अंगराग पुरांगनाओं के धुले। रंग देकर नीर में जो हैं घुले।
देखते उनसे विचित्र तरंग हैं। कोटि शक्रशरासन होते भंग हैं।
है बनी साकेत नगरी नागरी और सात्विक भाव से सरयू भरी।[2]

भूलोक मध्यमणि हो भुवनावली को
यो दीप हो चहकिलो मुहुडा मही को।
यो ही त्रिकोण कट भारतवर्ष खास
साकेत हो किरणकेन्द्र बनी प्रकाश।
हो देश कोशल पुरातन शिल्प सिद्ध
सौराज्य ले जगमगाइ अति प्रसिद्ध।
प्रख्यात न छ जसकी नगरी अयोध्या
भन्थे विपक्षहरूले पनि हो अयोध्या।
आफू बनी जल तरंग चढाइ रंग
संगीत को मधुरिमा गरि अंतरंग।
गुंजाउँदे विपुल कौशल देशरंग,
नाच्छन निरंतर जहाँ सरयू तरंग।[3]

1 आदर्श रा० ९६८।
2 साकेत मैथिलीशरण गुप्त पृ० १९ २०।
3 आ० रा० सोमनाथ पृ० ४।

यह कितना मिलता-जुलता वर्णन है। दोनों काव्यों के प्रारम्भ में और वह भी एक ही तरह के वर्णन को आकस्मिक साम्य कहने को हृदय तैयार नहीं होता है। अवश्य ही गुप्तजी का साकेत शर्माजी को प्रभावित कर गया है।

परम्परागत रामकथा में राम के हाथ से सुबाहु और ताडका का वध हुआ मारीच को बिना फर के बाण से उड़ा दिया गया। साकेतकार ने 'उड़ा' का अर्थ शीघ्र ही अदृश्य हुआ' यह लेकर उसे मुहावरा बना दिया।[1] 'कहाँ गया?' इन शब्दों ने उक्त क्रिया के आकृतिक अर्थ को अवरुद्ध कर उसे लाक्षणिकसम्पन्न बनाने में सहायता की। सामनाथजी ने भी मारीच को बिना फर के बाण द्वारा दूर फेंकने की क्रिया में राम की अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन नहीं करवाया। राक्षसी सेना कुछ मर जाती है और कुछ भग जाती है। मारीच भग गया या उड़ गया—यह सब सामनाथ शर्मा नहीं कहते हैं। पाठक अनुमानतः मान लेता है कि भगोड़ों में ही मारीच भी रहा होगा। स्पष्ट कहने से प्रचलित रामकथा में परिवर्तन करने का दायित्व उठाना पड़ता। अनुक्त छोड़ देने में उसकी आशंका नहीं रही और राम के मनुजत्व पर देवत्व की छाया भी न पड़ी।

धनुभंग पर परशुराम आते हैं और अपना धनुष राम को देकर चले जाते हैं। राम को अवतार मानने वाले आख्यानों में परशुराम द्वारा राम की स्तुति कराई गई है किन्तु साकेतकार के परशुराम किसी तरह की स्तुति नहीं करते और कवि के शब्दों में—

प्रभु को निज चाप दे गये मुनिता ही मुनि आप ले गये।[2]

गुप्तजी को राम को सर्वसमर्थ ईश्वर कहकर कुछ क्षण पहले उनके द्वारा किये गये धनुभंग में उन्मूल महत्त्व को कम नहीं करना था। ईश्वर ने धनुष तोड़ा तो कौन-सी बड़ी बात हुई? उसे यदि मानव तोड़ता है तो उसका बल आदर्श है।

सामनाथजी भी यहाँ सर्वथा सावधान हैं कि कहीं राम में मनुष्यत्व के स्थान पर ईश्वरत्व न दिखाई दे। परशुराम बिना स्तुति किये अपनी हार मान लेते हैं जब राम शिव के धनुष को तोड़ते हैं तब भी श्री शर्माजी ने बड़े कौशल से उनकी अतिमानवता को दबाने का प्रयत्न किया। प्रायः रामायणों में राम के—धनुष को बड़ी अवहेलना से फूल के समान मानकर उठा लेने की बात लिखी है जिससे पाठक के हृदय में अत्यधिक बलशाली राम का ईश्वरत्व अंकित हो जाता है। सामनाथ के राम ने धनुष को फूल के समान नहीं उठाया प्रत्युत इस तरह उठा लिया जैसे काम

---

१ दल खेत रहा सभी वहाँ। खल मारीच उड़ा, गया कहाँ?—साकेत, सर्ग १०, पृ० ३६३।

२ साकेत गुप्त पृ० ३८०।

ने पुष्प धनुष उठाया हो।[1] नियधनुष को हाथ में लेने में उन्हें प्रयास करना पड़ा या नहीं—यह यहाँ विशेष स्पष्ट नहीं होता है हाँ राम की शोभा का परिचय अवश्य मिलता है। परम्परागत प्रसंगभाग्य बातों को अस्पष्ट छोड़ देने में भानुभक्तजी एक ओर नई चेतना का परितोष करते और अन्य को काव्य क्षमता के लिए उपादेय बनाते हैं, दूसरी ओर प्राचीन बातों का साक्षात् विरोध न कर अपने काव्य को भक्तों द्वारा उपेक्षित होने से बचा लेते हैं।

संस्कृत और हिन्दी के अधिकांश रामायणों में शूर्पणखा राम और लक्ष्मण के रूप पर मोहित होकर प्रणय याचना करती है, वह सीता को खाने दौड़ती है और राम के संकेत पर लक्ष्मण उसके नाक कान काट लेते हैं। इन रामकथाओं में राम शूपणखा को लक्ष्मण के पास भेजते हैं क्योंकि वह अविवाहित है।[2] भानुभक्त रामायण के अनुसार वह सचमुच अविवाहित ही है, किन्तु पीछे की रामकथाओं के अनुसार लक्ष्मण विवाहित है और राम मिथ्या भाषण करते हैं। इनका आधार ग्रन्थ वर्तमान वाल्मीकि रामायण है जिसमें विद्वानों ने अनेक प्रक्षिप्तांशों की खोज की है। कामिल बुल्के 'अरण्य काण्ड की अकृतदार' वाली उक्ति के आधार पर बालकाण्ड को जिसमें राम के साथ लक्ष्मण का विवाह उर्मिला से सम्पन्न हुआ है सर्वथा प्रक्षिप्त मानते हैं।[3] यदि लक्ष्मण का विवाह हुआ होता तो क्या वाल्मीकि के आदर्श मानव राम कभी लक्ष्मण को अविवाहित बताते और क्या शान्तदर्शी सहृदय कवि वाल्मीकि अपने काव्य में उर्मिला की उपेक्षा कर पाते ?

साकेत में लक्ष्मण उर्मिला का विवाह सम्पन्न हुआ है अतएव अपने राम के चरित्र को ऊपर उठाने के लिए वे उनके मुँह से लक्ष्मण को अविवाहित बताकर शूपणखा को खिझाने की भूल नहीं करवाते हैं। साकेत की शूपणखा विमोहित सी है, किन्तु न तो वह राम लक्ष्मण से प्रणय याचना करती है और न राम ही उससे लक्ष्मण के पास जाने को कहते हैं। वह सीता को खाने को दौड़ती है इस पर उसके नाक कान काट लिए जाते हैं।[4] सोमनाथ शर्मा इस प्रकरण को अस्पष्ट छोड़कर अपने नायक के चरित्र को दूषित होने से बचा लेते हैं। उसके नाक-कान काटने का कारण दिखाया गया है कि वह सीता के सौभाग्य को देख न सकी

---

१ भा० रा०, सर्ग ३ ३० पृ० ३६।

२ वाल्मीकि रा० १८वाँ सर्ग श्लोक २ २१ अ० काण्ड।
अ० रा० ज० का० सर्ग ५ श्लोक ६ २०।
रा० च० मा० पृ० ४१६ मझला संस्करण १२वाँ, गीता प्रेस गोरखपुर।

३ रामकथा पृ० १२३।

४ साकेत मैथिलीशरण गुप्त पृ० ४१२ १३।

सहन न सकि सीता भाग्य-सौभाग्य शोभा।[1]

शूर्पणखा की काममोहित स्थिति का उपहास करना राम जैसे आदर्श-पुरुष को शोभा नहीं देता है। जिस अवस्था में स्थित क्रौंच पक्षी तक के दुःख को आदि कवि देख नहीं सके और उनके मुँह से व्याध के लिए छन्दोमय शाप निकल पड़ा,[2] उसी अवस्था वाली शूर्पणखा का इधर उधर भाइयों के साथ फिराना वाल्मीकि का काम नहीं हो सकता है। अवश्य ही यह अंश पीछे किसी ने जोड़ा होगा। परवर्ती कवियों ने प्रक्षिप्त वाल्मीकि रामायण का अविकल अनुकरण किया। शूर्पणखा से तुलसी के राम ने कहा कि उनका भाई अविवाहित है, वह उसके पास चली जाए[3] और लक्ष्मण ने यह कहकर उसे फिर राम के पास दौड़ा दिया—

सुंदरि सुनु मैं उन कर दासा। पराधीन नहिं तोर सपासा।
प्रभु समरथ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा।[4]

गुप्तजी ने हिन्दी साहित्य में और लेखनाथजी के अतिरिक्त सोमनाथजी ने नेपाली साहित्य में अपने चरित्रनायक का यथावत आदर्श चित्रित करने का प्रयत्न किया और शूर्पणखा विद्रूपण वृत्तान्त में आवश्यक काट छाँट करने का साहस दिखाया।

तुलसी मारीच का सीताहरण प्रकरण में राम भक्त दिखाते हैं। वह रावण को समझाता है कि वह राम का विरोध छोड़ दे। धनुष बाण लिए जब राम उसके पीछे दौड़ते हैं तब भी वह अपने को इसलिए धन्य समझता है कि धनुर्बाणधारी प्रभु राम के—जिस शोभा पर तुलसी का भक्त हृदय मुग्ध है—उसे दर्शन हुए

मम पाछे धर धावत धर सरासन बान।
पुनि पुनि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन।[5]

राम का हित चाहने वाला मारीच अन्त में फिर धोखा देता है। लक्ष्मण को पुकारकर मरता है। यहाँ वह कुछ न कहता हुआ मर सकता था। अधिक से अधिक राम कहकर मरना उसके लिए अधिक अच्छा होता जिसका वह पीछे मन

---

१ आ० रा० ६ ४३ पृ० ७६।
२ मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ वा० रा० बा० का० २।१५।
३ सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।
अहइ कुमार मोर लघु भ्राता॥—रा० च० मा०, अ० का० पृष्ठ ४१६।
४ वही, पृ० ४१६।
५ वही, पृ० ४२७।

म स्मरण करता है।[1] एसा करने पर अपने विश्वास के अनुसार मुनि दुर्लभ गति' तो उसे मिलती ही वह राम का हितैषी भी सिद्ध हो सकता था। लक्ष्मण का नाम लेकर मरने वाला मारीच रामकथा के ईश्वर-लीला मानने वाले तुलसी भले ही राम भक्त मानें परन्तु वे उस राम का बहुत बड़ा शत्रु समझेंगे जो रामोपाख्यान म काव्योपयोगी मानव चरित्र को देखना चाहते हैं इसीलिए साकेतकार गुप्त और आदर्श राघव प्रणेता रामनाथ शर्मा मारीच को कपटी नाम छली धूर्त कहते और उसे रावण के पक्ष का मानकर राम का शत्रु सिद्ध करते हैं

तब मारीच निशाचर से यह पहले कपट मन्त्र करके
उसे साथ ले दण्डक वन मे आया साधु वेश धरके
हेम हरिण बन गया वहाँ पर जाकर मायावी मारीच
श्री सीता के सम्मुख जाकर लगा लुभाने उसको नीच।

हा लक्ष्मण ! हा सीते ! कहकर छोडे उधर छली ने प्राण।[2]

सग लिइ बहुरूपी धूर्त मारीच लाई
कनक मृग बनाई तेजिलो रग लाई
वरिपरि दगुराथो त्यो जनस्थान आई
दशमुख गम गर्यो गुप्त म दाउलाई ॥[3]

अधिकांश रामायणो म सीताहरण के पूर्व सीता द्वारा लक्ष्मण के चरित्र पर उस समय शंका की जाती है जब वह मरते हुए मायावी मारीच द्वारा पुकारे जाने पर भी सीता को अकेली छोडकर राम की सहायता के लिए नही जाता है। सभी रामायणो म लक्ष्मण बडा सयमी चित्रित हुआ है। उस पर यह दोषारोपण कि वह भाई का अनिष्ट कर सीता को हस्तगत करना चाहता है—सीता के चरित्र को गिरावट की ओर ले जाता है। इस प्रसग से समस्त नारी जाति के सौजन्य पर एक प्रश्नचिह्न लग जाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने सीता के चरित्र के इस पतन को बहुत कम कर दिया यद्यपि लक्ष्मण पर आक्षेप लगाने म चूकी गुप्तजी की सीता भी नही। यह सम्भवत इसलिए कि एक तो सीता द्वारा लगाये आक्षेप की परम्परागत बात का सर्वथा उन्मूलन करना प्रख्यात वस्तु को लेकर प्रबन्ध रचने वाले को शोभा नही देता और दूसरी बात यह थी कि वस्तु को गति देने के लिए लक्ष्मण

---

१ लछिमन कर प्रथमहि ले नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥
—रा० च० मा० अ० का०, पृ० ४२८।

२ साकेत सर्ग ११, पृ० ४२० २१।

३ आ० रा० ६ ५५ पृ० ८१।

को सीता म पृथक करना अनिवार्य था। हाँ आक्षेप का स्वरूप बदल दिया गया। लक्ष्मण के समभान पर क्रुद्ध हुई सीता के मुह से इस तरह शब्द निकलते हैं

किन्तु तुम्हारे ऐसे निमम प्राण कहा से मैं लाऊँ ?
और यहाँ तुम सा जड यह पाषाण हृदय पाऊँ ?
× × ×
क्या क्षत्रिया नहीं मैं बोलो पर तुम कसे क्षत्रिय हो ?
इतने निष्क्रिय होकर भी जो बनते यों स्वजन प्रिय हो।[1]

लक्ष्मण को निष्क्रिय कहना यह भी आक्षेप है किन्तु ऐसा नहीं कि दाना— सीता और लक्ष्मण क आदर्श ही पाठक की दृष्टि म सन्दिग्ध हो उठे। इसम सीता के हृदय की नारी-सुलभ कातरता और उद्वेगजनित क्रोध का ही परिचय मिलता है।

श्री सोमनाथ शर्मा ने भी अपने काव्य की नायिका का चरित्र बचा लिया है। लक्ष्मण पर आक्षेप की परम्परा गुप्तगृहीत पद्धति पर ही दिखा दी गई है। वे ही आक्षेप लगाये गए हैं जो गुप्तजी की सीता लगाती है— लक्ष्मण निर्दय और निष्क्रिय हैं।

ध्वनि विकलपना को नाथ की हो, बचाऊ
किन विहग बसे को लौ न दौडेर जाऊ
रति भरि पनि कस्तौ दाइ को छन भाया
हरि ! हरि कसरी यो वचन शब्दले छ काया।[2]

इन कटु वाक्यों को सुनकर लक्ष्मण चल देता है। गुप्तजी का लक्ष्मण तो दो चार सुनाकर तथा भस्म रेखा खीचकर जाता है।[3] किन्तु सोमनाथजी का लक्ष्मण व्यग्रता म शीघ्र चल देता है। गुप्तजी का लक्ष्मण अपना पूरा कर्तव्य निभाता है। सीता की कटूक्तियाँ भी उसे कर्त्तव्य भूलने के लिए विवश नहीं करती किन्तु सोमनाथ का लक्ष्मण क्रोध म अपना कर्त्तव्य भूल जाता है।

नर और वानरों की मित्रता की संगति के लिए मैथिलीशरण गुप्त और सोमनाथजी के प्रयत्न एक ही हैं। गुप्तजी वानरों को मनुष्यों की ही एक जगली जाति मानते हैं। जगल म रहने के कारण उसे वानर कह दिया जाता है। आकृति उनकी भी नरों की सी है।

---

१ साकेत, ११वा सर्ग पृ० ४२३।
२ आ० रा० ६६१।
३ नहीं अन्ध हो, किन्तु बधिर भी अबला बधुओं का अनुराग।
जो हो जाता हूँ मैं पर तुम करना नहीं कुटी का त्याग।
रहना इस रेखा के भीतर क्या जाने अब क्या होगा॥
—साकेत, स० ११ पृ० ४२४।

आगे ऋष्यमूक पर्वत पर वानर ही कहिए हम थे।
विषम प्रकृति वाले होकर भी आकृति में नर के सम थे।[1]

श्री सोमनाथ शर्मा भी ठीक यही बात कहते हैं

यता उति मिल रह्यो उचित जगली देश का,
विषम नर वानराकृति हुँदा रह्यो नामका।[2]

राम भक्त वानरों को नरजाति मानने के कारण इन दोनों कवियों ने लंकादहन के अवसर पर रावण द्वारा हनुमान की पूंछ पर आग नहीं लगवाई, प्रत्युत उसके सम्पूर्ण शरीर को जलाने की इच्छा से उस पर आग लगवा दी। गुप्तजी का हनुमान समुद्र में कूदकर आग बुझा लेता है।[3] यह स्पष्ट नहीं है कि पाप की लंका हनुमान ने जलाई या उस पर आग लगाते समय वह स्वयं आग पकड़ गई। सोमनाथजी का हनुमान भारतीय व्यायाम कला को दिखाता हुआ इधर उधर गया।[4] इससे आग लग गई। शर्माजी ने यह बात छोड़ दी कि उसने अपनी आग कैसे बुझाई जबकि यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि हनुमान प्रत्यक्ष धूमकेतु की तरह यत्र-तत्र ज्वालमाला फैलाता हुआ बस्ती में फिरा और उसे जला दिया गया।

प्रत्यक्ष धूमकेतु ज्वालमाला जतातत फिर्दा।
लाग्न लाग्यो डढद भत्कर बस्तिको गिर्दा॥[5]

राम का छिपकर वाली को मारना यह दोष पहले दिखाया जा चुका है। भक्ति भावना इस दोष को भी गुण देखती है।[6] राम को मानव मात्र मानने वाले इसे समालोच्य चरित्र स्खलन मानते हैं।[7] रामचरित उपाध्याय तो छिपकर मारने की बात दूर रही—बालि हत्या के तुलसी आदि कवियों द्वारा उपस्थित किए समाधान से भी सहमत नहीं। अनुजपत्नी के सहवास को वन्यजाति वानरों के लिए उपाध्यायजी अपराध नहीं मानते हैं। वहाँ से आदिवासियों में अब तक यह प्रथा देखी जाती है कि भाइयों की पत्नियाँ एक की दूसरे के लिए उपभोग्य होती हैं। उपाध्यायजी का बाली इसीलिए राम से कहता है

मुझे धर्म जो आपने है सुनाया,
नरों के लिए ही गया है बनाया।

---

१ साकेत, ११ पृ० ४२८।
२ आ० रा०, ८ ५३।
३ साकेत, पृ० ४३५।
४ आ० रा० १० ४६।
५ आ० रा० १० ५२।
६ रा० च० मा०, बा० का० पृ० ५३।
७ रामचरित चन्द्रिका ले० रामचरित उपाध्याय, पृ० ५३।

उसे पामरों ने न माना कभी है,
उसे पामरों ने न जाना कभी है।[1]

और वे अपना निर्णय देते हैं कि राम की इस दुर्मति का कारण जघन्य सुग्रीव का साथ था

मति किसकी है बदली नहीं हा जघन्य के साथ से।[2]

भक्तिमिश्रित मानवानुरक्ति रखने वाले महाकाव्यकार गुप्त और सोमनाथ शर्मा न परम्परा का विरोध न करते हुए राम के चरित्र को निष्कलंक बनाए रखा। गुप्तजी इस बात को अस्पष्ट छोड देते हैं कि राम ने वाली को छिपकर मारा या खुल्लमखुल्ला। सारी घटना का अति संक्षिप्त उल्लेख एक वाक्य में कर दिया गया है

बर्बर पशु वह एक बाण से
किया बालि का फिर आखेट।[3]

सोमनाथजी के राम छिपे अवश्य, किन्तु छिपकर उन्होंने वाली को मारा नहीं। वे छिपकर युद्ध देख रहे थे। इसमें समय पडने पर सामने जाकर लडने की राम के मन्तव्य की कल्पना की जा सकती है। वाली उन्हें देख लेता है और ललकारता है तब राम सामने आकर वाली से युद्ध कर उसे मार गिराते हैं

वरी को नव बल तुल्य राम लाई वाली ले घर तिर देखि झनझनाई,
ललकारे अगि सरि कै लुकी रह्यो, लाछो भक्ति अपकीर्ति लह्छो।
वाग्बाण क्षत भइ शत्रुबाट भिन्न देखेर प्रबल विपक्ष, लस्त मित्र
आह्वान ग्रहण गरेर नीति साथ सामुन्ने भिड्नु भयो अनाथनाथ।[4]

शर्माजी ने राम के छिपे होने की बात कहकर प्राचीन रामायणों के साथ मिलन का प्रयत्न किया और राम को वाली से भिडाकर अपने साहित्यिक पाठकों को भी खिन्न नहीं होने दिया। यदि सुग्रीव परास्त होता तो राम मैदान में आकर युद्ध करते या छिपकर ही वाली को मार देते—इस द्विविधा को सोमनाथजी ने कौशलपूर्वक बचा लिया है। वाली राम को पहले ही देख लेता है।

सीता की अग्नि परीक्षा को गुप्तजी और सोमनाथजी दोनों ने मुहावरे का रूप दिया है। सन्ताप की आँच सहन कर सीता ने अपने चरित्र को बचाए रखा। पतन की सम्भावनाएँ लंका में सभी थीं—रावण के शस्त्रास्त्र प्रलोभन प्रवचन प्रपीडन आदि किन्तु सीता के सतीत्व पर आँच नहीं आई। यह उसकी अग्नि

---

१ रा० च० चि० रामचरित उपाध्याय, पृ० १३ ३३।
२ वही, १३ ६।
३ साकेत ११स०, पृ० ४२९।
४ आ० रा० सोमनाथ शर्मा, पृ० ११२।

परीक्षा थी जिसमे वह सफल हुई। इन कवियो ने अग्नि परीक्षा का वाच्यार्थ न लेकर लक्ष्यार्थ लिया। इन्हें गुणभद्रकृत उत्तर पुराण हरिवंश, विष्णुपुराण, वायु पुराण, भागवत, नृसिंह पुराण कथासरित्सागर आदि ग्रन्थो से—जिनमे सीता की अग्नि परीक्षा का उल्लेख नही है—प्रभावित मानना ठीक नही है। यदि वैसा होता तो 'अग्नि परीक्षा' शब्द इनकी कृतियो मे इस स्थल पर व्यवहृत न होता? अतएव यही निष्कर्ष निकलता है कि सोमनाथ तथा मैथिलीशरण गुप्त ने परम्परागत तथा प्रसिद्ध-ग्रन्थ वर्णित अग्नि परीक्षा को ही राम के चरित्र को बनाने तथा अविश्वसनीय बातें त्यागने की प्रवृत्ति के कारण लक्ष्यार्थ सम्पन्न बनाने का प्रयत्न किया। परम्परागत इतिवृत्त के साथ सामजस्य स्थापित करने की भावना ने उन्हे यह कौशल सिखाया। गुप्तजी ने मेघनाद वध के अनन्तर रावण के मूर्छित होने एव राम विजय निश्चित होने पर सरमा और सीता की बातचीत मे अग्नि परीक्षा का उल्लेख किया है

तब सीता ने कहा पोछ आँखों का पानी
'सरमे, क्या दू तुम्हें ? जियो लका की रानी।'
'वसुधा का राजत्व निछावर तुम पर साध्वी,
रक्खे तुझको मत्त इन्हीं चरणो की माध्वी !
तुम सोने की सतीमूर्ति, शम दम की दीक्षा,
दी है अपनी यहा जिन्होंने अग्नि-परीक्षा।'[1]

रावण के मरने पर राम इसी तरह की अग्नि परीक्षा मे उत्तीर्ण हुई शुद्ध सीता को लेकर घर आते हैं।[2]

सोमनाथजी ने भी इसी तरह रावण के मरने पर कठिन परिस्थितियो मे सीता के पातिव्रत्य रक्षा रूप अग्नि परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की बात कही है

खारी खास गरी सती व्रत कडा सन्ताप को आवमा,
सीतालाइ पवित्र निर्मल बुझी आचार को जाच मा।
अगीकार विचार साथ गरियो निश्चित भै राम ले,
साथी भै अनुमोदना बल दिए तो राक्षसी सैन्य ले॥[3]

किसी भी अवस्था मे पति से पृथक रहने पर स्त्री के सतीत्वभ्रंश के पौराणिक विश्वास को इस युग का व्यक्ति कदाचित ही स्वीकार करे। स्त्री स्वातन्त्र्य युग मे परिस्थिति विवश नारी को सोने की तरह आग मे तपाकर ग्रहण करना—यदि वह जीवित रह जाय—मानवता को दूषित करना होगा इसलिए उक्त दो

---

१ साकेत सर्ग १२, पृ० ४८६।
२ साकेत सर्ग १२, पृ० ४९१।
३ आ० रा० ११६२।

कवियों द्वारा वाच्यायुत अग्नि परीक्षा का परित्याग युग की दृष्टि से तो सराहनीय है ही साथ साथ प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से भी इस वृत्तान्त का परित्याग समीचीन है। जो रामायणकार पीछे सीता परित्याग का वृत्तान्त लिखने है उन्हें तो अग्नि परीक्षा की बात करनी ही नहीं चाहिये थी, क्योंकि एक तो सीता-परित्याग का औचित्य सर्वथा निर्मूल हो जाता है और दूसरा राम का चरित्र अत्यधिक गिर जाता है। साक्षात अग्नि द्वारा यह कहे जाने पर कि सीता निष्पाप है[१] राम ने सीता को ग्रहण किया तो क्या किया! पति को पत्नी का विश्वास ही क्या रहा! अग्नि परीक्षा के अनन्तर एक बार सीता को ग्रहण कर और उसके साथ रमण कर उसे उस अवस्था में जब उस विशेष परिचर्या अपेक्षित हो निर्वासित करने से राम का पतित्व हो क्या रहा! राम को मानव मानने पर उनका इससे अधिक बड़ा क्या पाप होगा कि वे गर्भवती सीता को हिंस्र जन्तुओं का ग्रास बनाने के लिए निर्जन वन में भेज दें। सौभाग्यवश वहाँ उसे शरण देने वाले वाल्मीकि मिल गये और उसके प्राणों की रक्षा हो गई। मानव राम का सम्भावना तो यही रही होगी कि वह मर गई। अग्नि परीक्षा न होने पर सीता के विषय में यदि कोई कुछ कहा सुनी करे तो उससे खिन्न हो उसे छोड़ने में राम को साधारण मनुष्यों की श्रेणी में तो देखा जा सकता है अग्नि परीक्षा के बाद सीता के स्त्रीत्व से उपहास करने के अनन्तर यदि राम सीता-परित्याग ही नहीं उसे वनवास दें तो वे अति निम्नकोटि की मानवता से भी हीन लगते हैं। राम को ईश्वर मानने पर तो यह सब लीला है। सीताजी की इच्छा के अनुकूल है। मानव मानने पर उनके चरित्र के पतन की यह पराकाष्ठा है। तब अग्नि देवता का साक्षित्व ही क्या रहा!

अग्नि परीक्षा न दिखाकर श्री सोमनाथ तथा स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने चरित्र चित्रण और वस्तुविधान को स्वाभाविक तथा उपयुक्त बना लिया। गुप्तजी ने तो सीता को निर्वासित भी नहीं करवाया। सोमनाथजी ने सीता निर्वासन दिखाया है। सीता के दोहद को पूर्ण करने के लिए उसे वन भेजा गया। चूंकि गुप्तजी ने यह प्रकरण छोड़ ही दिया अतएव अकेले परम्परा का विरोध न कर सकने के कारण सोमनाथजी ने फिर उसे वापस नहीं बुलवाया। सीता की दोहदपूर्ति केवल एक बहाना सिद्ध हुई। गुप्तजी के दिगावलोकन के अभाव में महाकाव्यकार सोमनाथजी यहाँ अकृतकार्य ही रहे किन्तु अग्नि-परीक्षा का परित्याग कर उन्होंने अपने आदर्श राघव में सीता निर्वासन की असंगति को किसी सीमा तक अप्रस्तुत होने से बचा लिया।

ये तो हुए कतिपय वे स्थल जहाँ श्री सोमनाथ हिन्दी कवि मैथिलीशरण

---

१ एषा ते राम वैदेही पापमस्या न विद्यते। वा० रा०, यु० काण्ड १२१ सर्ग श्लोक ५वां (प्र० सं०) प्र० रामनारायण लाल, इलाहाबाद।

गुप्त के साथ चलते हैं। अब दो एक उन स्थलों को दिखाया जाता है जहाँ उन्होंने हिन्दी कवियों से भिन्न होकर चलने का प्रयत्न किया। जो बातें शर्माजी को अनुचित लगीं और महाकाव्योचित नहीं लगीं, उन्हें या तो उन्होंने छोड़ दिया या उनका दूसरा आशय सिद्ध किया अथवा उनका परिवर्तन कर दिया।

सोमनाथजी राजा दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ नहीं करवाते हैं। ऋष्यशृंग आते हैं, अनुष्ठानादि करते हैं और देवताओं के प्रसाद से गर्भवती होकर रानियाँ यथासमय पुत्र जनती हैं। शर्माजी चरु का खाना दिखाकर पुत्रोत्पत्ति नहीं करवाते

थो ऋष्यशृंग ऋषिपाद भयो प्रयोग,
श्रद्धा र भक्ति युत को लिइ पूर्ण भोग
सत्कर्म को चमकमा तम दूर भाग्यो
दुर्भाग्य को मन जगाउन भाग्य जाग्यो।[1]

सुग्रीव के चरित्र को उठाने के लिए शर्माजी ने अभिनन्दकृत 'रामचरित' (पंचम सर्ग) के समान[2] चातुर्मास्यान्तर लक्ष्मण द्वारा बिना धमकाए ही सीतान्वेषण के लिए वानर प्रेषण करवाया है।[3] यह ठीक है कि वह कुछ देरी से इस कार्य को करता है किन्तु अपने मित्र की अधीरता का उसे पूरा ध्यान है। इस तरह उसे विश्वासघाती, अकृतज्ञ, कामी एवं स्वार्थी मित्र बनने से बचा लिया गया है। अतिशय भीरुता भी—जो उसके राम जैसे पराक्रमी का मित्र बनकर लंका में अपना शौर्य दिखाने का विरोधाभास बन जाती है, शर्माजी उसमें नहीं दिखाते हैं। रामचरितचन्द्रिका में हिन्दी कवि रामचरित उपाध्यायजी सुग्रीव को नीच ठहराते हैं और राम के चरित्र को इसलिए समालोच्य मानते हैं कि उन्होंने वैसे कायर तथा नीच से मित्रता का।[4] सुग्रीव को नीच मानकर राम की महत्ता में सन्देह करने के स्थान पर सोमनाथजी ने सुग्रीव को ही ऊपर उठा लिया।

सोमनाथजी का लक्ष्मण शक्ति मूर्छित नहीं होता है। इससे कुछ असम्भव बातों से छुटकारा मिल गया। न संजीवनी के लिए हनुमान को रातों रात द्रोण पर्वत को उखाड़ लाना पड़ा और न भरत के उस बाण की कल्पना करनी पड़ी जिसमें बैठकर पहाड़ को हाथ में लिए हुए हनुमान क्षणात लंका पहुंच गया। गुप्तजी ने इस अस्वाभाविकता को कम करने तथा घटना को सम्भाव्य बनाने के लिए हनुमान को अयोध्या तक ही पहुंचाया है, संजीवनी भरत उसे दे देता

१ आ० रा० १ ५६।
२ द्रष्टव्य—रामचरित अभिनन्द, ५वाँ सर्ग।
३ आ० रा० सोमनाथ शर्मा ६ ४५।
४ रा० च० च०, सुग्रीव चरित्राग पृ० ५३।

है[1] और बाण पर बैठकर नही योगबल से अयोध्या से लका पहुचता है। आखिर वह लका से भी तो अल्प समय म अयोध्या पहुच गया था। जिस तरह आया उसी तरह लौट गया, किन्तु योगबल से उडना भी इस समय कपोल-कल्पना ही हो चली है, अतएव शर्माजी ने इस स्थल को छोड ही दिया। वसे योगाग्नि द्वारा शरीर त्याग म शर्माजी का भी विश्वास है ही। सीता को इस धराधाम से विदा देने म उन्होंने यही साधन अपनाया है।

प्राचीन रामकथा को लेकर महाकाव्यो की रचना करना और एतदर्थ वस्तु को अधिकाधिक सम्भाव्य बनाना नेपाली कवि सोमनाथजी तथा हिन्दी कवि गुप्तजी का प्रमुख काय रहा है। चरित्र चित्रण के क्षेत्र म सोमनाथजी उतने स्वतन्त्र नहा बन पाये जितने कि गुप्तजी देखे गय हैं फिर भी परम्परामान्य का अनुमोदन न कर पात्रो को नई गतिविधि देना शर्माजी का भी उसी तरह मन्तव्य देखा जाता है जसा कि गुप्तजी का। गुप्तजी उपेक्षित पात्रो के प्रति अत्यधिक आकर्षित हुए हैं। शर्माजी न यहा उदासीनता दिखाइ है।

सोमनाथ शर्मा और आधुनिक हिन्दी रामकाव्यो के कवियो की शली

गुप्तजी का साकेत रामकथा म सवथा नया एव सफल प्रयोग है। रचना सवथा मौलिक है जबकि सोमनाथ शर्मा तत्तत बातें भी उसी ढग स कहत हैं जो जिस तरह उनके पूर्ववर्तियो द्वारा कही जा चुकी हैं। उन्होंने साकेत से ही नही, सस्कृत क अयान्य ग्रन्थो स भी प्रभाव ग्रहण किया है। उनका प्रकृति-वणन वाल्मीकि रामायण शिशुपाल-वध, अनघराघव नैषधादि स अत्यधिक प्रभावित है। दो एक उदाहरणो स यह स्पष्ट हो जाता है

उठे अरुण केसरी उदय शल को श्रृगमा।
सटा फट फटाउदे किरणसघ को रगमा।
हटे तिमिर का घटा कति घटे कराघातमा।
भयो रुधिर धारले गगन माग मा रक्तिमा॥[2]

यह प्रात काल का वणन शिशुपाल-वध सग ६ के श्लोक ११वें तथा सग ११ के ४८वें की समन्वित एव सुस्पष्ट छाया को रखता है।

१ सुनो मिला है हमे और भी, हिमगिरि का कुछ नया प्रसाद।
मानसरोवर से आये थे सन्ध्या समय एक योगी।
मृत्युजय की ही यह निश्चय मुझ पर कृपा हुई होगी।
वे दे गये मुझे वह औषधि सजीवनी नाम जिसका।
क्षत विक्षत जन को भी जीवन देना सहज काम जिसका॥
—साकेत ११वां पृ० ४१६।

२ आ० राघव सो० ना० शर्मा पृ० ३२।

श्री राम के अयोध्या लौटने पर सुग्रीवादि मित्रजन का मन एक ओर राम के साथ कुछ समय और बिताने को कहता है दूसरी ओर अपने नये कार्यभार की याद कर घर जाने को होता है। इस मन स्थिति को दिखाकर घर लौटने के निर्णय करने में शर्माजी मीमांसा का सहारा लेते हैं।[1] श्रुति और स्मृति शब्द निम्नलिखित पंक्तियों में इसी दर्शन का प्रकट करते हैं

श्रुति अटल भ रोकी राख्ने मता प्रिय वाक्य की।
स्मृति पति उता त्यत्र आफ्नो नया स्थिति काय की।
विषम रस को पर्ना दोधार यो दुइ तर्फ की।
प्रबल हुनगो दोस्रो मौका लिई अवकाश को।[2]

उनके अलंकारादि काव्य शिल्प पर संस्कृत-साहित्य का अमिट छाप है। राम और लक्ष्मण के बीच में सीता उसी तरह लगती है जैसे दिन और रात के मध्य में सन्ध्या।

अगि पछि दुइ भाइ माझ सीता, विमल विवर्ण गुलाफ वर्ण देख्ता।
दुइ तिर दिन रात, साँझ वेला सम विचमा भइ ठानियो कुवेला।[3]

यह उपमा ज्यों की त्यों रघुवंश से उठाकर रख दी गई है।[4] वहाँ दिलीप और सुदक्षिणा के बीच नन्दिनी के लिए इसका प्रयोग हुआ है। कालिदास ने इस उपमा को प्रयुक्त कर उपमेयों की अवस्थिति का क्रम ही नहीं दिखाया प्रत्युत दिलीप की पुरुष सुलभ तेजस्विता सुदक्षिणा की स्त्रियोचित शांति धेनु की सिधाई ममत्व आदि गुणों को भी प्रदर्शित किया। दिलीप पुरुष है तो उसके लिए पुल्लिंग उपमान दिन और सुदक्षिणा तथा नन्दिनी के लिए स्त्रीलिंग उपमान क्षमा तथा सन्ध्या का प्रयोग कालिदास की काव्यकला के उत्कर्ष को पाठकों के सम्मुख रखता है। श्री शर्माजी ने केवल क्रम पर ध्यान दिया। उन्होंने कालिदास की उपमा तो अपना ली पर वे उसके सौन्दर्य को पहचानने में असमर्थ रहे।

प्राचीन उक्तियाँ तथा आदर्श यत्र तत्र आदर्श राघव में पाये जाते हैं। शर्माजी द्वारा वर्णित रघुवंशियों की जीवनचर्या कालिदास के शाकुन्तलम[5] तथा

---

१ श्रुति लिंग वाक्य प्रकरण स्थान समाख्याना समवाये पारदौबल्यमर्थ विप्रकर्षात। —जैमिनि मीमांसा सूत्र ३ ३ १४।

२ आ० रा० सोमनाथ शर्मा सर्ग १३ ५२वाँ पद।

३ आ० रा० सोमनाथ शर्मा, सर्ग ४ ५३।

४ पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।
—रघुवंश, सर्ग २, श्लोक २०।

५ अभिज्ञानशाकुन्तलम च० अ० श्लोक १६।

रघुवंश[1] में वर्णित जीवनचर्या से मिलती है

भूपाल पालन करी सकल प्रजा को
आनन्द मा जगमगाइ जयध्वजा को।
अर्ताविचारतिर अन्त्य उमेरलाई।
फर्कीउँथे मन तपोवन मा बिसाई।[2]

राजा कई गुणा अधिक देने के लिए प्रजा से कर लेता है—यह भाव वहन करने वाला 'आदर्श राघव' का निम्नलिखित पद किस तरह आगे के श्लोक से मिलता है

दिनकर सरी राष्ट्रस्वामी लिई कर ले रस।
सरस वसुधा पाछन वर्षा गरी करुणावश।[3]
प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत।
सहस्र गुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रस रवि।[4]

शर्माजी ने अपने आदर्श राघव में अलंकारों की योजना साग्रह की है।" यथार्थतः हिन्दी में साग्रह अलङ्कृत शैली में आधुनिक काल में लिखा भक्ति-काव्य कोई नहीं है। साकेत जो श्री शर्मा के कथनानुसार उनका प्रिय हिन्दी काव्य है अलंकारों से परिपूर्ण अवश्य है, किन्तु ऐसा लगता है कि गुप्तजी को उन्हें प्रयुक्त करने में कोई प्रयास नहीं करना पड़ा। वे स्वतः प्रमत लगते हैं जबकि शर्माजी के अलंकार सायास प्रणीत होते हैं। शब्दालंकारों में यमक और अर्थालंकारों में उपमा, रूपक उनके प्रिय अलंकार हैं। द्रुतविलम्बितछन्दोबद्ध पदों में यमक चातुरी दिखाने में कवि रम जाता है

न कुसुमाकरका करकापले
न कमलाकर का कर काण्डले।
वर दिवाकर का करकायले
सब हिमाकर का करका गले॥[5]

नीचे लिखे उदाहरण में यमक की माधुरी और भी अधिक रोचक हो चली है

कितव सन्त वसन्त उदाउँदा
फिक चरा छिचरा छिनमा हुँदा।

---

[1] रघुवंश, सर्ग १८।
[2] आ० रा० १६।
[3] आ० रा० सोमनाथ शर्मा पृ० १६५।
[4] रघुवंश १।१८।
[5] आ० रा० सोमनाथ शर्मा, पृ० ६६, सर्ग ८।१०।

विकृत रग तरग सरी भयो
मन हरेस हरे[1] सहज गयो।
सरस तीव्र-सती-व्रत दीक्षिता
सहचरी विचरी विधि वचिता।
कुन दिशा विदिशा विच मा हुनिन
कति गुहार गुहा रव मा भरिन॥[1]

कुछ ऐसा लगता है कि जसे ये हरिऔधजी के नेपाली म लिखे पद्य हो। सोमनाथजी ने स्वय स्वीकार किया है हि दी साहित्य के रामचरितमानस भारत भारती साकेत और प्रियप्रवास को उन्होने अच्छी तरह पढा और पाठको के सामने उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—उनका आदश राघव। यह ठीक है कि हरिऔध की रचना म जो स्वाभाविक प्रवाह है वह आदश राघव म नही पाया जाता। कवि बडी योजना के साथ अपने पदो की रचना करता रहा—उसके काव्य से यही अनुमित होता है।

दशरथ की मत्यु की आशका पर तुलसी की कौसल्या सोचती है कि सूय कुल का सूय अस्त होने वाला है।[2] जब राजा राम वियोग मे मर ही जाता है तब अन्य पुरवासी भी उनके मरण को सूर्यास्त मानते है।[3] सोमनाथजी ने भी दशरथ मरण को सूयास्त का रूपक दिया। साथ साथ दशरथ के मरणोपरान्त जो वातावरण है उसका चित्रण करने के लिए अन्य रूपको की योजना कर सागरूपक का अच्छा उदाहरण उपस्थित कर दिया

नपति रवि हुदा तुरन्त अस्त। तिमिर सवतिर वरियो प्रशस्त।
अवध कमल भो अचेत मूक। क्षत दिल मा दलियो अनन्त चूक॥[4]

आदश राघव म अलकारो की कमी नही है। समय अलकार योजना देखने वाले पाठक को आदश राघव पढकर निराश नही होना पडेगा। अत्यधिक प्रलोभनीय एव अत्याज्य वस्तु को तुलसी कृपण का सोना मानते हैं।[5] श्री शर्मा यथाय धरातल पर पदापण कर उसे अकाल के अन्न की उपमा देते है। राम लक्ष्मण को विश्वामित्र के मांगने पर दशरथ उन्हें अदेय बताते हुए कहता है

---

१ वही पृ० १००, सग ८ २८।
२ कौसल्या नपु दीख मलाना। रविकुल रवि अँथयउ जियँ जाना।
—रा० च० मा० अ० का०, पृ० ४५६।
३ अँथयउ आज भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥
—रा० च० मा० अ० का० पृ० ४८८।
४ आ० रा०, पृ० ५४।
५ रा० च० मा० बा० का०, पृ० २५७।

सौभाग्य को चिन्ह सुहस कास को
सुर्म्यू कसो, मन सरी अकाल को ।
यस्त गरी तक वितर्क भूपति
बोल्ने गर्नेनन् मुख गोविंदा प्रति ॥[१]

दृष्टान्त का भी एक उदाहरण आदर्श राघव से उद्धृत किया जाता है। इसमें भस्मासुरवृत्ति को दिखाया गया है। वैयाकरण इसे 'सन्निपात विधि' कहेंगे।

जसको जगमा खडा भए उनके नाश निदान मे भए ।
कदलीतरु को निमित्तमा फल ने घातक हुन्छ अन्तमा ॥[२]

नेपाली काव्य शैली की प्रमुख विशेषता—शब्दानुकरण सोमनाथ शर्माजी के आदर्शराघव में अतिशयता से मिलता है। हिन्दी साहित्य में यह बात नहीं मिलती है—ऐसा नहीं है। मध्यकालीन और आधुनिक काव्य में ऐसे कई स्थल मिलेंगे जहाँ ध्वनिपूर्ण सृजन हुए शब्दों का बाहुल्य है। ध्वन्यर्थव्यंजना (onamatopocia) आधुनिक हिन्दी काव्य की शैली की एक प्रमुख विशेषता है। साकेतकार की ही निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप उद्धृत की जाती हैं।

ढलमल ढलमल चचल अचल झलमल झलमल तारा
निमल जल अन्तरतल भरके
उछल उछल कर छल छल करके
थल थल करके कल कल धरके
बिखराता है पारा ॥[३]

भुलसा तरु मरमर करता था
झड निर्झर झरझर करता था
हत विरही हरहर करता था ।
उडती थी गोधूली ।
लाला लाला सखि तूली ॥[४]

ऐसे प्रयोग हिन्दी में बहुत मिलते हैं। छायावादी काल में कुछ कवियों ने साग्रह इस शैली को अपनाया। अवश्य ही आगे चलकर अब इसका चलन मन्द पड गया है। नेपाली भाषा में शब्द द्वित्वप्रवृत्ति अत्यधिक पाई जाती है। फलस्वरूप अनुरणनात्मकता के लिए उसके कवियों का खुला अवसर मिल जाता है। सोमनाथ जी की शैली में इस प्रवृत्ति का सफल प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ नीचे

१ आ० रा० पृ० २२।
२ वही, पृ० ५८।
३ साकेत, पृ० ३०२।
४ वही, पृ० ३३६।

दी जाती है। यह उल्लेखनीय है कि इस शैली को नेपाली कवि भी हिन्दी कवियों की तरह प्राय प्रकृति वर्णन में अपनाते हैं।

हरिणतण उगाली चदछन गल्लि गल्ली
मधुप मधुसगाती भुल्दछन बल्लि बल्ली।
ठुसु ठुसु उँधमष्टी लाइ उड छन मजूर
मुसुमुसु गरि भक्छन हास हाँ हा हजूर॥[१]
पर पर पहरा का पक्ति उल्की रहेका
छर छर छहरा का धार फुर्ली रहेका।
सर सर लहरा का पुज हल्ली रहेका
खर खर दहरा मे घास उर्ली रहेका॥[२]

आदर्श राघव महाकाव्य है। उसमे महाकाव्य के सभी लक्षण मिल जाते हैं, किन्तु काव्य मे कवि के स्वच्छन्द व्यक्तित्व के अभाव मे उसमे शक्ति उस मात्रा मे नही पाई जाती जो रामारव्यान सम्बन्धी एक महाकाव्य मे होनी चाहिए। इस दृष्टि से गुप्तजी का साकेत बहुत आगे बढ जाता है। श्री बलदेव मिश्र का साकेत सत तथा रामचरित उपाध्याय का रामचरित चिन्तामणि भी आदर्श राघव से आगे बढ जाते हैं भले ही शास्त्रीय दृष्टि से वह परिपूर्णता इनमे नही दिखाई पडती जो आदर्श राघव मे। आदर्श राघवकार महाकाव्य लिखने की पूर्व योजना से परिचालित होकर आग्रहपूर्वक काव्य न लिखे होते तो उनकी काव्य प्रतिभा का पाठक को अधिक परिचय मिलता भले ही महाकाव्य न मिलता। शर्माजी का दर्शन और साहित्यशास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित होना भी भावो के निश्चल निवेदन मे बाधक सिद्ध हुआ है।

रामभक्ति सम्बन्धी अन्य रचनाए भी हिन्दी और नेपाली मे मिलती हैं। हिन्दी कवि मधुसूदन दास के रामाश्वमेध को रामचन्द्र शुक्ल रामचरितमानस का परिशिष्ट ग्रन्थ होने योग्य[३] मानते हैं। किन्तु नेपाली ग्रन्थ शिखरनाथ सुवेदी का रामाश्वमेघराजा तथा सुन्दासोमनाथ का रामाश्वमेघ वस्तु मे अन्तर न होने पर भी उसकी गरिमा को छू नही पाए। यथार्थत ये बहुत कुछ अनुवाद और पौराणिकता से ग्रस्त हैं। इनकी तुलना रामराज्य की स्थापना के हेतु न तो मधुसूदन के रामाश्वमेध से—जो एक भक्तिकाव्य है—करना उचित है और न डॉ० बलदेव मिश्र के महाकाव्य रामराज्य से जिसमे कवि ने राम के चरित्र क्रिया-कलाप मे

---

१ आ० रा० पृ० ७१।
२ वही पृ० ७६।
३ हिन्दी-साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३७४।

मानवी मर्यादा का पूरा ध्यान रखा है।'[१] राम को प्रभु तो नाम मात्र के लिए कहा गया है। 'रामराज्य' भक्ति ग्रन्थ नही है। आनन्द और अदभुत रामायणा का भी अस्तित्व दोनो भाषाओ मे है। हिन्दी मे महाराज विश्वनाथसिंह कृत आनन्द रामायण और गिरधरदास रचित अदभुत रामायण प्रसिद्ध हैं। नेपाली मे भोजराज कृत आनन्द रामायण तथा भरवनाथ अर्ज्याल एव रमाकान्त द्वारा रचित अदभुत रामायण उल्लेखनीय हैं। काव्यात्मक मूल्य की यूनता के कारण इनकी तुलना नही की गई है। सीता के चरित्र पर अधिक बल देने वाले रामभक्ति सम्बन्धी प्रिया शरणजी के हिन्दी ग्रन्थ 'सीतायन' के समान नेपाली मे कोई रचना नही मिलती है। शिवनिधि जोशी के 'सीताभारत वालून' तथा चूडामणि बन्धु की लघु रचना 'वन वासिनी' मे सीता की कारुणिक दशा को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है जो किसी तरह भी हरिऔध के वदेही वनवास की उच्चता तक नही पहुँच पाता है। अथ च हिन्दी काव्य वैदेही वनवास और नेपाली रचना वनवासिनी मे मानवी सीता की विरह व्यथा चित्रित हुई है। दैवत तत्त्व के नितान्त अभाव मे उनकी सीता की विरह व्यथा की तुलना इस प्रबन्ध का विषय नही है।

हिन्दी की ही तरह नेपाली मे भी रामभक्ति सम्बन्धी और भी अनूदित किंवा अंशत अनूदित रचनाएँ मिलती हैं। तुलसीदास के रामचरितमानस का अनुवाद नेपाली गद्य पद्य दोनो मे हुआ। गद्यानुवाद या अथ करने वाले है कुल चन्द्र गौतम और पद्यानुवाद किया है रेवतीरमण न्यौपाने ने। भुवन प्रसाद ढुगल का अध्यात्मरामायण (सुन्दरकाण्ड) तथा हेमवल्लभ पाण्डे एव रेवतीरमण न्यौपाने का आग्नीध्ररामायण भी उल्लेख करने योग्य अनुवादप्रधान ग्रन्थ हैं।

---

१ रामराज्य डा० बलदेव प्रसाद मिश्र भूमिका, पृ० १०।
(हिन्दी साहित्य भण्डार, गगा प्रसाद रोड लखनऊ) प्र० स०, स० २०१७।

अध्याय पाँच

कृष्णभक्ति-काव्य

नेपाली कवि वसन्त शर्मा और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि

श्री भाइचन्द्र प्रधान के मतानुसार नेपाली कृष्णकाव्य के ही नहीं नेपाली भाषा के प्रथम कवि वसन्त शर्मा और उनकी कृति कृष्ण चरित्र नेपाली का प्रथम काव्य है।[1] इसका रचनाकाल १७४६ शाके तदनुसार १८८४ संवत ठहरता है।[2] श्री बाबूराम आचार्य ने श्रीकृष्ण सम्बन्धी पद्य लिखने वालों में इन्दिरस और विद्यारण्य केसरी को वसन्त शर्मा से भी प्राचीन माना है[3] यद्यपि वे उन्हें छायानुवादक कवि समझते हैं।[4] वसन्त शर्मा ने भी श्रीमदभागवत के आधार पर कृष्ण चरित्र की रचना की। यह कहना अधिक संगत होगा कि कृष्ण चरित्र 'श्रीमदभागवत का नेपाली भाषा में छन्दाबद्ध सार है' फिर भी उसे इन्दिरस और विद्यारण्य केसरी के श्लोकानुवाद से विशिष्ट मानना चाहिए। यह ठीक है कि श्रीमदभागवत को न पढ़कर इन्दिरस की 'गोपिका स्तुति' ही पढ़ी जाय तो इस तरह पाठक के यह न जानने पर कि वह भागवत के दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध के ३१वें अध्याय का अनुवाद है उसका कवि कृष्ण चरित्र के कवि से कहीं अधिक ऊँचा दिखाई पड़ता है।

---

१ आदिकवि भानुभक्त आचार्य ले० भाइचन्द्र प्रधान—प्राक्कथन।

२ नन्दा वेद नगेन्दु शक समये मासे तथा फाल्गुने
पक्षे शुक्ल रवौ दिने च द्वितिया श्रीकृष्ण लीला इति
परमानन्द कवौ प्रसूत रचित मुखारविन्दात्मकम
एती कृष्ण लिला जपोस् नरमा मुक्ती पदार्थगतम्॥
—कृष्ण चरित्र वसन्त शर्मा, पृ० १।

३ पुराना कवि र कविता पृ० ६ १०।

पिरति ले मजगनु हासनु सम्झि रावनू वेस लेयनु।
मुझि सब ग्रहा समझि हामरो कलिपजाछ मन धूत सावरो।[१]
दिन बित्या पछि नील केश भरी कमल झैं वदन् शोभामान धरी।
दरश दान गरी धूलि घेर घरी हृदयमा दिया कामदेव भरी॥[२]

उक्त पक्तिया संस्कृत श्लोको के अनुवाद हैं अतएव इनमे पाए जाने वाले कवित्व का श्रेय मूल लेखक को चला जाता है। अवश्य ही कही शब्द परिवर्तन मिलता है और कही शब्दानुवाद के स्थान पर भावमात्र लिया गया है। कही कुछ शब्दो को बिल्कुल छोड भी दिया गया है। जैसे निम्नलिखित श्लोक म देखा जाता है

अमृत देहि को पाप काटिया गोपछी चली शोभमान हुया।
चरण कालिनाग माथि राखिया घर कुचे उपदद हृदिया॥[३]

यहा 'प्रणत' के बदले अमृत पदाम्बुज के बदले केवल चरण और 'कृधि हृच्छय (काम) के स्थान पर दद हृदिया' उक्त बात की पुष्टि करते है। अनुवादक के रूप म इंदिरस का यह कौशल देखा जाता है कि 'गोपिका स्तुति' मूल रचना के छन्द म ही उसके भाव को अक्षुण्ण रखते हुए नेपाली मे रच दी गई। श्री बाबूराम आचार्य 'गोपिका स्तुति' को छायानुवाद मानते हुए भी उसे नेपाली की प्रथम कविता स्वीकार करत है।[४]

विद्यारण्य केसरी का युगल गीत श्रीमदभागवत के दशम स्कन्ध के ३५वें अध्याय का अनुवाद है। इन्दिरस की ही तरह केसरीजी ने भी उक्त अध्याय को सामने रखकर अनूदित किया है। इन्दिरस ने छन्द भी नही बदला। केसरीजी ने

---

१ प्रहसित प्रिय प्रेम वीक्षण विहरण च ते ध्यान मगलम्।
रहसि सविदो या हृदिस्पृश कुहुक नो मन क्षोभयन्ति हि॥
—कृष्णचरित्र बसन्त शर्मा पृ० २, तुलनीय (भा० १० पूर्वार्द्ध ३१वा अ० १०वा श्लोक।

२ कृष्ण चरित्र बसन्त शर्मा—तुलनीय—
दिन परिक्षये नील कुन्तलवनरुहानन विभ्रदावतम्।
घन रजस्वल दर्शयन्मुहुमनसि न स्मर वीर यच्छसि।
—निर्णयसागर प्रेस अष्टम स० (सन १९३८) भा० १०, पूर्वार्द्ध ३१ ३२।

३ कृष्ण चरित्र पृ० १—तुलनीय—
प्रणत देहिना पापकर्शन तृणचरानुग श्री निकेतनम्
फणिफणार्पित ते पदाम्बुज कृणु कुचेषु न कृन्धि हृच्छयम।
—भा० १० पूर्वार्द्ध ३१ ७।

४ पु० क० र कविता पृ० १२।

छन्द बदल दिया और अनुवाद करते समय वत्त मिलाने की आवश्यकता न उन्ह भी कुछ शब्दों को छोडने को विवश कर दिया। चरणों के क्रम म भी परिवतन देखा जाता है। उदाहरणाथ—

> बाऊँ काँध उपर बिसाइ बिउडो ग्रीवे गरी भ्रू नयन।
> पल्ही मोर मुकुट रतन मणि जडित कुण्डल श्रवण पर धरी।
> कोमल अगुलि चालि चालि मुरली राखी अधर पर धरी।
> बाजा कृष्ण जहाँ विभी सँगिनि होञ्यून् कसोरो अब॥[1]

संस्कृत की मूल रचना म मुरली को अधर पर रखने की बात दूसर चरण म आई है[2] वहाँ तीसरे चरण म तीसरे श्लोक क द्वितीय पाद के सलज्ज शब्द का अनुवाद केसरीजी न चतुथ पाद म किया है। इस तरह छन्दोबन्धनजनित परिवतन और भी देखे गये है व किसी अभिप्राय से किये गए नहीं माने जाने चाहिए। तात्पय यह है कि विद्यारण्य केसरी नेपाली कृष्णकाव्य के मौलिक कवि नहीं हैं। यह ठीक है कि जिसे काव्य प्रतिभा किंचि मात्र भी प्राप्त न हो उससे पद्यबद्ध अकृत्रिम अनुवाद भी नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से केसरी के कवित्व म सन्देह नहीं है किन्तु युगल गीत के काव्य वशिष्टय क लिए उन्ह श्रेय नहीं दिया जा सकता। द्रौपदी स्तुति उनकी मौलिक कृति अवश्य है किन्तु उसम न तो कोई कवित्व है और न उसे शुद्ध नेपाली कविता के अन्तगत ही रखा जा सकता है। उसम हिन्दी का इतना अधिक प्रभाव है कि उसके प्रथम और चतुथ पद तो सवथा हिन्दी के प्रतीत होत है

> चीर खेंचत दुशासन घेरी आइ नाथ शरणागत तेरी।
> लाज राख कुरु का बिच मेरी हूगि म जनम जनमकि चेरी॥[3]
> पाच पाडव कि मै पटरानी यज्ञसेन नप की ता बहिनी।
> दसि हू चरण की म जन्म की बात राख अब नाथ शरण की॥[4]

कृष्ण भक्ति के क्षेत्र म मौलिक रचना करने वाले नेपाली कवियो मे वसन्त शर्मा प्रथम हैं। उनका श्रीकृष्ण चरित—जसा पहले कहा जा चुका है—संस्कृत के श्रीमदभागवत क कृष्ण चरित्र का सार है। अन्य ग्रन्थो से भी दो एक स्थलो पर श्री शर्माजी प्रभावित हुए हैं। *श्रीमदभागवत के अनुसार इन्द्रपूजा के लोप से*

---

१ युगल गीत पुराना कवि र कविता ले० बाबूराम आचाय पृ० २३ से उदधत।

२ वामबाहु कृत वाम कपोलो वल्गित भ्रूरधरार्पित वेणुम।
कोमलागुलिभिराश्रित मार्ग गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्द।
—भा० १० ३५ १।

३ द्रौपदीस्तुति पु० क० र कविता, पृ० ३७।

४ वही पृ० ३७।

रुष्ट होकर इन्द्र व्रज के ऊपर अतिवृष्टि करवाता है। हिंदी काव्यों में भी यही बात पाई जाती है किन्तु बसन्त शर्मा का इन्द्र इसलिए रुष्ट होता है कि उसकी मालिनी से जिसे उसने गोकुल भेजा था श्री कृष्ण ने पुष्प छीन लिए।[1] हिन्दी कृष्ण भक्ति शाखा का उपजीव्य प्रधानतः श्रीमदभागवत है। उसके दशम स्कन्ध को लेकर हिन्दी कृष्ण काव्य रचित हुआ है। दार्शनिक पक्ष पर अधिक बल नहीं दिया गया है। वर्णनात्मक अंश की प्रधानता नहीं देखी जाती है। फलस्वरूप हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में मुक्तकात्मकता अधिक प्रबन्धात्मकता कम पाई जाती है, कृष्ण भक्ति साहित्य के प्रधान काव्य सूरसागर के विषय में ब्रजेश्वर शर्मा लिखते हैं

सुभद्राहरण' अर्जुन सुभद्रा विवाह जनक और श्रुतिदेव' के यहाँ कृष्ण आगमन तथा वकासुर वध भृगु परीक्षा और अन्त में 'शखचूड़ ब्राह्मण के पुत्रों की गर्भ में रक्षा के कथाप्रसंग भी सूरसागर में कथा पूर्वक ही दिये गए हैं। कवि की उनमें लेशमात्र भी रुचि नहीं दिखाई देती।[2]

कवि कथा स्थलों में उचटा हुआ दृष्टिगत होता है। उसने वहाँ दौड़ लगा दी है जबकि भक्तिभावपूर्ण राधाकृष्ण के वृत्तान्तों में वह इतना रमा हुआ है कि एक ही भाव को नाना दृष्टिकोणों से झाँका गया है जिससे कवि के पद मुक्तक हो चले हैं।

वसन्त शर्मा आदि कृष्णभक्ति साहित्य के नेपाली कवियों ने काव्य के मार्मिक स्थलों को छोड़ दिया। उनकी दृष्टि पुराणों के उन स्थलों पर लगी रही जिनमें श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप का चित्रण था। फलस्वरूप श्रीकृष्ण को परात्पर ब्रह्म सिद्ध करने में वे भागवत का भी अतिक्रमण कर गये। वहाँ श्रीकृष्ण मृत्तिका भक्षणादि परिमित स्थलों पर ही अपना विश्वरूप दिखाते हैं किन्तु वसन्त शर्मा के कृष्ण स्थान स्थान पर अपना ईश्वर रूप प्रकट कर देते हैं। वे मथुरा के लिए विदा होते समय भी गोपियों को अपना विश्वरूप दिखाते हैं। भागवत की गोपियाँ भी श्रीकृष्ण के ब्रह्म रूप से परिचित हैं।[3] सूर उसका आधार लेता हुआ भी अपनी गोपियों को इस बात के लिए तैयार नहीं करता है कि वे अपने परमप्रिय श्रीकृष्ण को ब्रह्म मानें। वे श्रीकृष्ण को सब कुछ मानने के कारण अपना ईस भी मानती हैं।[4] सूर की गोप गोपियाँ अपने आराध्य के ईश्वरत्व से सर्वथा अपरिचित हों, ऐसी

---

१ श्रीकृष्ण चरित्र पद सं० ४४ ४५।

२ सूरदास', पृ० ७८।

३ न खलु गोपिकानन्दनो भवान अखिल देहिनामन्तरात्मदृक।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदयिवान सात्वतां कुले॥
—भागवत १० स्कंध—३१ अ० ४था श्लोक।

४ मधुकर स्याम हमारे ईस। सूरसागर १०।४३२० (ना० प्र० स०) प्र० सं०।

का और गाकर 'भ्रमर-गीत' की भावभूमि में पहुँचकर रसास्वादन किए बिना नहीं रहा।

हिन्दी साहित्य में राधा की सृष्टि से एक नया रंग भर गया है। 'युगल छवि' को देखने के लिए प्रत्येक लोचन युगलों की आवश्यकता का अनुभव हिन्दी कवि ने किया।[1] राधा को मुख्य नायिका मानकर कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने अनुराग के बिना ही रसमय चित्र उतारे। बिहारी के दोहों में कृष्ण और राधा की तनद्युति के कारण ब्रज में पग पग पर प्रकाश विद्यमान रहा।[2] प्रेमानुगा भक्ति के लिए अनूठी नायिका राधा को हिन्दी साहित्य में उतारने में हिन्दी कवियों ने भागवत को छोड़कर अन्य पुराणों की शरण ली अन्यथा ऐसे प्रसंगों के दर्शन कहाँ हो पाते जो श्रीकृष्ण के श्रमजल की सुवास की लोलुपता में अपनी साड़ी धुलवाती ही नहीं।[3]

नेपाली भाषा के कवि राधा को अपने काव्यों में उतार नहीं सके। अतः नेपाली कृष्णभक्ति-काव्य का पौराणिक मूल्य अधिक और साहित्यिक मूल्य कम देखा जाता है। *कहाँ सूरादि कवियों का राग सम्बन्धी लीला प्रवाह!* कहाँ नेपाली कृष्णभक्ति धारा के कवियों के व्यक्तित्वहीन इतिवृत्तात्मक शब्दों के हल्के छींटे! राधा का नाम नेपाली कवियों में रहकर सिंह राई ने अपनी कृति 'गोपिनी' को स्तोत्र में लिया तो सही किन्तु वे उसे नायिका का कार्य करने का अवसर न दे सके। गोविन्द बहादुर ने अपनी रचना 'सवलहरी' में राधा की प्रियता को किसी सीमा तक प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है जो अपर्याप्त एवं महत्त्वहीन है। जिस राधा ने हिन्दी कवि की रचना में रस वर्षा की वही नेपाली कवि की कृति में एक बूँद तक न गिरा सकी। वस्तुतः यह अन्तर स्वाभाविक है। हिन्दी साहित्य कृष्णभक्ति शाखा प्रारम्भ होने तक लगभग ३०० वर्ष का हो चुका था। नेपाली साहित्य का यह प्रारम्भ काल था अतएव अन्तर को देखकर नेपाली कविता की शक्तिहीनता की बात सोचना उसी तरह अनुचित होगा जैसे हिन्दी साहित्य में बीसलदेव रासो को देखकर यह कहना कि हिन्दी कविता में कवित्व उत्कृष्ट कोटि का नहीं पाया जाता।

---

१ *बिहारी सतसई—सतसई सप्तक सं० श्यामसुन्दर दास हिन्दुस्तानी* एकेडेमी उ० प्र० प्रयाग, १६३१ प्र० सं०, पृ० ७६।

२ *वही, उ० प्र० प्रयाग १६३१ प्र० सं०, पृ० ७६।*

३ अतिमलीन वृषभानु कुमारी।
हरिश्रमजल भींज्यो उर-अचल तिहिं लालच न धुवावत सारी॥
सूरसागर द्वि० खं० प्र० सं० २००७ वि०, पृ० १६१३ (ना० प्र० स०)।

नेपाली और हिन्दी के कृष्णभक्ति काव्य का शैली परीक्षण

कृष्ण-साहित्य के अंतर्गत नेपाली कवि भागवत का कहीं शब्दानुवाद तो कहीं भावानुवाद करने में लगे रहे जिसमें प्रमुखत भक्ति भावना कारण रही। अनुवादकों में किसी ने श्रीकृष्ण कथा विषयक संस्कृत ग्रंथ की दो एक स्तुतियों का नेपाली में अनूदित किया, जैसे इन्दिरस की 'गोपिका स्तुति' और विद्यारण्य केसरी का 'युगलगीत'। किसी ने स्कन्ध विशेष को रूपान्तरित किया जैसे ज्योति प्रसाद का 'कृष्ण क्रीडा निकुंज'। किसी ने आख्यान विशेष को नेपाली भाषा बद्ध किया, जैसे बद्रीदास का 'रुक्मिणी हरण लीला छन्द', कृष्ण प्रसाद घिमिरे का रुक्मिणी विवाह, कृष्णनाथ सिग्देल का सुदामा चरित्र और किसी ने सारे भागवत का सार नेपाली में लिख दिया—इसमें मुरारी ढुंगाना का 'श्रीमदभागवत कथा सार'। ढुंगानाजी मूलत संस्कृत के कवि हैं। उन्होंने अपने संस्कृत पद्यों का अनुवाद फिर छन्दोमयी नेपाली भाषा में कर लिया। चूंकि पहले उन्होंने संस्कृत में रचना की इसलिए नेपाली साहित्य के इतिहास में वे अनुवादक ही माने जायेंगे। अवश्य ही साधारण अनुवादक से उनका महत्त्व इसलिए अधिक बढ़ जाता है कि मूल संस्कृत रचना के कर्ता वे स्वयं हैं। संस्कृत के श्लोकों में श्रीमदभागवत की वस्तु का संक्षिप्त रूप रहने के कारण उन्हें भाव और प्रबन्ध की मौलिकता का श्रेय नहीं दिया जा सकता। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि वेदव्यास के श्रीमदभागवत के सामने उनसे किया गया उसका संक्षेप कुछ नहीं है।[1] उनका यह बड़ा काम है कि उन्होंने संस्कृतज्ञ भक्तों के लिए संस्कृत श्लोकों, संस्कृत न जानने वालों के लिए नेपाली भाषा में श्रीमदभागवत सार को लिपिबद्ध कर दिया और पाठ करने की सुविधा प्रदान की जो कवि का प्रमुख ध्येय जान पड़ता है। कवि काव्योपयोगी स्थलों पर नहीं रमा, प्रत्युत वह रमा है दार्शनिक प्रसंगों में—जैसे कपिलदेव अवतार की तत्त्वमंजूषा, हंसावतार का आत्मविवेचन, कृष्ण की उद्धव से कही योग मंजूषा। रास क्रीडा को कवि ने केवल चार श्लोकों में पूर्ण कर दिया और वह है भी सर्वथा नीरस तथा शुष्क सूचनामात्र। 'मृत्तिका भक्षण' प्रसंग को लेकर सूर ने माँ और बच्चे का मार्मिक चित्र ही हमारे सामने नहीं रखा, प्रत्युत भगवदैश्वर्य को दिखाकर अद्भुत रस की सृष्टि की। ब्रज की स्त्रियाँ खबर देती हैं कि कृष्ण ने मिट्टी खाई, यशोदा छड़ी लेकर कृष्ण से मुँह दिखाने के लिए कहती हैं, कृष्ण

---

१ हुन ता कहाँ को वेदव्यासजी को श्रीमद्भागवत, कहाँ का यो सारांश लापनि भागवत भागवत हो। यसमा पनि उही महान ग्रन्थ का चरित्र छन—बुझ्ने ले संस्कृत श्लोक मात्र पाठ गर्नू। न बुझ्ने ले भाषा श्लोक पाठगर्नू।

—श्रीमदभागवत कथासार की भूमिका, श्री मुरारी ढुंगाना।

भयभीत हैं कि मिट्टी खाना स्वीकार नहीं करते हैं और यशोदा से डरकर जब वे मुंह खोलते हैं तो मुंह के अन्दर समस्त ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ता है किन्तु कवि शिरोमणि सूरदास यशोदा को उसका मर्म समझने नहीं देते अन्यथा वात्सल्य में व्याघात उपस्थित हो जाता। वह एक ओर किसी भूत प्रेत की आशंका से घर घर श्रीकृष्ण का हाथ दिखलाती है दूसरी ओर कृष्ण को मनाती है कि वह मिट्टी न खाए और अपनी निष्ठुर शिक्षा के लिए पछताती है।

गोपाल राइ चरनहिं हौं काटी।
हम अबला रिस बाँचि न जानी बहुत लागि गइ साँटी।
वारौं कर जु कठिन अति कोमल नयन जरहु जिनि डाँटी।
मधु मेवा पकवान छाँड़ि कै काहें खात हो माटी।
सिगरोई दूध पियौ मेरे मोहन बलहि न देहौं बाँटी।
सूरदास नंद लेहु दोहिनी दुहहु लाल की नाटी॥[1]

इस सारे प्रकरण में भक्तों को भक्ति और रसिक पाठकों को वात्सल्य की साथ साथ अनुभूति होती है। इसी प्रसंग को ढुंगानाजी ने केवल एक श्लोक में पूरा कर लिया जिसका किसी के ऊपर किसी तरह का प्रभाव नहीं पड़ता है। उनके संस्कृत श्लोक भाषा की दृष्टि से नेपाली पद्य से अधिक मन्द हैं।

क्रीडन्वयस्यैः सह लीलया हरि
जग्ध्वा मृदं तन्मिषतः स्वमातरम्।
अदर्शयद्विश्वमिदं चराचरं
मास्ये दिशो लोक सचन्द्रतारकम्॥[2]

इसका नेपाली अनुवाद इस तरह किया गया है

खेलेर साथी सँग दिल्लगी गरी
खाएर माटो उही भानले गरी
माताजीलाई रवि चन्द्र तारक,
देखाउनु भो मुखमा चराचर॥[3]

हिन्दी कृष्णभक्ति काव्यों में वात्सल्य रस की जो सरस वर्षा हुई नेपाली में उसका सर्वथा अभाव है। कहीं उन वृत्तान्तों का परिगणन मात्र हुआ है जिन्हें हिन्दी कवियों ने मार्मिक शैली में अभिव्यक्त किया। पतञ्जलि गजुर्याल की रचना गोपालवाणी के नाम से ऐसा लगता है कि उसमें श्रीकृष्ण का बाल्य वर्णन होगा,

---

१ सूरसागर सं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ३४८ (ना० प्र० स०) प्र० सं० २००७ वि० प्र० खण्ड।
२ श्रीमदभागवत सार मुरारी ढुंगाना, पृ० ६४।
३ वही, पृ० ६४।

किन्तु पढकर पता चलता है कि उसम विष्णु के अवतारो का सक्षिप्त वणन है जिसे बालकृष्ण यशोदा से करते हैं। इसी का रूपान्तर चमत्कृत अनुप्रासमयी शली मे पीछे राजीवलोचन जोशीजी ने किया।[1] हिन्दी म भी अवतार लीलाओ का उल्लेख करने वाली साहित्यिक कृतिया क अतिरिक्त कतिपय रचनाए हैं जिनका काव्यात्मक महत्त्व नही के बराबर है।

नेपाली कृष्णभक्ति काव्य का कलापक्ष बडा ही निबल है। उन्होने लिखा ही इतना कम कि जिसमे उन्ह अपनी वस्तु को कलात्मक शैली म दिखाने का अवसर ही नही मिला। उस सक्षेपीकरण म कथा का साधारण रूप म भी आद्यन्त कह देना दुष्कर है। वसन्त शर्मा के कृष्ण चरित्र को इसलिए काव्य साहित्य मे स्थान मिला प्रतीत होता है कि वह कृष्णभक्ति का लेकर प्रथम मौलिक रचना है। कविता का प्राण रमणीयता उसम नही के बराबर है। छन्दोबद्ध रचना होने के कारण उसम श्रवण सुखदता है भाषा पर कवि का अधिकार होने के कारण उसम विचार ग्राहकता भी है किन्तु जिन कल्पना चित्रो क कारण कोई कृति काव्य नाम धारण करती है वे वहाँ नही हैं। कभी खोज करने पर दो एक अप्रस्तुत विधान के उदाहरण शर्माजी के कृष्ण चरित्र म मिल पायग। एक उदाहरण यह है

> वृक्षका ज्यदि शाद ले गरिका लम्कर मर्यो सब तहा।
> अग्नीमा समिधा गिर्या भनि सखाप पारी दिया छिन महा।[2]

सर ध्री को पकडकर कीचक के शव के साथ बलात जलाया जा रहा था। तभी वृक्ष लेकर भीमसेन पहुच गया। उसने समस्त सनिको को गिरा दिया वे इस तरह गिर मानो वे अग्नि मे गिरने वाली समिधाएँ हो।

कुछ उदाहरण शब्दालकार क भी मिल जात है जसे—[3]

> तिनका बात सुनेर कस सहित सारा अचम्भ भया।
> धोबी का कपडा लुट्या कति कुट्या कसो उदक रह्या।[4]

शर्माजी का कृष्ण चरित्र शार्दूल विक्रीडित छन्द मे रचा गया है। वणवृत्त म अपेक्षित ह्रस्वदीघ के क्रम को निभाने के लिए कवि का शब्द भण्डार समृद्ध होना चाहिए। नही तो शर्माजी की तरह ह्रस्व को दीघ, दीघ को ह्रस्व और कही कही शब्दो को तोडना मोडना अपरिहाय हो जाता है। शर्माजी को आकाश समेत भानूकीण (भानु किरण) खूनी वसूदव, सीकार उठीन् आदि अशुद्ध शब्दों को

---

१ द्रष्टव्य—पुराना कवि र कविता स० बाबूराम आचाय पृ० २५।
२ कृष्णचरित्र वसन्त शर्मा, ६४२वा पद।
३ वही ८१वाँ पद।
४ वही, ७०वाँ पद।

लिखना पड़ा। शर्माजी की भाषा में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है। वे 'सदा' का ही नहीं, एकदा का भी उपयोग कर लेते हैं। वसन्त शर्मा की तुलना में यदुनाथ पोखर्यालजी के 'कृष्णचरित्र' का कलापक्ष अच्छा बन पाया है। अत्यधिक संक्षिप्त होने के कारण इस काव्य में न तो पोखर्यालजी की अनुभूतियों का पूर्ण परिचय मिलता है और न अभिव्यक्ति का ही पूरा स्वरूप स्पष्ट होता है फिर भी इस कृति से पोखर्यालजी में काव्य प्रतिभा के अस्तित्व का सरलतया अनुमान किया जा सकता है। भुजंग प्रयात छन्द में वर्णित 'कृष्णचरित्र' की संगीतात्मकता क्वणनकारी शब्दों के प्रयोग से दुगुनी हो चली है।

चरणपदमा बजनी बाहुलीमा
क्वणत कंकण किंकिणी छन कटीमा।
द्विजामी असल पह्रि खेल्दा भटक त्यो
सदा सम्झँदा छाति मेरो भरिन्थ्यो।[1]

हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य इस दिशा में अत्यधिक समृद्ध है। कोई विरला ही कवि होगा जिसकी कला में यह विशेषता न मिले। नीचे दो उदाहरणों द्वारा यह बात पुष्ट की जाती है

कंकन चुरी किंकिनी नूपुर पजनि बिछिया सोहति।
अदभुत ध्वनि इनि मिलिके भ्रमि भ्रमि इत उत जोहति।[2]
नूपुर कंकन किंकिनी करतल मंजुल मुरली
ताल मृदंग उपंग चंग एक सुर जुरली।
मृदुल मुरज टंकार तार भंकार मिली धुनि
मधुर जंत्र की तार भँवर गुंजार रली पुनि॥[3]

यमक और अनुप्रास की छटा भी पोखर्याल के कृष्णचरित्र में दर्शनीय है। केवल भाषा का अन्तर है अन्यथा इस दिशा में उनकी कला हिन्दी कृष्णभक्त कवियों की सर्वथा अनुगामिनी है

कनक कुण्डल भलकदा कान माहाँ,
कुटिल कुन्तल हिंडदछन गाथ माहा।
मुकुट सीरमा खुब खुल्या को छबीले,
अलौकीक शोभा त देखो मन मन ले।[4]

हिन्दी में न जाने ऐसे कितने ही चित्र अनुप्रासमयी भाषा में चित्रित हैं

---

१ कृष्णचरित्र यदुनाथ पोखर्याल दूसरा पद।
२ सूरसागर दशम स्कंध पद १०५८ पृ० ६२५, ना० प्र० स० प्र० ल०।
३ नन्ददास ग्रन्थावली रास पंचाध्यायी पद २१।
४ कृ० च० य० ना० पो० तीसरा पद।

कनक रतन मनि जटित रचित कटि किंकिनि कुनित पीत पट तनियाँ।[1]
मोर मुकुट, कुण्डल स्रवननि घर, दसन दमक दामिनि छवि छोरी।[2]

यमक के दो एक उदाहरण यदुनाथ पोखयाल के 'कृष्णचरित्र' म भ्राय है।[3] हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य मे जगन्नाथदास रत्नाकर और हरिश्चन्द्र की रचनाओं मे यमक-योजना दर्शनीय है

(क) ओसर मिले श्रो सर ताज कछु पूछहि तो।
(ख) ले गयो अक्रूर कूर सब सुखमूर।
(ग) बारन कितेक तुम्हें बारन कितेक कर,
बारन उबारत ह्वै बारन बनो नहीं।[4]
रोक्त साँसुरी पासुरी मे यह बाँसुरी माहन के मुख लागी।[5]
खबर न तोहि सकेत की कही केतकी बार।
चलि पथ कुञ्ज निकेतकी कितको ठानत आर।[6]

हिन्दी साहित्य म पीताम्बर आदि कृष्ण को मेघ का रूप देना प्राय प्रचलित रहा। सूर सुगधित पीतवस्त्र की श्रीकृष्ण के श्याम शरीर पर फहरन को जलद-मध्य दामिनी विलास मानत हैं।[7] कही उनकी दृष्टि म यह समता इतनी बढ जाती है कि घन ही घनश्याम लगन लगते हैं।[8] परमानन्ददास सुन्दर पीन वसनयुक्त कठ को दामिनायुक्त जलद मानत हैं। कुम्भनदास न श्रीकृष्ण क अगो को 'जलघटा' तथा वस्त्र को दामिनी माना है।[9] गोविन्द स्वामी न घन और नन्दलाल की तुलना

---

१ सू० सा० दशम स्कध पद १०६, प्र० ख०, प्र० स०।
२ वही पद ६७२, प्र० ख०, प्र० स०।
३ (क) भनी आकुल गोकुलमा वस्यावा—कृ० च०, ११वा०।
(ख) विचित्र अनेक चरित्र पावन, इन मगल गाइ गाई च ह्याया।
रसीला सुनो सुनिससार तछन मनी भ फिरी फोरि लियावतार।
—कृ० च०, १७वाँ पद।
४ प्रवीण पदावली (क ख ग), पृ० ५७ ५८।
५ उद्धव शतक जगन्नायदास रत्नाकर, ४४वाँ।
६ भारतेन्दु ग्र०, पृ० १८५।
७ ज्यो दामिनि बिच चमकि रहत है फहरत पीत सुवास—सू० सा०, दशम स्कध, द्वि ख०, पद १८३५, ना० प्र० सभा।
८ श्राज घन श्याम की अनुहारि। सूरसागर, द्वि० ख० (ना० प्र० स०), प्र० स०, पद ३६३३।
९ परमानन्द सागर पद १२४वाँ।
१० कुम्भनदास, पृ० ४२, पद ६३।

करते हुए दोनों को एक-सा माना है।[1] ब्रजवासीदास श्रीकृष्ण के पट का उत्प्रेक्षित करते हुए लिखते हैं

> स सुभग तन पीत पट, चटकीली द्युति धारि।
> शोभित घन पर दामिनी, मनु धपसर्ग बिसारि।[2]

नेपाली कवि यदुनाथ पोखर्यालजी भी श्रीकृष्ण के शरीर को बादल की उपमा देते हैं किन्तु बिजुली का उपमेय के पीताम्बर ही नहीं वजयन्ती माला को भी मानते हैं। हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य में माला को प्राय इन्द्रधनु का रूप दिया गया है। पीताम्बर या दाँत बिजुली के रूप में चित्रित किए गए हैं। यह और विशेषता पोखर्यालजी की है। जहाँ हिन्दी कवि वर्णन के कारण पीताम्बर को विद्युद्विलास मानते हैं वहाँ पोखर्यालजी ने श्रीकृष्ण की तन-कान्ति की भव्यता के कारण पीताम्बर और वजयन्ती माला को विद्युत्कान्ति समझा है। कृष्णचरित्र में यह पद इस तरह है

> घन श्याम पीताम्बर वजयन्ती।
> गला लटकिया का चरण का नजिक या।
> चमक बीजुलिको भन्दा भयाति देख्ता।
> प्रभू को नखकान्ति ले मन हरिलछ।[3]

केदारनाथ खतिवडा की शैली अपने पिता हामनाथ खतिवडा की ही तरह स्पष्ट तथा विषयानुसारिणी है। एक अनुवाक्य की शैली का सन्तोषजनक रूप इनकी रचनाओं में मिलता है। इनकी भाषा अधिकांशतः प्रसाद गुणोपेत है। इनका उक्ति-सौन्दर्य मुरली विषयक गोपियों की बातचीत में सूरादि हिन्दी कवियों से मिलता जुलता है। गुण हीन और अभिमानिनी होने पर भी मुरली को श्रीकृष्ण का जो अनन्य प्यार प्राप्त है उसके कारण उससे ईर्ष्या करती हुई गोपियाँ विचारती हैं

> बास की आफु भयी निगालि उपनी खोक्री रुखो भ अति।
> पान गर्छे हरिका मधुर अधरको मानू गराई पति॥
> तरक छन प्रभु जी सदा वशमहा हातरय उपर धदछन।
> ओठमा लाइ सुधा पिलाइ निशि दिन खुप अक्माल गदछन॥[4]

श्रीमदभागवत के आधार पर प्रदर्शित इस पद की वचन चातुरी में गोपियों की श्रीकृष्ण विषयक अनुरक्ति की समय एवं कलात्मक अभिव्यजना देखी जाती

---

१ गोविन्द स्वामी पृ० ७६, पद १५२।
२ ब्रजविलास, पृ० २७६।
३ कृ० च० य० ना० पो०, पद स० ४।
४ प्रेमसागर कृष्णचरित्र, बुइगल पृ० ६३ से उदधृत।

है। सूर ने अपने पद में और भी अधिक उक्ति-सौन्दर्य भर दिया है

मुरली तऊ गोपालहि भावति।
सुनि री सखी जदपि नन्दनदहि नाना भांति नचावति।
राखति एक पांय ठाडो करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आग्या गुरु कटि टेढ़ी ह्वै आवति।
अति आधीन सुजान कनौड गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर कर-पल्लव सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट हम प कोपि कोपावति।
सूर प्रसन्न जानि एको पल अधर सु सीस डोलावति।[1]

कृष्ण के मुरलीवादन के प्रति राधा की परमासक्ति का व्यंजित कराते हुए गोविन्द स्वामी एक गोपी के मुह से श्रीकृष्ण को कहलाते हैं

बरजत क्यों जु नहीं हो लालन अपनी मुरली को,
हमारी सखीन को सबसु चुरावत।
स्रवन द्वार ह्व पैठति चित भंडार खोलति,
निधरक ह्व धीरज ध्यान ल आवत।
रोम पुलकि आगे, अँसुवा पुकार लाग
तेऊ अंत नहिं पावत।
गोविन्द प्रभु भले जु भलोई न्याव देख्यो,
ता पर रीझि अधर मधु प्यावत॥[2]

बजनाथ सेढाई के श्री काला प्रताप माला में कीर्तन पद्धति देखी जाती है। उनकी भाषा हिन्दी से अत्यधिक प्रभावित है। कहीं कहीं नेपाली सम्बन्धवाचक अव्ययों को निकालकर उनके बदले हिन्दी अव्यय रख देने से श्री सढाई की भाषा सर्वथा हिन्दी बन जाती है। नेपाल के अनुकरणात्मक शब्दों का इनकी भाषा में व्यवहार हुआ है जैसे—डाडडुङ्के खलाङ्ग खुट्टी पिटामारी लूकामारी, कूना-कामा आदि शब्द। हिन्दी का कृष्ण भक्ति साहित्य ऐसे शब्दों का भण्डार है। रुनझुन, फरहर रिमझिम डहडह अरवराइ विलविलाना रुनुक झुनुक टकटकी, अटपटक घनन घनन, डगमग आदि शब्दों से हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य भरा पड़ा है।

गोविन्द बहादुरसिंह की भाषा शैली में कोमलकान्त पदावली प्रयुक्त हुई है। यथार्थतः नेपाली कवियों में इनकी शब्दावली ही रसमय कृष्ण साहित्य के सर्वथा अनुकूल है। ब्रजभाषा का सा माधुर्य इनकी भाषा में स्पष्ट है।

---

१ सूर सागर, पद १२७३।
२ गोविन्द स्वामी, पृ० १९ पद ४० विद्या विभाग, काकरोली।

विरह अग्नि ले शरिर जल्छ सहन मो सकदीन ।
सम्झ्छु कष्ण रुन मन लाग्छ कहनमो सकदीन।[1]
माया को छुरि दिलमा घुस्छ पापि मन चकानु ।
समझ्छु कष्ण रुनमन लाग्छ मुडुमा भकानु ॥[2]

इन्होने आलम्बन चित्रण म कृष्णभक्ति के ब्रजभाषा कवियो का अनुकरण सफलतापूवक कर दिखलाया है। कृष्ण का रूप चित्रण करते हुए गोविन्द बहादुर सिंह कहते हैं

माया को वेगले छोपेर ल्यौछ पशिना खतखलि ।
मुहार को झलक ननुको पलक देरनछ झलिझलि ।।
हातको लकुट शिरको मुकुट त्यो मृदुवचन ।
मुहार को लालि जुल्फि को कालि कम्बर को लचकन ।[3]

इसी शोभा पर हिंदी के नन्ददास लट्टू हैं

कमल बदन पर अलकनि कहुँ-कहु श्रम जल झलकनि ।
सदा बसो मन मेरे मजु मुकुट की लटकनि ।[4]

ज्योति प्रसाद गौतम की शैली पौराणिक है। व केवल कथा को सक्षेप म कह देते हैं। काव्यात्मक चमत्कार उनकी रचना कृष्ण क्रीडा निकुज म नही मिलता है। अपने जाने वे तुक मिलाना चाहते हैं किन्तु श्रुति मधुर वह नही बन पाया है। कारण उन्होने चरण के कवल अन्तिम स्वर म एकता लाने का प्रयत्न किया है जैसे

राक्षस राजा द्वारा पीडित भई कराइन गई भूमि ।
सग यौता ली ब्रह्माजी ले वैष्णव को स्तुति गरे अनि ।[5]

गौतमजी इस अतुकान्त मानने के पक्ष म नही दिखाई देते हैं क्योकि अन्तिम स्वर मिलाने का उनका यह काय सायास है। उन्होने सवत्र इस प्रक्रिया को निभाया है अतएव इस हिन्दी कवि हरिऔध क प्रियप्रवास की अतुका त शली का अनुकरण मानना ठीक नही क्योकि इसम तुक है भले ही वह केवल एक स्वराश्रित ही क्यो न हो।

श्री मुरारी ढुगाना ने श्रीमद्भागवत कथा-सार को कथावाचन की दृष्टि स लिखा है। विविध सम्प्रदाय-वना म लिखा हुआ उनका यह ग्रन्थ नेपाली भाषा

---

१ सवलहरी गोविन्द बहादुरसिंह (बुइगल पृ० २२८ से उद्धृत)।
२ वही पृ० २२८।
३ वही पृ० २२८।
४ न० दा० प० रामपचाध्यायी पृ० ३५ दो० ६४।
५ कृष्ण क्रीडा निकुञ्ज ज्योतिप्रसाद गौतम दूसरा सस्करण पृ० १।

का पुराण बन गया है। वे स्वयं भूमिका में इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्होंने यह रचना वेदव्यास के भागवत का संक्षेप में पाठ करने के लिए की है इसमें काव्यात्मक कला कोई विशेष नहीं है।

नेपाली और हिन्दी कृष्ण काव्य में रुक्मिणी विवाह

नेपाली साहित्य में राधा के बदले भी पौराणिक रुक्मिणी मिलती है किन्तु हिन्दी-साहित्य की राधा का प्रतिनिधित्व वह नहीं कर पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की परिणीता है और राधा प्रेयसी। डा० रत्नकुमारी हिन्दी-साहित्य की राधा को स्वकीया ही मानती हैं।[1] उनकी इस मान्यता का आधार सूर का वह पद है जिसमें कहा गया है कि जिसे व्यासजी रास कहते हैं वह विविध विलासों से भरा गन्धर्व विवाह है।[2] यहाँ गन्धर्व विवाह का व्यापक अर्थ लिया गया है। किसी अनूढ़ा के साथ की गई प्रेम क्रीड़ाएँ इसके अन्तर्गत हैं। गन्धर्व विवाह तभी प्रचलित विवाह के रूप में मान्य होता है जबकि नायिका के उसके संग सम्बन्धी नायक की पत्नी मानने लगते हैं और वह उसके घर चली जाती है। रुक्मिणी आदि पटरानियों की तरह राधा कृष्ण के घर नहीं बसती है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा एक विशिष्ट कृष्ण प्रिया गोपी के रूप में दिखाई देती है न कि कृष्ण-पत्नी के रूप में। रही नन्ददास कृत 'श्याम सगाई' की बात। वह भी पुष्टि-सम्प्रदाय गत अलौकिक रास का एक लौकिक विधान है। कृष्ण गारुडी का रूप बनाकर राधा के काल्पनिक विष को उतारकर सगाई स्वीकार करवाते हैं अथ च सगाई को शादी कैसे मान लें। यदि राधा देव ददिया से यह वरदान मांगती है कि नन्दसुन[3] उसका पति हो तो इसी से विवाह सम्पन्न कैसे समझ लिया जाए। हम यह सम्भावना कर सकते हैं कि राधाकृष्ण का विवाह हो गया होगा पर कृष्ण साहित्य में राधाकृष्ण के विवाहित जीवन पर कुछ नहीं लिखा गया। वस्तुतः राधा का स्थान एक परिणीता पत्नी से कहीं अधिक ऊँचा है। वह हिन्दी भक्ति-साहित्य में उसी तरह परकीया है जिस तरह गौडीय वैष्णव मत में। स्वकीया नायिका के प्रति प्रेमाचरण उस सौन्दर्य और भावात्मकता की सृष्टि नहीं कर सकता है जो अनूढ़ा परकीया के प्रति। रस होता है प्रयत्न में, प्राप्ति में नहीं। विवाहिता के प्यार में प्रयत्न पक्ष अत्यल्प तथा अधिकांशतः मामलता रहने के कारण मार्मिकता कम रहती है। अथ च राधा और कृष्ण का प्यार सूरादि कवियों ने उस समय दिखाया है जबकि उसमें

---

१ हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि पृ० २९१ भा० सा० म० प्रकाशन।

२ जाको व्यास वरनत रास। है गन्धर्व विवाह चित्त दै सुनो विविध विलास।
—सू० सा० १०।१०७१, पृ० ६२६।

३ वही, १०।१०७१ पृ० ६२६।

सवथा निश्छलता एव स्वाभाविक्ता रहती है। कृष्ण की गुण-गरिमा तथा रूप सौन्दय से खिचकर ही नही, साथ साथ रहने के कारण राधा कृष्ण की ओर झुकती है। राधा की गाय दुहने का काम श्रीकृष्ण करते है, किन्तु करते हैं विलक्षण ढग से। वे दोहनी को ही नही देखत प्रत्युत राधा की ओर भी झाँकते हैं। परिणाम स्वरूप दूध की एक धार दोहनी म जाती है दूसरी राधा की ओर।[1] इस पर सुनाई देती है राधा की स्नेह स्निग्ध झिड़की।[2] इस तरह उदभूत सहज स्नेह कभी नही छूटता। उद्धव स गोपिया स्पष्ट कह देती है

लरिकाई को प्रेम कहो अलि कसे करके छूटत ।[3]

हिन्दी का कृष्णभक्ति साहित्य इस शाश्वत स्नेह के कारण अमर है। उसका ससार क साहित्य म अपना अलग ही महत्त्व है। राधा को उपेक्षित कर नेपाली काव्य अमर प्रणय दिखाने का अवसर हाथ से खो देता है। रुक्मिणी की कृष्ण विषयक रति राधा की सी कहाँ हो सकती है। वह तो प्रथम विवाह करने को उत्सुक पीछे पत्नी बनी हुई रहती है। वहा अचेतन लरिकाई को प्रेम नही तरुणाई की सचत महत्त्वाकाक्षादि वासनाएँ काम करती है कृष्ण तब राजा है अल्हड किशोर नही रुक्मिणी पतिवरा तरुणी है मुग्धा बालिका नही फिर भी सूरादि हिन्दी कवियो ने जिस रूप म कृष्ण रुक्मिणी को चित्रित किया उस रूप म नेपाली कवि नही कर पाय। रुक्मिणी परिणय सम्बन्धी लगभग २० काव्य हिन्दी मे विद्यमान हैं।

नेपाली कवि वसन्त शर्मा ने श्रीकृष्ण की आठ पत्नियो के नाम गिना दिये हैं। उनम रुक्मिणी का भी नाम आया है। यदुनाथ पोखर्याल ने अपने अति सक्षिप्त कृष्णचरित्र म उसका नामोल्लेख भी नही किया है। श्री बाबूराम आचाय के शब्दो म यह मामूली भक्तिरस ल भिजेको[4] अर्थात् साधारण भक्तिरस स स्निग्ध काव्य है। कवि न इसम अतिप्रसिद्ध स्थलो को तक छोड दिया है और जिन बातो को अपनाया है उनका भी वणन पूरी तरह नही हुआ है। बद्रीदास ने अपने

---

१ धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनी चलावत एक धार जहँ प्यारी ठाडी। प्र० स०, स० १० पद १३५४।

२ तुम प कौन दुहाव गया !
इत चितवन उत धार चलावत यहो सिखायो मया ?—सूर सा० पद १०, १३५२।

३ सूरसागर (भ्रमर गीत) स्क० १० पद स० ४६६४ (ना० प्र० स०) प्र० स०।

४ पुराना कवि र कविता पृ० ८८।

'रुक्मिणी-हरण-लीला-छन्द' मे सवप्रथम स्पष्ट दाब्दों म यह लिखकर कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं और कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की कया रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है भक्ति भाव के जागरण की भूमिका बाँधी है और अय रसा के स्वाभाविक सचरण म एक वाधा खड़ी की है क्योंकि भगवान और लक्ष्मी माता की क्रियाओं के लिए पाठकों में साधारणीकरण और तात्दात्म्य की भावना सम्भव नहीं। कृष्ण के लिए बद्रीदास की रुक्मिणी का जो सदेश है उसम एक प्रेयमी का प्रणय नहीं, भक्तिन की अगाध श्रद्धा अभियजित होती है

तिन लोकको पति पालनादि गरनया हे दीनबधो हरी।
लायक छन भलाइ सम्झनु भया बस्या छु दासी सरी।[1]

जो तीना लोका के पालन वाले हैं, दीनबधु हैं व रुक्मिणी को जो किसी तरह लायक नहीं प्रेयमी नही दामी समझकर ही तो अपनायेंगे अतएव रुक्मिणी अपन आपको दामी कहती है। कुण्डिनपुर म भ्रमण करते हुए बद्रीदास क कृष्ण वलराम को भी वहाँ के निवामी मोहित होकर बडी उत्सुकता म देखन तो हैं किन्तु हिदी कवियो का-सा आलम्बन चित्रण व नहीं कर पाय। उनके वणन स हम इस बात का अनुमान करते हैं कि कृष्ण वलराम सुनरा सुदर रहे होंग, तभी तो कुण्डिनपुरवासी उहें देखकर मुग्ध हो गय।

झुन-झुन गल्लिमहा सवारि पुगि गे रथ रथ धर को वहा।
नर नारि हरिलाइ दसन गरी हात पसारी तहा।।[2]

यथायत कवि की दृष्टि कृष्ण वलराम के गौय तथा ईश्वरत्व की ओर लगी रही। कृष्ण रुक्मिणी के वराती इन्द्र उपेन्द्र ब्रह्मादि देवता हैं।[3] तब आसमान म अप्सराए नाचती हैं। रुक्मवधोद्यत कृष्ण को रुक्मिणी ईश्वर कहकर ही वधकम स हटाती है।

मारो मती भाई है मेरा। छांडो नाथ तुम्हारो चेरो।
मूरख अध कहा यह जाने। लक्ष्मीकत को मानुष माने।
नहिं जाने कोई तुमरे अत। भक्त हेतु प्रगट भगवत।
यह जड कहा तुम्हें पहचाने। दीनदयाल जग तुम्हें बखाने।[4]

यहा यह ध्यान देने योग्य है कि रुक्मिणी की यह स्तुति बद्रीदास न नेपाली मे न लिखकर हिदी म लिखी। उपदेश तत्वदर्शन सास्कृतिक वार्ताएँ तथा स्तुतिया नेपाल म भी हिदी म लिखी जाती रही। यह इसलिए कि ऐसे स्थलों पर जन

---

१ रुक्मिणी हरण लीला-छन्द बद्रीदास, ७०वाँ पद।
२ वही १३७वा पद।
३ रुक्मणी हरण-लीला छन्द बद्रीदास, पृ० १६।
४ रुक्मणी हरण बद्रीदास पृ० १६।

साधारण की भाषा से उत्कृष्टतर साहित्यिक या बृहत्तर क्षेत्रवाली भाषा का प्रयोग प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। हिन्दी जगत में इस प्रवृत्ति के कारण संस्कृत या संस्कृतनिष्ठ हिन्दी प्रयुक्त होती रही। अवधी में लिखे गए 'रामचरितमानस' के अत्रि राम की स्तुति संस्कृत में करते हैं।[1] श्री गंगाप्रसाद पराजुली न्यायाचार्य से जो कुछ समय राष्ट्रीय पुस्तकालय सिंह दरबार काठमाडू के पुस्तकालयाध्यक्ष रहे, बात करने पर पता चला कि उन्होंने एक बार राणा शासनकाल में नेपाली भाषा में धर्मोपदेश दिया जिसे सुनकर गण्यमान्य लोगों ने इस बात पर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया कि आचार्यजी ने नेपाली में भी धर्मवार्ता की। सम्भवतः इसी प्रवृत्ति के कारण नेपाल के जोस्मनी सन्त कवियों ने ज्ञानदिलदास की उदयलहरी को छोड़कर लगभग समस्त पद-रचनाएँ हिन्दी में कीं जिससे यह सिद्ध होता है कि नेपाली का हिन्दी से वही सम्बन्ध है जो बिहारी और राजस्थानी का क्योंकि इन बोलियों के काव्यों में भी वर्तमान हिन्दी का प्रयोग कवि और लेखक प्रसंगवशात् करते रहे हैं। इससे नेपाली और हिन्दी भाषियों की एकता पर भी प्रकाश पड़ता है।

श्री कृष्णप्रसाद घिमिरे के 'रुक्मिणी विवाह' में—उनके कथनानुसार—प्राचीन नारी की महत्ता विद्यमान है। उसी महत्ता को प्रकट करने के उद्देश्य से कवि ने रचना प्रारम्भ की है।[2] तथापि कवि इसमें रसिक दिखाई देता है। यह प्रसंग हिन्दी साहित्य में शृंगारमय है राजा प्रिथीराज के 'क्रिसन रुक्मिणी री वेलि' और नन्ददास के 'रुक्मिणी मंगल' में तो—जिनमें श्रीकृष्ण और रुक्मिणी को विवाह रूप में सांसारिक ऐश्वर्य प्रकट किया गया है और अलौकिक क्रियाओं का समावेश है—शृंगारिकता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। श्री घिमिरेजी अन्य नेपाली कवियों के विपरीत इस प्रसंग में हिन्दी भक्त कवियों का ही नहीं, रीतिकाल के रसिकों का अनुकरण करते दिखाई देते हैं[3]। घिमिरे कृत नख-शिख वर्णन चमत्कारपूर्ण है

> गाह्रु तानो कटि भिटि मिग्गो भरिदा पेट को त्यो।
> शोभा भर्थ्यो अति झिरझिरी रेखुमो धाग्ना को।

---

१ नमामि भक्त वत्सलं कृपालु शील कोमलम्।
भजामि ते पदाम्बुजं अकामिनां स्वधामदम्। इत्यादि
—रा० च० मा०, पृ० ५१८-१९।

२ नारी का था मन वचन से कर से रूप पवित्र।
सम्झा दियो प्रकृति र गयो रुक्मिणी को चरित्र।
सब्द इच्छा मन भर हुँदा काव्य का प्रेम गाथ।
कोर्दै लाग्यो कलम घिमिरे चित्र कृष्ण प्रसाद॥
—रुक्मिणी विवाह पृ० २।

देखा पर्य्यो रचित त्यसमा पोखरीमा सिवाली।
उम्रे जस्तो भइ वरिपरी नाभिमा रोमराजि॥[1]

रुक्मिणी की नाभिजान रोमावली को घिमिरेजी पोखरी की सिवाली (सेवार) का रूप देते हैं और उसके उन्नत उरोजों को पशु के तीखे सींग मानते हैं।[2] इन उक्तियों में स्वरूप-साम्य होते हुए भी प्रभाव चारुता का अभाव है। सेंवाल को कवियों ने सौन्दर्य-साधक नहीं, सौन्दर्य विघातक माना है। कवि कालिदास शकुन्तला के वर्णन करते समय इसे प्रयुक्त करता है। वह वल्कलवस्त्र पहिने हुई है, जिनसे सौन्दर्य का ह्रास होता है तथापि स्वयं अत्यधिक सुषमावती होने के कारण वह अच्छी ही लगती है उसी तरह जैसे सेवाल विद्ध होने पर भी कमलिनी मनोहर लगती है।[3] श्री घिमिरे सेवाल युक्त होने के कारण ही पोखरी को सुन्दर मानते हैं। हिन्दी कवि रूपनारायण पाण्डेय अपने कृष्णचरित या रुक्मिणी-मंगल में नाभि से ऊपर उठती रोमावली को यज्ञकुण्ड से ऊपर आती धूम रेखा का रूप देते हैं।[4] रोमावली का नाभि से उत्तरोत्तर हलका पड़ने तथा वायुमण्डल में विलीन होती हुई धुंए की लट में अच्छा साम्य है यज्ञ का नाम लेकर रुक्मिणी के कौमार्य की पवित्रता भी ध्वनित होती है। इसी तरह पाण्डेयजी रुक्मिणी के कुचों को भरी हुई कमलकलियाँ[5] कहकर उनके शालीन एवं संयत सौन्दर्य की रक्षा करते दिखाई देते हैं जबकि नेपाली कवि घिमिरेजी इनके वर्णन में हृदय में चुभन तथा टीस पैदा करने का प्रयास करते हैं। उन्होंने पशु के सींगों की उपमा कुचों को देकर निश्चय ही उनका तीखापन व्यक्त कर दिया है किन्तु जिस समय प्रखर-विषाणपशु का बिम्ब पाठक के हृदय में अंकित होगा उस समय आकर्षण के बदले विकर्षण की ही अधिक सम्भावना है। रुक्मिणी के इन्हीं कुचों का वर्णन प्रिथीराज

---

१ रुक्मिणी विवाह, पृ० ४।

२ कामी यस्ता प्रखर पशु का सीङ जस्ता तिखार॥ रु० वि० पृ० ४।

३ सरसिजमनुविद्धं शवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्॥
—शाकुन्तलम्, प्र० अ० १७वां श्लोक।

४ हो चली नाभि भी अब गहरी रोमावलि ऊपर राज रही।
ज्यों यज्ञकुण्ड से उठी धुम्रा रेखा उसकी छवि छाज रही॥
—श्रीकृष्ण चरित्र या रुक्मिणी मंगल रूपनारायण पाण्डेय, पृ० १६।

५ कुच उभर रहे भर रहे मनों कमलों की कोमल हैं कलियाँ॥
वही पृ० १८।

ने कितनी सावधानी और स्वाभाविकता से किया है। वह रुक्मिणी के शरीर को मलयगिरि, कुचो को उसमे अकुरित कामकलियाँ और उसके उच्छवासो को त्रिविध समीर के रूप म दिखाता है

मलयाचल सुतनु भल मन सौरे,
कली कि काम अकुर कूच।
तणो दलिसा दिसि दलिण त्रिगुण म,
ऊरध सास समीर ऊच।[1]

यहाँ प्रश्न उठता है कि शृगारातिशयता के रहते हुए भी घिमिरेजी के रुक्मिणी विवाह को भक्ति साहित्य के अन्दर रखना कहाँ तक उचित है। इसके उत्तर मे कृष्णभक्ति साहित्य की विशेषताओ पर ध्यान देना आवश्यक है। हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य म प्रवेश करें तो वहाँ शृगार का समृद्ध कोष मिलेगा। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ कृष्णभक्ति-काव्य म अकुरित होती रही। भक्तिकाव्य के बाद रीतिकाल हिन्दी साहित्य का क्रमिक विकास है, आकस्मिक एव अस्वाभाविक नही। श्री घिमिरेजी प्रथम नेपाली कृष्णभक्ति शाखा के कवि हैं जिनका 'रुक्मिणी विवाह प्रवृत्ति की दृष्टि से हिन्दी साहित्य से सवथा साम्य रखता है अन्य नेपाली कृष्णभक्ति शाखा के कवि—जैसा कि पहले कहा जा चुका है—विशुद्ध भक्ति पूर्ण काव्यो के प्रणेता हैं। उस भक्ति के पूर्व प्रेमानुगा विशेषण जोडने मे झिझक होती है। घिमिरेजी के रुक्मिणी विवाह म प्रेम ही नही भक्ति भी है इसलिए उसे कृष्णभक्ति काव्य मानना युक्तियुक्त है। श्री घिमिरे ने कृष्ण को साक्षात ईश्वर माना है

प्राणीलाई जगत जुनिमा जो छ चौरासी लक्ष्य,
घुम्दा घुम्दा सफल न भये भेटन मा आफ्नु लक्ष्य।
बूढा पाका बुधजन यता भन्द छन आज सम्म
धोकी भेटने दिइ सफलता कृष्ण छन रे अचम्भ।[2]

रुक्मिणी रुक्मवधोद्यत कृष्ण की नानो योगीहरू र अरुका शक्ति हो ध्यानगम्य'[3] इन शब्दो म स्तुति कर उनका ब्रह्मत्व स्वीकार करती है। कवि स्वय अन्त म काव्य रचना का फल प्रभु प्रसाद चाहता है

मार्गौं हामीहरू अब विदा लेखनी यो पनीता
याक जस्त भइ पनि सकी यो गरी यत्ति सेवा।

---

१ वेलि क्रिसन रुक्मिणी री—ऐकडेमी, पृ० १४२।
२ रुक्मिणी विवाह पृ० ३०।
३ वही पृ० ८१।

होऊन यस्ले हरि खुश तथा काव्य प्रेमी समाज,
भोगून यस्को सुफल छ भने प्रार्थना भछ आज ।[1]

उक्त तथ्यो के आधार पर 'रुक्मिणी विवाह' का साध्यभक्ति को मानना ही सगत है। इस काल की कृति होने हुए आधुनिकता का अभाव भी इसे भक्ति-ग्रन्थ बनाने म सहायक है। इसम युगीन भावना नही है। पात्रो का चरित्र चित्रण भी प्राचीनता को लिए हुए हैं।

हिन्दी साहित्य म रुक्मिणी विवाह दाम्पत्य प्रेम पूर्ण भक्ति का एक उदाहरण है। इस प्रसग म जहाँ एक ओर उत्कृष्ट प्रेम और श्रृंगार को दिखाया गया वहा दूसरी ओर उत्कट भक्ति का। डा० सियाराम तिवारी के शब्दों म पूर्व-मध्यकाल के प्रेमाख्यानक का या और उत्तर मध्यकाल के रीति काव्यो की सम्मिलित आत्मा की झलक भी इस आख्यान मे मिल जाती है।[2] यह ठीक ही है। किसी के गुण श्रवणादि से ही अपने को उसे समर्पित कर देना यह प्रेमाख्यानक नायिकाओं की प्रमुख विशेषता है। हिन्दी साहित्य की रुक्मिणी वैसा ही करती है। राम लला और विष्णुदास के 'रुक्मिणी मगल' की रुक्मिणी नारद के हाथ देखकर यह बताते ही कि उसका विवाह श्रीकृष्ण के साथ होगा, अपना हृदय कृष्ण को सौंप देती है। नरहरि की रुक्मिणी जो प्रेम पत्र भेजती है उसम प्रेमाख्यानक की पद्धति अपनाई गई है। नन्ददास, मेहरचन्द, हीरामणि आदि कवियो की रुक्मिणी भी कृष्ण प्रेमाकांक्षिणी है। अवश्य ही राधा और कृष्ण के मिलन म हिन्दी के कवि जितना अधिक रमे उतना रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह मे नही और न उतनी उच्छृंखलता ही यहा पाई जाती है। डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों म 'रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह का चित्रण उनके पद और महत्ता के अनुरूप है जिनम राधाकृष्ण के ग्रामीण सम्बन्धो की छाया भी नहीं है।"[3] राधा कृष्ण के ईश्वरत्व को नही भाकती है किन्तु रुक्मिणी कृष्ण को ईश्वर मानकर भजती है। वह कृष्ण के पास भक्तिभाव पूर्ण सन्देश भेजती है जिसम स्नेहाकांक्षा कम कृपा याचना अधिक है। रुक्मिणी की भावना का इस वृत्तान्त स अच्छा परिचय मिल जाता है। एक दिन परीक्षा लेने के लिए कृष्ण रुक्मिणी से कहते हैं कि शिशुपाल को छोडकर तुमने मुझे क्यो चाहा। कहा वह और कहा जाति गुणहीन मैं। इस पर रुक्मिणी अत्यधिक खिन्न होकर जो कुछ कहती है उसमे उसकी कृष्णविषयक भगवदन्वय की भावना का स्पष्ट चित्र अंकित हो उठता है।[4] नेपाली कवि

१ रुक्मिणी विवाह पृ० ६३।
२ मध्यकाल के खण्डकाव्य मूल्यांकन, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली ६, पृ० २८९।
३ सूरदास डा० ब्रजेश्वर वर्मा पृ० ७६
४ सू० सा० १० ४८१३, ना० प्र० स०।

सम्भुप्रसाद ढुंगेल के 'कृष्ण चरित' की रुक्मिणी तो मूर्च्छित हो जाती है और पीछे कृष्ण अपने कथन को 'ठट्ठा' कहकर उसे प्रसन्न करते हैं। राधा की भक्ति सख्यभाव की है तो रुक्मिणी की दास्यभाव की। वह सौन्दर्य युक्त गुणी ही नहीं ज्ञानवती भक्त भी है। यथार्थतः रुक्मिणी के चित्रण में हिन्दी कवि भी नेपाली कवियों की तरह भागवत से पूर्णतः प्रभावित हैं। दोनों कहीं है मोग भग्ने में मौलिकता दिखाई है। अधिकांश नेपाली कृष्णभक्त कवियों का ध्यान रुक्मिणी तक सीमित है राधा द्वारा अधीकृत अनुरक्ति रहा। यह बात नहीं है कि हिन्दी कवियों ने राधा की तरह रुक्मिणी के सौन्दर्य द्वारा विलास को बिल्कुल न दिखाया हो। सूरदास से भी ८० ९० साल पहले के कवि विष्णुदास के रुक्मिणी मंगल में जिसमें भक्ति और मुक्ति का अनोखा समन्वय हुआ है कृष्ण और रुक्मिणी के विलास का इस तरह चित्रण हुआ है।[1]

> मोहन महलन करत विलास।
> कनक मन्दिर में केलि करत हैं और कोउ नहिं पास।
> रुक्मिणी चरन सिराय पी के पूजी मन की आस।
> जो चाहो सो भये पायों हरि पति देवकि सास।
> तुम बिन और न कोऊ मेरो धरणि पाताल अकास।
> निसदिन सुमिरन करत तिहारो साय पूरन परकास॥

प्रिथीराज सयोग का वर्णन बडे कौशल से करता है

> एकत उचित क्रीडा को आरंभ
> दीठी सुन किहि देव दुजि।
> अदिठ श्रुत किमि कहणौ आव
> सुख ते जाणणहार सुजि।[2]

आधुनिक हिन्दी साहित्य के कवि द्वारकाप्रसाद मिश्र ने रुक्मिणी की रूपराशि का भव्य चित्रण किया है। सखियो के साथ जब वह बाहर निकलती है तो वह चाँदनी की तरह सवत्र छा जाती है मानो अपनी तारिकाओ के साथ पूर्णेन्दु ही उदित हो। उनके श्रीकृष्ण उसी तरह सवसमय लीलावतार पुरुषोत्तम हैं जिस तरह वे नेपाली कृष्णभक्ति साहित्य के कवियो की कृतिया में हैं। रुक्मिणी हरण के ही वत्तान्त को लें। जिस ब्राह्मण के हाथ रुक्मिणी अपना स्नेह-सन्देश भेजती है वह जब श्रीकृष्ण से निवेदन करता है कि रुक्मी की इच्छा के विपरीत रुक्मिणी आपका वरण करना चाहती है वह शिशुपाल को नही चाहती। इस पर कृष्ण रुक्मिणी की अज्ञानता को दिखाते हुए मगधाधिपति शिशुपाल के योग्यवरत्व

१ खोज रिपोट १९२६ २८ नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
२ वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, पृ० १४१।

तथा अपनी हीनता की बात करते हैं। तब ब्राह्मण उस कथन का खण्डन करता हुआ जो कुछ कहता है उसमें उनके अवतार होने की बात स्पष्ट हो जाती है।[1] पीछे रुक्मी को मारने को उद्यत श्रीकृष्ण से स्तुति करती हुई रुक्मिणी के शब्दों में भी श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व सिद्ध हो जाता है।

देव देव तुम, यह अज्ञानी। विभु सामर्थ्य सकेउ नहिं जानी।
मागहुँ अग्रज प्राणन दाना। भुवन शरण्य क्षमहुँ भगवाना॥[2]

इस तरह श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र भी कृष्ण को साक्षात् ईश्वर का अवतार मानते हैं किन्तु उन्हें युग का बड़ा ध्यान है। नेपाली कवि घिमिरेजी की तरह उन्होंने समाज निरपेक्ष होकर काव्य प्रणयन नहीं किया। श्री रामस्वरूप मिश्र विशारद का लिखा कृष्णायन अवश्य ही भक्तिमान का काव्य है। घिमिरेजी और विशारदजी का उद्देश्य एक जैसा है किन्तु मिश्रजी के 'कृष्णायन' में राजनीति और सामयिक विचारधारा की प्रेरणा विद्यमान है। वह एक विशाल महाकाव्य है। उसमें कवि को पर्याप्त अवसर मिल जाता है कि वह भक्ति—जिसका प्रधान लक्षण अनन्य भाव से प्रभु भजन है और भुक्ति दोनों को यथा स्थान दिखा दे। यही कारण है कि श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र के कृष्ण का ईश्वरत्व कृष्णायन के अन्य रसों के आस्वादन में विशेष बाधक नहीं हुआ है क्योंकि जब जहाँ कवि कृष्ण को ईश्वर दिखाता है उस समय और स्थान को भूलने अथवा अपने अवधान को हटाने के पश्चात् चरित्रात्मक स्थलों में रमने का पाठक को पर्याप्त मध्यान्तर मिल जाता है। श्री रामस्वरूप मिश्र का ध्येय ही समाज निरपेक्ष भक्ति है। नेपाली कवि श्री घिमिरेजी चाहते तो वे अपने सीमित क्षेत्र में अधिक नहीं तो कम से कम युगीन चेतना की ओर संकेत तो कर सकते थे मिश्रजी ने इसी सीमित प्रकरण में अपने श्री कृष्ण के मुँह से उसके विषय में कुछ कहला ही दिया। रुक्मिणी हरण के औचित्य को सिद्ध करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि रुक्मिणी मुझे चाहती है। उसका दुष्ट भाई बहिन के मनोभावों की चिन्ता न करता हुआ उसे बलिपशुवत् नीच शिशुपाल को देना चाहता है। यह अनीति है। लोकधर्मानुसार इस अनय का विरोध करना उनका धर्म है

विदलित भगिनिमनोरथ पदतल, व्याहत चर्हाहे ताहि रुक्मि खल।
ताते लोक-नीति अनुसारा हरण रुक्मिणी धर्म हमारा॥[3]

श्रीकृष्ण का यह धर्म आधुनिक युगानुमोदित है। उस मध्य-युग तक का यह धर्म नहीं हो सकता है जब नारी को 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' के नियम से नियन्त्रित किया जाता रहा। नेपाली जन जीवन पर विचार कर इस तरह की कोई

१ कृष्णायन श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र पृ० २३८-३९।
२ वही, पृ० २४९।
३ कृष्णायन द्वा० प्र० मिश्र, पृ० २४१।

था। नेपाली कृष्ण भक्ति साहित्य के कवि कर सकते थे किन्तु उन्होंने इधर प्रयास ही नहीं किया। कृष्णायन में गीता और भागवत के गूढ़ सामयिक शब्दों से भरे पड़े हैं।

रुक्मिणी विवाह-दृष्टि शिल्प की तुलना

बद्रीदासजी के रुक्मिणी हरण लीला छन्द की धारा उसी तरह दर्शनीय है जैसे हिन्दी के अधिकांश रुक्मिणी हरण काव्यों की। अमुक मनुष्य अमुक देश और अमुक कुल में पैदा हुआ—इस तरह प्राचीन कथात्मक कथा ही इस रचना में मिलता है

रुक्म नाम हुया ति भिस्मकजिको छोरा रिसाई धनी[1]

राजा छन सिशुपाल सब पथिविमा प्रख्यात भया को धनी।[2]

बद्रीदासजी की भाषा सामान्य नेपाली है। जिसमें ठेठ नेपाली शब्दों के साथ-साथ यथावसर संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनके पद्य में स्त्रि रीय तुक है जैसा कि अधिकांश हिन्दी भक्त कवियों की रचनाओं में भी देखा जाता है किन्तु इन्होंने छन्द हिन्दी के न अपनाकर संस्कृत से ग्रहण किए। रुक्मिणी हरण कथा के कवि नेपाल लिखने वाले हिन्दी भक्त कवियों में इन्होंने न तो नन्ददास[3] और पृथ्वीराज[4] की तरह आद्यन्त एक ही छन्द अपनाया और न रघुराजसिंह[5] और हीरामणि[6] की तरह विविध छन्दों की कलाबाजी ही दिखाई। यथावसर छन्द परिवर्तन करने में ये नहीं चूके।

इनकी रचना में अलंकारों की विशिष्ट योजना नहीं देखी जाती है। अवश्य ही उनका सर्वथा अभाव नहीं देखा जाता। बलराम शत्रुओं की सेना को उसी तरह काट देते हैं जैसे किसान खेती को। यह 'उदाहरण' का उदाहरण है।

बलराम ले सब फौज दुष्टहरूको मारी दिया क्षण महा।

खेती मान किसान ले तज सरी काटछन स्वहीं रित यहा॥[7]

अर्थान्तरन्यास का प्रयोग निम्नलिखित पद में मिलता है

---

१ रु० ह० ली० छ० बद्रीदास, पृ० ३।
२ वही, पृ० ३।
३ रुक्मिणी मंगल में।
४ वेलि कृष्ण रुक्मिणी री में।
५ रुक्मिणी परिणय में।
६ रुक्मिणी मंगल में।
७ रु० ह० ली० छ० बद्रीदास पृ० १५।

राजा छन् शिशुपाल सब पृथिविमा प्रख्यात भया जो पनी
जोहामा र लडाइमा त गरनु सब ल बराबर बनी।
स्व कारण शिशुपाललाइ बहिनी दिउला प्रवस्यै मनो ॥[1]

श्री कृष्णप्रसाद घिमिरे के सं० २०१६ म प्रकाशित रुक्मिणी विवाह का कलापक्ष बहुत कुछ आधुनिक कवि श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र और थोडा बेलि कृष्ण रुक्मिणी री का सा है। घिमिरेजी की रुक्मिणी की क्षीण कटि है जिसमे कूट-कूट कर सौन्दर्य भरा है और रोमराजि-वलित नाभि अत्यधिक शोभामयी है।[2] उसका नख शिख वर्णन घिमिरेजी सचेष्ट होकर करते हैं। उनके आलम्बन चित्रण म हिन्दी क रीतिकालीन कवियो की-सी मासलता पाई जाती है यह तथ्य निम्न-लिखित उदाहरण म पुष्ट हो जाता है

अलसा तीखा कुच युग गई बक्रिदा नेत्र साथ
यसका मायमाँ हृदय-गरिमा रोवत ये राखि हाथ
साह सानो रुचिर कटिमा रत्नमाला भुलेर
हा! हा!! पापूर्या युवक मन मा बसनये हो लिएर ॥[3]

कवि सचित और श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने अपने अपने कृष्णायन म आल म्बन क बाह्य चित्रण म कोई कसर नहीं छोडी है किन्तु घिमिरेजी की तरह खुले नहीं हैं। सयम को छोडना उन्हे अच्छा नहीं लगा है। रुक्मिणी के कुचो को 'पशु विषाण' बनाकर अपने पाठक के हृदय म जो मधुमय आघात घिमिरेजी करते हैं वह मिश्रजी के रुक्मिणी चित्रण म नहीं होता है। उनकी रुक्मिणी साक्षात कामकला के समान दर्शको के सम्मुख आती है उसका समीर विलुलित अचल ही कामदेव का चचल केतन था

मद समीरण विलुलित अचल
मनहु मनोभव-केतन चचल।[4]

सखियो क साथ जब रुक्मिणी बाहर निकलती है तो चादनी की तरह सवत्र छा जाती है मानो तारिकाओ के साथ साक्षात पूनम ही चली आयी हो।[5] उपमान मिश्रजी के भी वे ही हैं जो प्राचीन हिन्दी सस्कृत साहित्य विशेषत 'मानस' म प्रयुक्त हुए हैं। उनम वे सभी गुण-दोष पाए जाते हैं जो प्राचीन काव्यागत उपमानो म मिलते हैं। जहाँ रुक्मिणी की रसना म हसस्वर कंगा म

---

१ रु० ह०लो० छ० पृ० ३।
२ रुक्मिणी विवाह श्री कृष्णप्रसाद घिमिरे, पृ० ४।
३ वही, पृ० ४।
४ कृष्णायन द्वारकाप्रसाद मिश्र, पृ० २४५।
५ सखिन सहित करि कुल आचारा। मन्दिर-द्वार कुँवरि पगु धारा॥
कौमुदि जनु नभ महि छिटकायो। तारक युक्त पूर्णिमा आई॥ वही पृ० २४५

भ्रमर पंक्ति और मृदु मजीर तथा वीक्षण म तीव्र मनोजन्मर आदि काव्य शोभाकर उपमान विद्यमान है वहाँ उसकी कटि म मगेन्ता का भी अस्तित्व है। एक ओर वह मरालगतिका है तो दूसरी ओर गजगामिनी।[1]

घिमिरेजी की रुक्मिणी को जब कृष्ण हर ल जाते हैं तो वे इस कृत्य को रुक्मी के श दो म काक द्वारा बलि अपहरण मानते है।[2] चूकि वक्ता रुक्मी है अतएव इस अप्रस्तुत विधान से जो घृणा टपकती है वह काव्य की शोभा का ह्रास नही करती है। घिमिरेजी ने अपनी ओर से इस कृत्य की जाँच नही की। हिन्दी कवि न ददास के कथन मे अपहरण कृत्य का समथन व्यजित होता है

ले चले नागर नगधर नवल तिया को ऐसे।
माखिन आखिन धूरि पूरि मधुहा मधु जसे।[3]

शाब्दिक चमत्कार तो इस पद का दर्शनीय है ही अथ की रमणीयता भी निनरा हृदय हारिणी है। मक्खियों की आखो म धूल देकर मधुहा मधु ल चला। रुक्मी आदि परिवार क सदस्य देखते रह गय शिशुपालादि नृप अकमण्य सिद्ध हुए और श्रीकृष्ण उन सबको मक्खी की तरह नगण्य बनाते हुए रुक्मिणी को ले चले, क्योकि व नागर और नगधर जो ठहरे। इन दो शब्दो स श्रीकृष्ण के चातुय और शक्तिमत्ता गुण ध्वनित होते है। पहाड धारण कर गोपियो की रक्षा की अतएव श्रीकृष्ण की शरणागत वत्सलता भी अभिव्यजित होती है। परिकर परिकराकुर और उदाहरण अथालकारो की सुन्दर ससष्टि इस पद म विद्यमान है। श्रुतिमधुर अनुप्रास का भी यह एक आदश नमूना है। इस अप्रस्तुत विद्यमान को पीछे ब्रज वासीदास ने अपने ब्रजविलास म स्थान दिया। अक्रूर के श्रीकृष्ण को ले जाने पर गोपियाँ ममाखियो की तरह तब तक देखती रह गइ जब तक उनकी दृष्टि म धूल नही पडी।[4] यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत का अदभुत मेल है। प्रस्तुत म गोपियाँ कृष्ण के रथ को तब तक देखती रहती हैं जब तक रथोद्धत धूलि उनकी दृष्टि म नहा समा जाती। अप्रस्तुत अथ मे कृष्ण के अन्दय होते-होते ही गोपियो को वह धोखा समझ म आता है जो उन्ह अक्रूर देकर चला जाता है।

१ (क) कलित बसन भूषण गज गामिनि।
(ख) कुडमल कुन्द राग द्युति दशना मध्य मगेन्द्र हस स्वर रसना।
अलक अवलि अलि श्याम सोहायी छहरि ललाट अर्धविधु छायी।
गति मानस वन कमल विहारी मजुल मन्द मराल अनुहारी।
मृदु मजीर निनद श्रुति उत्सव, वीक्षण जनु शरतीक्ष्ण मनोभव॥
—कृष्णायन, पृ० २४४ ४५।

२ रु० वि० पृ० ८० ८१।
३ नन्ददास ग्रन्थावली स० ब्रजरत्नदास (रुक्मिणी मगल) पृ० १८४।
४ ब्रजविलास पृ० ४४०।

ले गये मधु अक्रूर निकारी। माखी ज्यों सब दीन बिडारी।
देखत रहीं थकी टक लाई। जब लगि धूरि दृष्टि मे आई।[1]

नन्ददास ने परिकर और उपमा का प्रयोग कराते हुए रुक्मिणी के मुह से श्रीकृष्णको जो सदेश भिजवाया है।[2] उसमे भी ध्वनि चमत्कार की उत्तमयोजना हुई है। नरहरि मेहरचन्द आदि हिन्दी कवियो ने भी उत्प्रेक्षा अर्थान्तरन्यास, रूपक उदाहरण आदि अलकारो का सफल प्रयोग किया है।

नेपाली और हिन्दी के सुदामा-चरित्र

नेपाली कवि कृष्णनाथ सिग्देल का 'सुदामा चरित्र' श्रीकृष्ण की आदर्श मैत्री तथा उनके परमश्वर्य को प्रकट करता है। सुदामा परम दीन है। उसकी पत्नी चर्खा स सूत कातकर अपना काय चलाती रही।[3] पौराणिक सुदामा पत्नी कुछ भी अध्यवसाय नही करती है और न हलधर नरोत्तमदास आलम बीरबल, वीर वाजपयी आदि हिन्दी कवियो ने ही उससे चर्खा कतवाया है, किन्तु गाधीयुग म रचित श्री सिग्देल के 'सुदामा चरित्र' म उससे सूत कतवाने का उपक्रम युगानुरूप है। इस काल के हिन्दी काव्य कामायनी की श्रद्धा ऊन और साकेत की सीता सूत कातने की बात करती है। श्री सिग्देलजी के काव्य म राणा शासन के स्वरूप की व्यजना दिखाई पडती है। उस शासन म जन-साधारण की जो दुर्गति उन्होन नेपाल म देखी उसी का चित्र वे सुदामा के शब्दो म उतारते हैं। श्रीकृष्ण के महल के चौकीदारो से सुदामा इसलिए डरता है कि वे उसे महल म आया देखकर निष्ठुर हृदय होने के कारण पीट डालेंगे।[4] हिन्दी कवियो का सुदामा पत्नी क सामन भले ही 'छडिया लागा' का उल्लख करत हैं ताकि पत्नी डर जाय किन्तु स्वय पिट जान का डर उन्ह नही है। अशरण शरण श्रीकृष्ण के द्वारपाल ऐसे क्योकर हो सकते

---

१ ब्रजविलास ब्रजवासीदास, हि० सा० का० उ० और वि०, पृ० ४३ से उदधृत।

२ जो नगधर नन्दलाल मोहि नहि करिहौ दासी।
तो पावक पर जरिहौं बरिहौं तन तिनका सी।
—म० प्र० स० ब्रजरत्नदास, पृ० १८०।

३ पत्नी पुण्यवती रही नियम मा ठानेर चर्खा घन।
कातो सूत दिई छिनेक जनमा अनादि पाई कन।—सुदामाचरित्र, पृ० २।

४ सुदामा जी बोले किन विकल हुछ्यौ विफलमा।
म कर्म को दुखी हरि किन लिने छन शरणमा।
बुझ्यो मलो देखी मकन सब पाले महल का।
लगारी कुट्ने छन अति निठुर हुछन हृदय का॥—कृष्णचरित्र, पृ० ७।

हैं। सचमुच यशमणि और वीर वाजपेयी के द्वारपालों को छोड़कर और किसी के द्वारपालों से सुदामा की कहा-सुनी नहीं होती है वे सब शिष्ट हैं। अवश्य ही वाजपेयी के द्वारपाल सुदामा का उपहास कर उनसे वाद विवाद करते हैं और यशमणि के द्वारपाल उसे चोर डाकू तक कह डालते हैं।

द्वारिका के महलों में पुतलियों द्वारा दीप लेने के प्रसंग से भी[1] श्री सिग्देल की देशकालापेक्षिणी दृष्टि का परिचय मिलता है। काठमाडू स्थित राणा परिवार के महलों में काँच की पुतलियों के हाथ या सिर पर विद्युत् अथवा मोमकी दीपावली को देखकर कवि के हृदय में उक्त चित्र अंकित हुआ होगा। हिन्दी कवियों के सुदामा चरित्रों मे परम्परा वर्णित वैभवों के चित्र हैं।[2]

श्री सिग्देल ने अपने सुदामा चरित्र में प्रकृति का अनुकरणनात्मक शब्दों में चित्र खींचने का प्रयत्न किया है। प्रकृति शोभा सुलभ प्रदेश का प्रभाव उन्हें इस छोटे से काव्य मे भी प्रकृति के विषय में कुछ पंक्तियाँ लिखने को बाध्य कर देता है। वे द्वारिका के उपवन का व्यापार बिम्बात्मक वर्णन करते हैं

तरह तरह का छन फूल का गाछ हेरी
समय समय माहा फुल्दछन काल हेरी
भ्रमर रस विलासी गन्ध सोहाद पाई
भुनुनु भुनुनु गर्दै भुल्द छन नित्य आई।[3]

हिन्दी कवि वीर वाजपेयी तथा हलधर भी प्रकृति का वर्णन करते हैं। वाजपेयी के प्रकृति वर्णन में अलंकारों का बाहुल्य है। वे प्रत्येक पंक्ति में अलंकार का प्रयोग करते देखे गए हैं

लता ललित लपटी तरु कसे पियहिं सकाम कामिनी जसे
कुसुमित सर सोहतीं चमेली, मनो काम की रति की चेली
जाति जाति देलीं वर फूली, मन्मथ ऋद्धि सिद्धि सी तूली
गुंजत भ्रमर मत्त मधुकरगन, मनहु मनोज भूप बंदी जन।[4]

फूलों के खिलने पर भ्रमरावली के सानन्द गुंजार करने की उक्त बात को हलधर भी कहता है

केसरि कुसुम गुलाब केतुकी मालती बेली,
सेवति सुभग नेवार कुंद नागेस चवेली।

---

१ सुदामा चरित्र, पृ० १७ १८।
२ (क) सुदामा चरित्र नरोत्तमदास पृ० ४४।
   (ख) सुदामा चरित्र हलधरदास ६६वां पद।
३ सुदामा चरित्र कृष्णनाथ सिग्देल, पृ० १८।
४ सुदामा चरित्र वीर वाजपेयी, पृ० ८४।

चपा करत बवग बेलि लहरी अपराजित
जूही मधुर सुगध राजमुनि पुष्प सुवासित।
चद्रकला श्रीमल्लिका श्रौ वसत सूरज मुखी,
सब फूल फूले सुभग भ्रमर जूथ होते सुखी।[1]

इस वणन म प्रकृति का परिगणन मात्र दिखाई देता है। इस तरह न तो हलधर और न वीर वाजपेयी के प्रकृति चित्रण म ही वह स्वाभाविकता पाई जाती है जा आधुनिक काल के कवि श्री सिग्देलजी के वणन म मिलती है।

जनता का शोषण कर नेपाल का तत्कालीन शासक वग किस तरह धन का दुरुपयोग करता रहा—यह सिग्देलजी से छिपा न था। फलस्वरूप उन्होने धन की निदा की है जबकि हिन्दी कवि नरोत्तमदास आदि की दृष्टि उधर न होन के कारण इस विषय मे उनके काव्य म कुछ नही सुनाई देता। श्री सिग्देलजी ने दिखाया है कि किस तरह धनी के पास समस्त दुष्प्रवत्तिया अनेक रूप धारण कर आकर उसका सवनाश करती हैं

यो पूरा धनवान छ यो धन लिने बाटो बनाऊँ भनी।
वेस्या चोरहरू प्रयत्न छलका गछन करोडौ पनी॥
जेले सत्पथ बाट यो मन हटी भारी बिलासी हुने
सारा जीवन को छ सार जुन सो बर्बाद पारी दिने।[2]

सुदामा के चलते समय जब श्रीकृष्ण उसे कुछ नही देते है तब हिन्दी-कवि नरोत्तमदास का सुदामा अत्यधिक खिन्न हो उठता है। वह शाप देन तक को उद्यत हो जाता है[3], प्रयाण करने मे कुछ क्षण पूव तथा घर पहुचने पर सम्पत्ति प्राप्त करने के बाद सुदामा की श्रीकृष्ण क प्रति जा भक्ति दिखाई देती है उसम तव अन्तर आ जाता है और वह धन की निरथकता को जिसक विषय म वह अपनी पत्नी स द्वारिका जाने से पहले कहता है और द्वारका मे घर लौटन पर स्वय जिसका अनुभव करता है भुला दता है।

श्रीकृष्णनाथ सिग्देल का सुदामा हिन्दी कवि वीर वाजपेयी के सुदामा

---

१ सुदामा चरित्र हलधरदास, पृ० २१९३।
२ सु० च० कृष्णनाथ सिग्देल, पृ० २३।
३ घर घर कर ओढत फिरे तनक दही के काज।
कहा भयौ जो अब भयो हरिको राज समाज॥६३॥
बालापन के मित्र हैं कहा देउँ मैं शाप।
जसो हरि हमको दियो तसो पहै आप॥६५॥
—सुदामा चरित्र नरो०, पृ० ५१ ५२।

की[1] भांति धन न मिलने पर 'अगूर खट्टे हैं' की उक्ति को चरितार्थ करता हुआ अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है। इन दोनो पर भागवत का[2] प्रभाव है।

बेस भयो धन मिले न यहे न चिन्ता
श्रीकृष्ण को स्मरण गर्छु घनों फिरन्ता।
यने छु सोक परलोक अवश्य मेरो
काटेर जाल भवबन्धन को घनेरो।[3]

वह अब भी धन की अनर्थकता का बखान करने स नही चूकता है

जो बित्त ले प्राप्तहरू टुटाई
बर्बाद गर्द छ सदा झगडा लगाई।
लोकापवाद अति पाद छ सुन्न नित्य
देखिन्न सो स्थिर कनी छ सदा अनित्य॥[4]

हरिहर लामिछाने के सुदामा चरित्र म एक नारी की दीनदशा का करुण चित्र खीचा गया है। हिन्दी सुदामा चरित्रो म सुदामा की ही दयनीय दशा अधिकांशत चित्रित हुई है। सुदाम-पत्नी की दीनता जहाँ वर्णित है वहाँ भी चित्र खीचने का प्रयत्न नहीं दिखाई देता। यह लामिछान का मौलिक प्रयास है कि उन्हान एक दान हीन ब्राह्मणी के स्वरूप का अपने संक्षिप्त सुदामा चरित्र म यथा सम्भव चित्रण किया है जिसम लामिछाने की अपनी स्थानीय अनुभूति काम करती है। ब्राह्मणी के मुह से उसकी अपनी दीनता के विषय म कवि कहलाता है

सदा टुन्दा टुन्दा फतरि भइ सारी त तनकी।
कती टुनू मलें तवल पुगि ग एक मन की।
चोलीया की हालो कति कहनु यो बात सरम की।
बिना खान पीनू सब गरनु यो काम घर की।[5]

सुदामा की पत्नी जहाँ भी सहायतार्थ जाती है वहा उसम याचना की आशका कर लोग तुच्छ दृष्टि से देखते हैं और बचारी उनके भाव समझ कर लज्जा वश कुछ कह भी नही पाती है। इस असमजस को कवि बडी सजीवता स चित्रित करता है।

---

१ ऐसे विविध विचार सौं फिरि वहु आयो ज्ञान।
भली भई जो ना दई दौलत श्री भगवान॥
—सुदामा चरित्र वीर वाजपेयी, पृ० ८२।

२ भागवत, १०।८१।२०।

३ सुदामा चरित्र कृष्णनाथ सिग्देल, पृ० ४३।

४ सुदामा चरित्र कृष्णनाथ सिग्देल, पृ० ४४।

५ सुदामा चरित्र भाषा सप्तरत्न से उद्धृत।

जहां जान्छु ताहा दिदि बहिनिका काम कर ले,
आई मागी भन्या मन गरि त हैछन नयन ले।
नयन भाषा बूझी केहि न भनी फिछ सरमले
कसोरी निर्वाहा गरनु मजिले यो करम ले।[1]

दल बहादुर कार्की का 'सुदामा को भाषा श्लोक' अत्यन्त सक्षिप्त ढग से वर्णित सुदामा का चरित्र है जिसका काव्यात्मक मूल्य नही के बराबर है। सुदामा की पत्नी पाव पकडकर सुदामा से निवेदन करती है कि वह अपने मित्र लोकपाल कृष्ण के पास जावें ताकि दु ख निवारण हो। यह सब नीचे लिखे चार चरणो मे कह दिया गया है।

विन्ती लाहि गरिन उसे बखलमा पाऊ कमल मा परी।
हे लोकपाल प्रमुले बुझी बक्सनुहोस हा नाथ दयानाथ सरी॥
मीत हुन ती अधिका त जाइ भेट पनि होस कृष्ण चन्द्र जहा।
उत्तम ज्ञान मिलोस प्रस्थाल हजुरको दुख निभारण यहा॥[2]

कार्कीजी ने श्रीकृष्ण का साक्षात विष्णु रूप मे देखा है। उनके द्वारपाल जयविजय हैं और उनके चार हाथो मे शख चक्र गदा हैं। सुदामा को ईश्वर सखा कहा गया है।

हिन्दी मे सुदामाविषयक आख्यानो की कमी नही है। उनमे नरोत्तमदास हलधर वीर वाजपेयी गोपाल बदमणि के 'सुदामा चरित्र' विशेष प्रसिद्ध हैं और सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त काव्य नरोत्तमदास का सुदामा चरित्र है। इसका रचना काल भी सबसे प्राचीन प्रतीत होता है। डा० सियाराम तिवारी ने हलधर के सुदामा चरित्र' के रचनाकाल को नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र' के रचना समय से प्राचीनतर माना है।[3] उनकी इस मान्यता का मूल आधार ग्रियर्सन का इतिहास है जिसके अनुसार नरोत्तम का जन्मकाल सन १५५३ ई० है।[4] इससे १५२५ ई० सु० च० का रचनाकाल मानने वाले मिश्र बन्धुओ और १५४५ ई० मानने वाले शिवसिंह सेंगर[5] रामचन्द्र शुक्ल[6] तथा डा० रामकुमार वर्मा[7] का मत परास्त हो

१ सुदामा चरित्र हरिहर सामिछाने भाषा सप्तरत्न से उद्धृत।
२ सुदामा को भाषा श्लोक दलबहादुर कार्की, बुइगल पृ० १३३ से उद्धृत।
३ हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य डा० सियाराम तिवारी पृ० १६१, (हिन्दी साहित्य ससार दिल्ली पटना)।
४ हि० सा० का प्र० इ०, पृ० ३३ मू० ले० ग्रियर्सन। अनु० किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
५ शिवसिह सरोज पृ० ४०३।
६ हि० सा० का० इतिहास, पृ० २००।
७ हि० सा० का आ० इ०, पृ० ८४३।

जाता है। डा० तिवारी हलधर के 'सुदामा चरित्र का रचनाकाल १५६५ और नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र का रचनाकाल सन् १५७३ के बाद मानते हैं। ग्रियसन के मत का जब तक सम्यक परीक्षण न हो तब तक अन्य विद्वानों के मतों को अमान्य ठहराना सगत नही है। अथ च तेवाडीजी के ही कथनानुसार हलधर सब सुदामा चरित्र लेखकों म समय एव स्वाभाविक रचनाकार हैं। नरोत्तमदास की रचना की बहुत सी कमियाँ उनके काव्य म नही देखी जाती।[1] क्या इसस यह सम्भावना पुष्ट नही हो उठती है कि हलधर ने नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र को सुनने के बाद अपना सशोधित खण्ड काव्य रचा?

जो भी हो हम तो इस तथ्य से काम है कि नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र ने सुदामाविषयक काव्यो म इस समय सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त की और हलधर आधुनिक काल म सवथा विस्मृत हो गया। इसे डा० तिवारी भी स्वीकार करते हैं।[2] किसी काल के काव्यो को उस समय ख्यातिप्राप्त कृति ही प्रभावित करेगी न कि विस्मृत चाहे वह उत्कृष्टतर ही क्यो न हो। कृष्णनाथ सिग्देल की कृति सुदामा चरित्र पर इसीलिए नरोत्तमदास के सुदामा चरित का अक्षुण्ण प्रभाव देखा जाता है। श्री कृष्णनाथ सिग्देल बहुत दिनो तक काशी रहे जहाँ उन्होने हिन्दी के अन्यान्य काव्यो के साथ नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र को भी पढा होगा। उसी के परिणामस्वरूप वस्तु और शिल्प दोनो दृष्टियो स श्री सिग्देल का सुदामा चरित्र' नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र का अनुसरण करता है। अवश्य ही पूर्वोक्त कतिपय बातो म उनकी मौलिकता असदिग्ध है।

नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र की प्रमुख विशेषता है सवादो द्वारा पात्रो का मनोवैज्ञानिक चरित्र विकास। सुदामा की स्थिति के परिवारो म—जहाँ विद्या तो हो किन्तु धन नही हो, जहा एक ओर कुछ कार्यों को निलज्ज होकर किया जा रहा हो किन्तु कुछ उनसे प्रशस्ततर होते हुए भी नही किए जा रहे हो क्योकि उनके आचरण से झूठे अभिमान को जो ठेस लगती है—किस तरह उनके सदस्य व्यवहार करते हैं इसका साक्षात चित्र नरोत्तमदास की लेखनी से सुदामा चरित्र' मे चित्रित हुआ है। सुदामा की पत्नी उसे द्वारकाधीश के पास दारिद्रय नाशार्थ भेजना चाहती है। इस काम को वह नही करना चाहता है, भले ही इसस भी बुरा काम (भक्ष्यवृत्ति) करते हुए उसे कोई झिझक नही होती। पत्नी उसे भेजने का उपक्रम करती हुई कहती है

---

१ हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड काव्य डा० सियाराम तिवारी पृ० ३२५।
२ वही, पृ० १५१।
३ सुदामा चरित्र नरोत्तमदास पृ० १८, स० बद्रीदास सारस्वत, साहित्य रत्न भण्डार आगरा।

महादानि जिनके हितू जदुकुल करवचन्द
ते दारिदसताप तें रहे न किमि निरद्वन्द्व ।

इस बात को सुदामा यह कहकर टाल देता है

कह्यौ सुदामा बाम ! सुनु वृथा और सब भोग ।
सत्य भजन भगवान को धर्म सहित जप-जोग ॥[1]

जब पत्नी भाँप जाती है कि उसका पति आलस्य या कुछ न मिलन की आशका से जाना नहीं चाहता है इसीलिए ऊपरी सतोष दिखा रहा है[2] तो वह विश्वास दिलाती है कि द्वारका के नाथ जो अनाथा के नाथ हैं, उसकी दरिद्रता को अवश्य दूर करेंगे क्योंकि वे उसके सहपाठी जो हैं।[3] यहा 'द्वारका के नाथ' आदि शब्द साभिप्राय हैं, दरिद्र मित्र सहायता करना भी चाहे तो क्या कर पायगा।

इस पर सुदामा अपने महत्तरमानी पुरुष-स्वभाव का बडा अच्छा परिचय देता है। उसके कथन म खीझ है और उसमे प्रकट कर स्वय कुछ न होना हुआ भी वह एक अबला पर अपना प्रभाव जमाना चाहता है। उसे इस बात का आभास मिल जाता है कि उसकी पत्नी दरिद्रता से सतप्त उसके हृदय-दौर्बल्य का पता पा चुकी है अतएव अपना रौब फिर से जमाने के लिए वह निम्नलिखित शब्दो म प्रयत्न करता है—

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय !
ताको कहा अब देति है सिच्छा !
जो तपके परलोक सुधारत
सपनि की तिनके नहिं इच्छा।
मेरे हिये हरिके पद पकज
बार हजार ल देखु परिच्छा
औरनि को धन चाहिए बावरि
ब्राह्मण को धन केवल भिक्षा।[4]

ब्राह्मणी के हाथ बात आ जाती है वह झट सुदामा से कहती है—

'दीन दयाल के द्वार न जात सो और के द्वार प दीन ह्वै बोलै।[5]

इस तरह सुदामा की बात का प्रतिवाद कर वह फिर निवदन करती है

---

१ सुदामा चरित्र नरोत्तमदास पृ० १८, स० बद्रीदास सारस्वत साहित्य रत्न भण्डार आगरा।
२ वही पृ० १६।
३ सुदामा च० पृ० १६।
४ सुदामा च० पृ० २०।
५ वही पृ० २०।

कि वह बडे लोभ लालच के कारण द्वारका जाने को नही कहती। वह तो इतना भर चाहती है

'कोदौं सवाँ जुरतो भरि पेट ।'[1]

सुदामा को जब पता चलता है कि पत्नी के ऊपर उसकी पूर्वोक्त बातो का कोई प्रभाव नही पडा प्रत्युत वही निरुत्तर हुआ जा रहा है तो द्वारका जाने पर भी वहाँ कुछ नही मिलेगा—इसे बताने के लिए भाग्यवाद का सहारा लेता है

छाँडि सबै जक तोहि लगी बक आठहु जाम यहै हठ ठानी।
जातहि दैहै लदाय लदा भरि लहौं लदाय यहै जिय जानी।
पैहै कहा ते अटारी अटा जिनके विधि दीन्हीं है टूटी-सी छानी।
जो प दरिद्र लिख्यो है ललाट तो काहू प मेटि न जात अजानी।[2]

इस पर भी वह मात खाता है। पत्नी उत्तर देती है

ऐसे दरिद्र हजार हरे ये कृपानिधि लोचन कोर के हरे।[3]

सुदामा अब दूसरा दाँव चलाता है। कहता है कि वह चला भी जाय तो उसे दीन समझ कर कोई श्रीकृष्ण के पास तक जाने नही देगा। पत्नी इस बात का भी खण्डन करती हुई कहती है कि श्रीकृष्ण दीनदयाल अन्तर्यामी हैं। वे उसकी सवप्रथम सुनगे। वह श्रीकृष्ण के दीनो की सुधि लेने के गुण का सोत्साहरण बखान करती घर की दीनदशा और श्रीकृष्ण की आदश मत्री का स्मरण कराकर पुन द्वारका जाने का प्रस्ताव करती है और सारी योजना ठीक सिद्ध करती हुई कहती है

एक दीनबन्धु, कृपा सिन्धु फेरि गुरु बन्धु,
तुम सम कौन दीन जाहि जिय जानि है ।
नाम लेत चौगुनी गये ते द्वार सौगुनी सो,
देखत सहस गुनी प्रीति प्रभु मानि है।[4]

अपनी दाल गलती न देखकर सुदामा फिर पैंतरा बदलता है। वहाँ समझाने का प्रयत्न करने वाले के उत्कृष्ट मनोवज्ञानिक ढग के दशन होते है। सुदामा अब पत्नी को समझाने के लिए उसकी बात का खण्डन नही करता प्रत्युत समथन करता है। पूव ढग से काम न चलने पर चतुर व्यक्ति ऐसा ही किया करते हैं। सुदामा अपनी पत्नी से कहता है कि श्रीकृष्ण की प्रीति म कोई कमी नही है—उसकी यह बात सवथा सही है और यदि वह द्वारका गया तो श्रीकृष्ण कुछ न कुछ

१ सुदामा च० पृ० २१।
२ वही पृ० २४।
३ वही पृ० २५।
४ वही पृ० २४।

देंगे भी। यह कह चुकने पर फिर सुदामा अपनी बात रखता है कि दो पन तो बीत गय। अब आयु ही कितनी है कि जिसके लिए वह किसी का आभार ले।[1] पत्नी यहा भी छाड जाती है और सुदामा से स्पष्ट कह देती है—

भूलि न और प्रसग चलाइए।[2]

कृष्ण जैसे हितैषी मित्र के आभार ग्रहण करने म हिचकिचाना ठीक नही। इस तरह वह सुदामा से द्वारका जान का फिर अनुरोध करती है। अब वह अन्तिम अस्त्र अपनाता है जिसे वह अमोघ समझता रहा। कहता है कि वह द्वारका तब जाव जब श्रीकृष्ण के लिए कोई सौगात हो। यह बहुत बडा प्रश्न था। कहा महाराजा द्वारकाधीश कृष्ण और कहा दरिद्र ब्राह्मण सुदामा! क्या सौगात देगी उसकी पत्नी कृष्ण के लिए! घर म कुछ भी ता नही।

पाच सुपारी ते देखु विचारि के
भेंट को चारि न चाउर मेरे॥[3]

परतु पत्नी यहाँ भी रास्ता निकाल लेती है। पडोस म से कुछ चावलो का प्रबध कर दती है—दीन-जन की सर्वोत्तम भट! सुदामा को घर से चलना पडता है। एक दरिद्र विद्वान् पति के ऊपर उसकी चतुर पतिव्रता पत्नी की विजय का सुदर सवादो स भरा यह एक रोचक वत्तात है।

इसके अनन्तर कवि सुदामा की दीन दशा और श्रीकृष्ण की आदश मैत्री का भव्य दशन कराता है। एक दरिद्र का द्वारपाल के इन शब्दा म हूबहू चित्र खीचन का प्रयत्न दिखाई दता है

सीस पगा न झँगा तन मे प्रभु!
जान को आहि बसे केहि ग्रामा
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु
पाँय उपानह की नहि सामा।
द्वार खडो द्विज दुबल एक
रह्यो चकि सा वसुधा अभिरामा
पूछत दीन दयाल को धाम
बतावत आपनो नाम सुदामा।[4]

सुदामा नाम सुनकर श्रीकृष्ण पद सम्पत्ति आदि के मिथ्याभिमान को छोडकर उस दीन ब्राह्मण स मिलन चल जात हैं। जिसे देखकर सुदामा चकित हो जाना है और भगवान् कृष्ण की भक्ति उसके हृदय म उद्वेलित हो उठती है

१ सुदामा चरित्र पृ० ३२।
२ वही पृ० ३३।
३ वही, पृ० ३३।
४ वही पृ० ३८।

जसी तुम करी तसी कर को दया के सिंधु
ऐसी प्रीति दीनबन्धु ! दीनन सों मान को ?[१]

श्रीकृष्ण की इसी दीनबंधुता तथा आदर्श मत्री का दिखाकर भक्तो और सहृदयो के हृदय म भक्ति अथवा आनन्द को भरना नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र का प्रमुख उद्देश्य है।

रुक्मिणी आदि रानियाँ दग रह जाती है कि उस बूढे दरिद्र ब्राह्मण का तीन लोको के स्वामी ऐसा सम्मान करें। अपने अश्रुओ से सुदामा के कण्टकाकीण जरा जजर चरणो को धोना हास परिहास करना—इत्यादि श्रीकृष्ण के स्नेह स्निग्ध कार्यों म उत्तरोत्तर चढती हुई 'सुदामा चरित्र' की कथावस्तु तब अपनी चरमावस्था पर पहुच जाती है जब रमापति श्रीकृष्ण सुदामा द्वारा लाय गए चावलो को रुचि पूवक चबान लगने हैं। चावलो का चबाना था कि सिद्धियाँ सुदामा की दासियाँ बन जाती है। श्रीकृष्ण को सवान्तर्यामी ईश्वर सिद्ध करने का यह भक्त नरोत्तमदास का पुराणानुमोदित प्रयास है।

द्वारका म रहते हुए सुदामा की खूब आवभगत होती है किन्तु जाते समय श्रीकृष्ण उन्हे कुछ नही देते है। यहाँ एक दरिद्र का मनोविश्लेषण किया गया है। वह सोचता है

वह पुलकनि वह उठि मिलन वह आदर की भाति।
यह पठवनि गोपाल की कछू न जानी जाति ॥[२]

फिर कृष्ण की लघुता दृष्टिगत होती है। वह विचारता है कि तनिक दही के कारण घर घर फिरन वाला अगर आज राजा हो गया तो क्या![३] वह कृष्ण का प्रभुत्व भूल जाता है। भूलना ही यथाथ एव कार्योपयोगी है। दुख और निराशा की पराकाष्ठा पर हम सबस अधिक ईश्वर को ही कोसते हैं। सुदामा अपनी पत्नी के प्रति खीभता है जिसने उसे द्वारका भेजा। अब खूब धन बटोर ले वह! सुदामा और तो और बचपन के मित्र ही नही सवसमय प्रभु को झिझकता हुआ भी अपने जाने शाप दकर ही रहता है

बालापन के मित्र है कहा देउँ मै शाप।
जसो हरि हमको दियौ तसो लहैं आप ॥[४]

---

१ सुदामा चरित्र, पृ० ३६।

२ वही, पृ० ५१।

३ घर घर कर ओडत फिरे तनक दही के काज।
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज समाज ॥
—सुदामा चरित्र पृ० ५१।

४ वही, पृ० ५२।

डॉ॰ सियाराम तिवारी नरोत्तमदास के सुदामा को असहिष्णु कहकर उसके चरित्र की सत्कार्योपयोगिता को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और हलधर के सुदामा को धन न मिलने पर भी सन्तोष करने के कारण अत्यधिक सहनशील मानते तथा कविकृत उस चरित्र चित्रण को स्वाभाविक मानते हैं।[1] साथ-साथ वे यह भी मानते हैं कि नरोत्तमदास का सुदामा चरित्र 'आद्योपान्त दिव्यता से पूर्ण होने के कारण चरित्र चित्रण की सूक्ष्मता आदि गुणों से उतना सम्पन्न नहीं है जितना कि हलधर का सुदामा चरित्र। अतएव वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'हलधरदास सभी सुदामा चरित्रकारों से अधिक शक्ति-सम्पन्न थे।'[2]

मैं यह मानता हूँ कि नरोत्तमदास के 'सुदामा चरित्र' में अलौकिकता है। प्रायः सभी भक्ति-काव्यों का यह अपरिहार्य दूषण है। हलधर का सुदामा चरित्र' इससे कदाचित् ही बच पाया है। कृष्ण को सर्वान्तर्यामी मानकर ही हलधर काव्य-प्रणयन करता है। डॉ॰ तिवारी के विचारानुसार नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र की अलौकिकता का चरम रूप है—सुदामा को सम्पत्तिदान प्रसंग में, क्योंकि उसने इस बात का उल्लेख नहीं किया कि सम्पत्ति किस तरह सुदामा के पास चली गई जबकि वे हलधर के इस प्रसंग को सूक्ष्म का उत्तम नमूना मानते हैं क्योंकि उसके कृष्ण विश्वकर्मा को साथ लेकर सुदामा के गांव पहुंचते हैं और स्वयं महल तैयार करवा आते हैं।[3] मैं समझता हूँ कि यहाँ नरोत्तमदास से भी अधिक हलधर अलौकिकता का दिखाते हैं क्योंकि हलधर के सुदामा दूसरे दिन ही अपने घर को चल देते हैं और श्रीकृष्ण रातोरात सारी नगरी तैयार करवा सम्पत्ति से भरवाकर लौट आते हैं। क्या इस कार्य में अलौकिकता नहीं है? नरोत्तमदास का सुदामा तो कुछ दिन द्वारका रहता भी है और इस बीच महल बनाने की सम्भावना कुछ अधिक हो जाती है। इसी तरह सुदामा शाप के वृत्तान्त में नरोत्तमदास हलधर दास की अपेक्षा मानव-मन के चित्रण में अधिक स्वाभाविकता लाता है। विपत्ति की चरम स्थिति में मनुष्य ईश्वर के प्रति भी असहिष्णु हो उठता है—यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। निराश व्यक्ति कर्तव्याकर्तव्य का ध्यान नहीं रख पाता है। वह कभी एक ओर जाता है तो कभी दूसरी ओर। उसके हृदय में अनेक भाव पैदा होते हैं। नरोत्तमदास का सुदामा प्रथम कृष्ण की निष्ठुरता पीछे अपने भाग्य को कोसता हुआ दृष्टिगत होता है। ब्राह्मणी पर भी उसे क्रोध आता है। अन्त में वह स्वयं अपने को धिक्कार देता है। ये सब मिलकर सुदामा के चरित्र को लौकिक बनाते हैं। भाव शबलता का बड़ा अच्छा नमूना यहां उपस्थित किया गया है।

नरोत्तमदास का सुदामा अपने गांव पहुंचकर देखता है कि वहाँ महल खड़े

---

१ हिंदी के मध्यकालीन खण्डकाव्य पृ॰ ३२१ ३२७।

२ वही, पृ॰ ३२५।

३ वही पृ॰ ३२०।

हैं। पत्नी के विषय मे पूछना है तो एक औरत आकर उसकी अगवानी करती है पर उस विश्वास कसे हो कि वह उसकी पत्नी है। यहाँ पत्नी से वह जो कुछ कहता उसम एक बाँका एव सजीला परिहास विद्यमान है और पत्नी के उत्तर म पाया जाता है भगवदश्वय का चरम विकास।

टूटी सी मढया मेरी परी हुती याही ठौर,
तातें परी दु ख काट कहाँ हेम धाम री।
जेवर जराऊ तुम साजे सब अँग अँग,
सखी सोहैं सग वह छूछी हुती छाम री।
तुम तौरी ! पाटम्बर ओढ है किनारीदार,
सारी जरतारी वह ओढ कारी कामरी।
मेरी या पडाइन तिहारी अनुहारि ही प,
विपदा सताई वह पाऊँ कहाँ बामरी।[1]
रिद्धि सिद्धि दासी करि दीन्हीं अविनासी कृस्न।
पूरन प्रभासी कामधेनु कोटि बरु है।।[2]

इस वत्तात से श्रीकष्ण के परमश्वय सम्पन्न अवतार होने की बात स्पष्ट होती है। नरोत्तमदास का सुदामा चरित्र यथावत यही समाप्त हो जाना चाहिए था किन्तु कवि को इस कथा के आधार पर अपनी भक्ति भावना जो दिखानी थी। अतएव फिर पिष्टपपण हुआ और श्रीकष्ण के सामथ्य का बखान किया गया। सुदामा चरित्र' मे भक्तिभाव प्रधान है अन्य भाव सहचारी बनकर आये हैं। हिन्दी के सुदामा चरित्रो' म नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र का विशिष्ट स्थान है। कवि ने इसम मानव मन के विश्लेपण द्वारा चरित्र स्पष्ट किये हैं और बडे रोचक और अनूठे ढग से भक्तिभाव दिखाने का सफल प्रयत्न किया है।

श्रीकष्णनाथ सिग्देल ने नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र' का अनुकरण किया किन्तु बहुत सी बाता म घटा बढी उनकी अपनी है। सुदामा और उसकी पत्नी के बीच जो वार्ता नरोत्तमदास करवाते हैं वह सिग्देल नही करवा पाये हैं। सिग्देलजी ने 'सुदामा चरित्र की पीछे की प्रतियाँ पढी होगी जिनमे बहुत से नये पद जुड हैं जो प्राचीन प्रतियो म नही हैं। सुदामा चरित के नवीन प्रतिस्य इस दोहे की छाया उनक काव्य म दिखाई देती है जिसे सुदामा अपनी पत्नी को समझाता हुआ कहता है

मान बडाई प्रेम रस गरुआपन औ नेहु।
ये पाँचों तब ही गये जब कही कछु देहु।।[3]

१ सु० च० नरोत्तमदास प० ५८।
२ वही, प० ५६।
३ सु० च० नरोत्तमदास सपादक राम नरेश त्रिपाठी २१वाँ छन्द।

सिन्देलजी अपने सुदामा की उक्ति में कुछ नमक मिर्च मिलाकर वे ही बातें सामने रखते हैं जो उक्त पद में नरोत्तमदास ने कही

मित्र साथ यदि बात न गर्नु
लेन-देन छन छदम र मागनु
घर को प्रथम यो धर्म जान
माग गए घन जीवन मान ॥[1]

नरोत्तमदास के सुदामा ने द्वारका गमन से बचने के प्रयत्न-स्वरूप अपनी पत्नी से एक बहाना यह भी किया कि द्वारका पहुँचने पर श्रीकृष्ण के छड़ियां उसे आगे नहीं बढ़ने देंगे।[2] यही बात सिन्देलजी के सुदामा-चरित्र में दुहराई गई है।[3] सुदामा की दीन दशा का वर्णन सिन्देलजी के द्वारपालों द्वारा उसी तरह किया गया है जिस तरह नरोत्तमदास के सुदामा चरित्र में।[4]

को ही योटा द्वारमा दीन आई
नाऊँ आफनो यो सुदामा बताई
बिन्ती केही गत्र छाहुछ नाथ
आज्ञा पाए गर्छु हाजिर साथ ॥[5]

श्री कृष्ण सुदामा का नाम सुनकर दौड़ पड़ते हैं, किन्तु मित्र की दीन दशा देखकर उनकी आँखों से जल धारा बह पड़ती है। वे साश्रुनयन सुदामा के पैर पड़ते हैं

द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पायँ
भेंटे लपटाय हिय ऐसे दुख मान को ?
नन दोऊ जल भरि पूछत हरि[6]

सिन्देलजी के श्रीकृष्ण भी आँखों में पानी भरकर सुदामा के पाँव पकड़ते हैं

पाऊ पक्री बाहुली ले मुसारी
आखा देखी अश्रु का धार भारी।[7]

द्वारका से लौटते समय जब सुदामा को प्रत्यक्ष में कुछ नहीं मिलता, तब स्त्री बुद्धि पर चलने के कारण सिन्देलजी का सुदामा उसी तरह पछताता है जिस

---

१ सु० च० श्री कृष्णनाथ सिन्देल प० ६।
२ सु० च० न० दास, प० ३३।
३ वही सिन्देल, पृ० ७।
४ सु० च० न० दास पृ० ३८।
५ वही सिन्देल प० ७।
६ सु० च० न० दास, प० ३६।
७ सु० च०, सिन्देल पृ० १३।

तरह नरोत्तमदास का। अवश्य ही जहाँ सिग्देलजी के सुदामा म आत्मग्लानि की मात्रा अधिक है वहाँ नरोत्तमदास म पत्नी के प्रति खीभ अधिक देखी जाती है

स्त्री को परेर हठ का धन मान्न आये
आफनो महत्त्व पुरुषाथ पनी गुमाएँ
फेरी तिरँ नजरमा हरिको म आज
गर्ने छ तुच्छ अब भन जनको समाज ॥[1]

हौं आवत नाहीं हुतो वाही पठयो ठेलि।
कहिहौं धन सों जाइके अब धन धरो सकेलि।[2]

'सुदामा-चरित्र' के कलापक्ष की तुलना

सुदामा चरित्र को लेकर उक्त दोनो कवियो न लगभग समान बातें कही हैं। उनकी पद्धति भी एक ही है यद्यपि नरोत्तमदास की शैली श्री सिग्देल की शैली से कही अधिक मनोरम तथा उनका चरित्र चित्रण कही अधिक पूर्ण है। उनके सुदामा चरित्र की नाटकीयता आदर्श है। मानव मन का सुन्दर विश्लेषण इसमे मिलता है। उनकी शब्दावली की स्वाभाविकता मूलत तथ्यात्मक दृष्टि रखने वाले सिग्देल जी अपनी शैली म नही ला पाये। नरोत्तमदास की शैली की भाँकी यहाँ कतिपय उदाहरणो द्वारा प्रस्तुत की जाती है

"सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय, ताको कहा अब देति है सिच्छा'[3]
मे गेहेनर्दी पुरुष स्वभाव की व्यजना बडी स्वाभाविकता से हो जाती है।

"कोदो सवा जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।[4]
म पतिगृह की अभावदर्शिनी नारी प्रकृति की सजीव अभिव्यक्ति देखी जाती है।

'जातहिं दं हैं लदाय लढा भरि लहो लदाय यहै जिय जानी"।[5]

तथा

'द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहुजू आठहु जाम यहै जक तेरे'।[6]
मे पुरुष की खीभ तथा उसकी दृष्टि मे नारी हृदय की हठ का अकृत्रिम शब्दो से एक रेखाचित्र बन जाता है।

निम्नलिखित पक्तियो का उक्ति चमत्कार भी ध्यान देने योग्य है

१ सु० च० कृ० ना० सिग्देल पृ० ४२।
२ वही, नरोत्तमदास पृ० ५१।
३ सु० च० नरोत्तमदास, पृ० २०।
४ वही पृ० २३।
५ वही, पृ० २४।
६ वही, पृ० ३२।

(क) धीरज अधीर के, हरन पर पीर के
बताओ बलवीर के भवन यहा कौन है ?
(ख) हाल्यो परो योकन मे लालो परो लोकन मे,
चालो परो वदन मे चाउर चवात हौ।[1]

अपनी वैभव-सम्पन्न पत्नी का सम्बोधित करता हुआ सुदामा का कथन बडा ही कलापूर्ण है

टूटी सी मढया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामे परी दुख काट कहा हेम धाम री।
जेवर जराऊ तुम साजे सब अग अग,
सखी साहँ सग वह छूछी हुती छाम री।
तुम तो री ! पाटम्बर ओढे हौ किनारी दार,
सारी जरतारी वह ओढ़ँ कारी कामरी।
मेरी था पडाइन निहारि अनुहारि हो प
विपदा सताई वह पाऊँ कहाँ बामरी॥[2]

डा० सियाराम तिवारी के शब्दा म नरोत्तम के प्राय प्रत्येक छन्द म कोई-न-कोई अलकार है।[3] विभावना परिकर स्वभावोक्ति अतिशयोक्ति आदि अलकारो की उनके खण्ड-काव्य म भरमार है। श्री कृष्णनाथ सिन्देल इस दिशा म उनके साथ समानान्तर नही चल पाते हैं। उन्होंने अधिकाशत इतिवृत्तात्मक अल्पत - अलङ्कृत शली म सुदामा चरित्र के कथा-स्थलो को पिरोया है। नरोत्तमदास की भाषा म तद्भव शब्दावली अधिक तत्सम शब्द कम है जबकि सिन्देलजी की रचना म तत्सम शब्दावली का प्राचुय देखा जाता है

धन हीन अनाथ कुटुम्बक्न प्रतिपालन सा दिन पद्धमन।
जस ले परमाथ बनो जन को सुख साधन पूण हुने मन को॥[4]

दोनों की भाषा प्रसाद गुण-सम्पन्न है। वक्रता का सवथा अभाव सिन्देल की कृता म नहा है। कहने का अप्रत्यक्ष ढग उनके पात्र अपनाते ही हैं। सुदामा घर आकर द्वारपाल स साहित्यिक शिष्टता का प्रदर्शित करता हुआ पूछता है

हे द्वारपाल ! कहिले घर यो बने को।
को भाग्यवान छ यस मा अहिले बस को।[5]

---

१ (क) सु० च० कवित्त स०, ३१।
(ख) वही, पृ० ३६।
२ वही, नरोत्तमदास पृ० ४६।
३ हिन्दी के मध्यकालीन खण्ड-काव्य पृ० ३३२।
४ कृष्ण चरित्र श्रीकृष्णनाथ सिन्देल, १०६वाँ पद।
५ सुदामा चरित्र श्रीकृष्णनाथ सिन्देल १७६वाँ पद।

लक्षणा युक्ति और गम्य रूपकात्मा जिज्ञासा की नीच लिखी पंक्तियों में सुन्दर योजना हुई है

विन घन जन मांहा हे हरे ! यो फसायो ।
कुरस रस पिलाई कम देखी डगायो ।।

आगे रूपकातिशयोक्तिमय गाम्भीर्ययुक्त लक्षणा का चमत्कार है

कुन तरह दयालो ! पार होला जहाज ?
अगम पथ छ जानी दीन को राख लाज ?[1]

सिग्देलजी सुदामा के मन की पत्नी विषयक अनिष्ट की आशंका को अप्रस्तुत-प्रशंसामूलक व्यंजना शक्ति द्वारा सफलतापूर्वक अपने पाठकों के सम्मुख रखते हैं

क्षीण दीन मलिना कन छाडी
द्वारिका जब गएँ म अगाडी ।
शान्त हुन मन यो सब हेरी
कमको छ अति दीन म फेरी ।।[2]

वित्त निन्दापरक निम्नलिखित पंक्तियों में दीपक अलंकार की झाँकी मिलती है

जो वित्त ले आप्तहरू टुटाई
बर्बाद गर्द छ सदा झगडा लगाई ।
लोकापवाद अति पाद छ सुन्न नित्य
देखिन्न सो स्थिर पनी छ सदा अनित्य ।।[3]

अधिकांश हिन्दी सुदामा चरित्र लेखकों ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है। केवल हलधर भूधरदास तथा आलम ने एक ही छन्द प्रयुक्त किया है। हलधर और भूधर ने छप्पय और आलम ने ककुभ छन्द को व्यवहृत किया है। वीर कवि ने छन्दों की विविधता से अपने काव्य को भर दिया। नरोत्तमदास ने दोहा कवित्त, सवैया और कुंडलियों का प्रयोग किया है। कथावस्तु के कथन के लिए दोहा तथा भावाभिव्यक्ति के लिए कवित्त, सवैया और कुंडलियों का व्यवहार हुआ है। श्रीकृष्णनाथ सिग्देल ने संस्कृत वृत्तों का प्रयोग किया है जिनमें शार्दूल विक्रीडित द्रुतविलम्बित मालिनी प्रमुख है। शिखरिणी छन्द में लिखे गये हरिहर लामिछाने के सुदामा चरित्र की वर्ण मैत्री अच्छी है। भाषा में प्रवाह और शैली मजी हुई है। ह्रस्व 'आ' ए और ओ का स्थान स्थान पर प्रयोग मिलता है। जैसे नीचे उद्धृत चरणों के रेखांकित वर्ण।

---

१ सुदामा चरित्र श्रीकृष्णनाथ सिग्देल १६३वाँ पद।
२ वही, १८४वाँ पद।
३ वही १७२वाँ पद।

वाहां अब जानूहोस् सब मुलुकमा ठाकुर जहां।[1]
चोलीया की हालो कति कहनु यो वात सरम की।[2]
केही बोलू पो ता गरिविनि [3]

लामिछाने की गली मे वक्रता है। जब सुदामा पत्नी की छोटी बडी बहनें 'वन्यिा कपडा' पहनकर चलती हैं तो उसके मन मे थप्पड लगाती है। थप्पड के बदने मन मे ठोकर लगनी ता यह असगति का उत्तम उदाहरण हो जाता। थप्पड लगने म यह उक्ति विभावना मात्र रह जानी है यदि वह कुछ बोलती है तो उस दोना का भगडा हो जाता है। यह लिखन के अनन्तर लामिछाने अर्थान्तरयास का प्रयोग करत हुए कहत हैं कि उस व्यक्ति को किसी की थोडी भी वात नही करनी चाहिए जिसकी पहुच न हा

दिदी बहीहेरू वहुत बढिया लाइ कपडा
हियाई हिडदामा भक्न मनमा लाग्छ थपडा
केही बोलू पो ता गरिविनि (म?) यो छु हुन्छ भगरा,
न पुग्या प्राणी ले कति पनि न गर्नू पर कुरा।[4]

दल वहादुर कार्की ने 'सुदामा को भाषा श्लोक' म अपनी तरफ से शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है किन्तु स्थान स्थान पर छन्दोभग दोष देखा जाना है

विन्ती ताहि गरिन् उस बखतमा पाऊ कमल मा परी।[5]

इस चरण म शार्दूल विक्रीडित का पूरा लक्षण अर्थात मगण सगण जगण, सगण तगण तगण गुरु का क्रम मिल जाता है किन्तु इसके ठीक पहले चरण मे उक्त क्रम का निर्वाह नहीं दिखाई दता

वय नाहि घरमा फुन फुलका भरमा कन्तमूल खातिन ताहा।[6]

अन्य चरणों म भी यह त्रुटि देखी जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्की जी ने केवल लय मिलाते हुए अपनी पद रचना की और अभ्यास की अपरिपक्वता के कारण कोई-कोई चरण ही घुणाक्षरन्याय से सही वन गया शेष चरणा मे अशुद्धि रह गई। भाषा भी कार्कीजी की मँजी हुई नहीं है। अलकारादि काव्य विशेषताओं को उनकी रचना मे खोजना निरथक है। अवश्य ही एक स्थान पर उनसे ग्राम

१ सुदामा चरित्र हरिहर लामिछाने भाषा सप्तरत्न से उदधृत।
२ वही।
३ वही।
४ वही।
५ सुदामा को भाषा श्लोक दलबहादुर कार्की पृ० ३।
६ वही, पृ० ३।

प्रचलित रूपक का प्रयोग हो पड़ता है। ये श्रीकृष्ण के चरणों को कमल के समान हैं।[1] निष्कर्ष यह है कि वार्कीजी की रचना को पढ़कर उनके उत्कृष्ट कवित्व का परिचय नहीं मिलता है। वे साधारणतः तुकबन्दी कर लिया करते थे—यही अनुमित होता है।

कृष्ण भक्ति सम्बन्धी अन्य नेपाली ग्रंथ

हिन्दी और नेपाली में कृष्ण भक्ति साहित्य में अन्य बहुत कुछ लिखा गया है उसमें से कुछ को उनका तुलनात्मक महत्त्व न होने के कारण छोड़ दिया गया है और कुछ रचनाओं का काव्य-रचना से कोई सम्बन्ध नहीं है या अप्राप्य है। बहुत से ग्रन्थ केवल अनुवाद हैं और विशुद्ध भक्ति की दृष्टि से लिखे गये हैं। महाभारत और श्रीमदभागवत का आधार लेकर दोनों भाषाओं में बहुत सी लेखनी न लेखनी चलाई। हिन्दी और नेपाली में महाभारत पद्य बद्ध हुआ। हिन्दी में यह कार्य समुचित रूप से गोकुलनाथ गोपीनाथ तथा मणिदेव ने मिलकर 'भाषा महाभारत' की रचना कर सम्पन्न किया। सबलसिंह चौहान ने भी दोहा चौपाइयों में महाभारत का अनुवाद किया जिसमें बाबू गुलाबराय के शब्दों में प्रवाह अच्छा है। किन्तु साहित्यिक सूझ बूझ कम है।[2] नेपाली में नरेन्द्रनाथ रिमाल और श्रीकृष्ण प्रसाद ने अपने अपने महाभारत की रचना की। यद्यपि इनका पुराणतिहास सम्बन्धी महत्त्व अधिक है फिर भी इनकी काव्यात्मकता को सर्वथा तिरस्कृत नहीं किया जा सकता है और जब बसन्त शर्मा के कृष्ण चरित्र रघुनाथ के सुन्दरकाण्ड और भानुभक्त के भक्ति ग्रंथ रामायण को काव्य ग्रंथ स्वीकार किया गया है और तत्तत्कृति के कारण उन्हें कवि माना जाता है तो कोई कारण नहीं कि श्री कृष्णप्रसादजी की कृति महाभारत को काव्य ग्रंथ और उसकी रचना के कारण उन्हें कवि न माना जाय। उन्होंने अपनी ओर से भी पुराण नहीं काव्य लिखा जैसा कि उनकी इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है

> मेरा पनि यो कविता कि वर्णन
>
> जस्ते हरु मात्र बयान गर्नन।
>
> बोली विकार छन्द विकार नाही
>
> इकार उकारमा हल छन काही।
>
> कृष्णप्रसाद कवि ले रचना गरया को
>
> यो आदिपर्व बहुत रमिलो भलाको।

---

१ शंख चक्र गदा चतुर्भुज विषे पाऊ कमल का सदा। 'सुदामा को भाषा श्लोक, पृ० ४।

२ काव्य के रूप गुलाबराय, पृ० ९७।

हुदें महा पनि त धम हुया छ भारी,
हनू हृषीस रसिक हो ग्रतिभक्तिधारी ॥[१]

श्रीमदभागवत को भी हिन्दी ग्रौर नेपाली दोनो भाषाग्रो के कवियो ने ग्रपनी ग्रपनी भाषा म पद्यबद्ध किया। दशम स्कन्ध पर तो बहुत से लेखको की दृष्टि टिकी। वस्तुत कृष्ण भक्ति से सम्ब ध भी इसी स्कन्ध का है। हिन्दी के लालदास के 'भागवत दशम स्कन्ध भाषा' ग्रौर विश्रमसाहि के 'हरिभक्त विलास' की तरह नेपाली मे भी भागवतीय ग्राख्याना की रचना हुई। दीघमान की रचना 'स्यमन्तक मणिकथा', पदमप्रसाद उपाध्याय ग्रौर शम्भूप्रसाद के 'कृष्ण चरित्र' भागवतकथाश्रित है। श्रीमदभागवद्गीता के भी भाव, भाष्य ग्रौर शब्दानुवाद दोनो भाषाग्रो म देखे जाते हैं। नेपाली म केसरनाथ उपाध्याय ग्रौर भुवनप्रसाद ढुगल की 'भगवदगीता' तथा श्री गगानाथ शर्मा ग्रर्जेल की ग्रपणगीता, जो गीता का पद्यबद्ध भाष्य है इस दिशा से उल्लेखनीय है। इनम लेखका का दार्शनिक तथा पौराणिक दृष्टिकोण प्रधानत विद्यमान हैं, इनका काव्यात्मक महत्त्व ग्रधिक नही है—इसीलिए उनका तुलनात्मक विवेचन छोड दिया गया है।

१ महाभारत कृष्णप्रसाद ग्रादिपर्व १, २ श्लोक (पद १)।

अध्याय ८

मिश्रित भक्ति-काव्य

मिश्रित भक्ति काव्य धारा

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी भक्ति साहित्य की चार शाखाएँ लिखी हैं— ज्ञानाश्रयी शाखा, रामभक्ति शाखा, प्रेममार्गी शाखा तथा कृष्ण भक्ति शाखा। यह विभाग प्रधान प्रवृत्ति को दृष्टि में रखकर किया गया है। धारा के नाम और प्रवृत्ति के अनुसार भक्ति साहित्य के शाखा भेद किए जाएँ तो और भी भेद हो सकते हैं जिनमें नृसिंह भक्ति शाखा, शिव शक्ति भक्ति शाखा, हनुमद्भक्ति शाखा तथा सामान्य भक्ति शाखा—जिसमें ध्रुव, अजामिल, गजेन्द्र आदि के कथा तथा अतिरिक्त सामान्य भक्तिभावना विद्यमान है—उल्लेखनीय हैं। इन सबको हम यहाँ वर्गीकरण साधन की दृष्टि से मिश्रित शाखा या धारा के अन्तर्गत रखते हैं।

हिन्दी-नेपाली-नृसिंह भक्ति-काव्य : नृसिंह भक्ति सम्बन्धी मुद्रितामुद्रित प्रमुख हिन्दी काव्यों की संख्या लगभग १२ है। [illegible] सहजराम, सोतीराम और देवीसिंह इन चार कवियों में से प्रत्येक ने प्रह्लाद चरित लिखा है। [illegible] और रामनाग ने 'प्रह्लादलीला' नाम से नृसिंह की भक्ति का आख्यान लिखा है। परशुराम ने 'परशुराम सागर' तथा बाबा रघुनाथ दास रामसनेही और ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'विश्राम सागर' में नृसिंहावतार की कथा वर्णित की है। शृंगार (मान) ने नृसिंह चरित्र, नृसिंह पचीसी तथा गिरिधरदास ने नृसिंह कथामृत लिखकर भगवान नृसिंह के प्रति अपनी भक्ति भावना अर्पित की है। चाचा हित वृन्दावनदास के ग्रन्थ 'चौबीस लीला' तथा अन्यान्य भाषा भागवतों में भी नृसिंहावतार की कथा आई है। गुरु गोविन्द ने भी ४२ छन्दों में नरसिंह अवतार की चर्चा की है।

नृसिंहावतार की कथा का आधार प्रमुखतः भागवत का पंचम स्कन्ध है। प्रह्लाद को दी गई हिरण्यकशिपु की यातनाएँ, प्रह्लाद का सत्याग्रह तथा नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु वध, ब्रह्मादि द्वारा भगवान की स्तुति ही इस कथा का विषय है। विष्णु पुराण में भी इस कथा को विशद रूप से कहा गया है, किन्तु स्थल विशेष पर बलानुपात को दृष्टि में रखकर यह कहना सम्भव नहीं है कि हिन्दी काव्यकारों ने उसे पढ़कर अपनी रचनाएँ की हों। ज्वालाप्रसाद मिश्र ने

नृसिंह पुराण से वस्तु चयन किया है—यह बात वे स्वय रचनारम्भ म स्वीकार करते हैं

> विधि हरि हर गण पति गिरा, सुमिरि राम सुखदान ।
> श्री नरसिंह पुराण को, कहुँ इतिहास बखान ॥[1]

नेपाली में नर्सिह भगवान की महिमा दिखाने वाली रचनाएँ नेपाली भाषा भागवत के अतिरिक्त मोतीराम भट्ट कृत प्रह्लाद भक्ति-कथा तथा सुब्बा होमनाथ कृत नर्सिह चरित्र हैं। बहादुरसिंह बराल ने नर्सिह भक्ति सम्बन्धी गायन लिखे। इन कृतियो की कथावस्तु का मूल स्रोत भी श्रीमदभागवत है। यथार्थत समस्त हिन्दी नेपाली प्रदेश म पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण बहुत सी भक्ति रचनाएँ श्रीमदभागवत के आधार पर रचित हुई हैं।

नर्सिह भक्ति विषयक हिन्दी रचनाओ म प्रह्लाद का जन्म, उसकी भक्ति भावना, गुरुकुलवास, हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद को यातना देना भगवान नर्सिह का प्रह्ललाद की रक्षाहेतु खभा फाडकर प्रकट होना, हिरण्यकशिपु वध नर्सिहस्तुति प्रह्ललाद को इन्द्रासन की प्राप्ति के वृत्तान्त सभी म पाये जाते हैं। ज्वालाप्रसाद के विश्राम सागर म हिरण्यकशिपु के जन्म के कारणरूप जय विजय शाप की कथा भी सक्षेप म कही गई है। गुरु गोविन्दसिंह की प्राय सभी भक्ति रचनाओ मे भक्ति निष्ठा के साथ साथ वीरता की उपासना भी पाई जाती है। तदनुसार ही उनकी 'नरसिंह अवतार' रचना म भी युद्धोत्साह पर बल देने के लिए नर्सिह और हिरण्यकशिपु के बीच घोर युद्ध दिखाया गया है। आठ दिन तक युद्ध होता है और अन्त म हिरण्यकशिपु मारा जाता है।[2]

वस्तु सघटना की दृष्टि से नेपाली और हिन्दी रचनाओ म विशेष अन्तर नही है। स्थलो की घटा बढी अवश्य है। जसे सुब्बा होमनाथ खतिवडा की नेपाली रचना नर्सिह चरित्र म प्रह्लाद द्वारा नर्सिह की स्तुति पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया गया है शिव ब्रह्मा और लक्ष्मी द्वारा की गई स्तुतिया को स्पष्टत अलग अलग दिखाया गया है जबकि अधिकाश हिन्दी रचनाओ म उन्होने स्तुतियाँ की—इसका उल्लेख कवि के शब्दो म किया गया है। मोतीराम भट्ट की प्रह्लाद भक्ति कथा म हिरण्यकशिपु के तप करने तथा ब्रह्मा के वरदान देने का वणन सक्षेप म किया गया है किन्तु हिन्दी रचनाओ म कुछ विस्तार स कहा गया है।

हिन्दी और नेपाली के सभी नर्सिह भक्ति विषयक काव्यो म चरित्र चित्रण का काव्यो के नामो से तारतम्य नही हो पाता है। काव्य या तो प्रह्लाद के या नर्सिह

१ विश्राम सागर ज्वालाप्रसाद मिश्र अध्याय २५ पृ० १५७ श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई स० २००८।

२ दशमेश रचित चौबीस अवतार, सग्रह ग्रन्थ सख्या २२२४ और २५६२ सेन्टल लाइब्रेरी, पटियाला।

के नाम पर रचित हुए हैं। जिनका नाम प्रह्लाद को लेकर पडा है उनमे आधिकारिक कथावस्तु का विषय 'प्रह्लाद चरित्र' ही होता तो अधिक समीचीन होता, किन्तु कथा विधान ऐसा हुआ है कि वह हिरण्यकशिपु के जीवन के उत्कर्षापकर्ष का आख्यान बन गया है। प्रह्लाद लीला नाम भी विषय की दृष्टि से अनुपयुक्त लगता है क्योंकि उनमे लीला विग्रह भगवान नृसिंह ही अपनी लीला दिखाते हैं। नर और सिंह का विचित्र रूप धारण करना हिरण्यकशिपु को मारना फिर भक्त की महिमा बढाने के हेतु ब्रह्मा शिव और लक्ष्मी की स्तुति से शान्त न होकर प्रह्लाद की प्राथना पर ही उग्रता दूर करना इत्यादि भगवान की ही तो लीला है। जिन रचनाओं का नाम नृसिंह चरित्र है, वे चरित्रात्मक काव्य की दृष्टि से और भी अधिक अपने प्रतिपाद्य से दूर जा पड़े हैं। उनमे प्रमुख रूप से नृसिंह का चरित्र वर्णित होना चाहिए था किन्तु प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु के चरित्रो पर अधिक ध्यान दिया गया है। नामकरणानुरूप विषय विधान पर विचार करें तो नेपाली के ही नही नृसिंह कथामृत को छोडकर हिन्दी के नृसिंह भक्ति विषयक काव्यों मे मोतीराम भट्ट की प्रह्लाद भक्ति कथा न्यूनतम दोष वाली रचना है। कोई आश्चर्य नही यदि मोतीराम भट्ट ने अपने साथी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गिरधरदास के 'नृसिंह कथामृत' को पढा हो और तथाकथित संशोधन कर अपने काव्य को उक्त नाम दिया हो। वस्तुत इस नाम का ठीक अर्थ ग्रहण करने के लिए पाठक को राम भक्ति कृष्ण भक्ति के अर्थबोधाश्रित अपने अभ्यास के विपरीत मध्यपदलोपी समास विग्रह द्वारा प्रह्लाद-कृत भक्ति की कथा के रूप में कठिनतर विश्लेषण करना होगा। इस रचना का नामानुकूल विषय है भक्ति। कवि आदि और अन्त मे अपने इस उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है।[1] प्रह्लाद के मुह से भी भगवद् भक्ति पर बल दिया गया है

> खुप भक्ति राखि मनमा अति ध्यान गर्ला,
>
> गूढ ध्वस्त पनि त्यो पछिवाट तर्ला,

१ (क) एदिन आश्रम मा पराशर ऋषी बस्या भया को थियो,
ताहाँ कछ बक्तभनेर ऋषिका मत्रय पाल्नु भयो
इच्छा मत्रेय को बुझेर मनमा कर्ता न राखी तया
आज्ञा भो ऋषि बाट तेस बक्तमा प्रह्लाद भक्तो कथा।
—प्रह्लाद भक्ति कथा मोतीराम भट्ट पद्य १।

(ख) भाषा सस्कृत्रि सहित सकल को बुझ्या छ जाहाँ तहाँ
भन्दा भक्ति कथा प्रकाश गरिदिया पोर्वाखिभाषा महाँ,
मस्ता ऊब र नाव कहि घ भया माफ सव्बाईलि उन
मोतीराम भनेर भक्त हरूसे मागो भलाई दिउन।
—वही प० स० ४१।

भक्ति बराबर प्रभु निज छन केहो
मोमा दया हुन गया मत पाउँ एहो ॥[1]

हिन्दी-नेपाली-ध्रुव चरित्रात्मक काव्य

ध्रुवचरित्र को लेकर स्वतन्त्र रूप स लिखे गय भगवद्भक्ति विषयक काव्य हिन्दी म प्रमुद्रित ही है। विश्राम सागरस्थ ध्रुवकथा अवश्य मुद्रित है। भाषा भागवतो म ध्रुवोपाख्यान भी मुद्रित पाए जाते हैं। रामचन्द्र शुक्ल न अपने इतिहास म नरोत्तमदास के भी ध्रुवचरित्र का उल्लेख किया है, किन्तु वह रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। महाराजा विश्वनाथसिंह न ध्रुवाष्टक नाम की एक लघु रचना की, जिसम ध्रुव-कथा संक्षेप म वर्णित है। अमुद्रित ध्रुवोपाख्यानो म सुन्दर की रचना ध्रुवलीला को छोडकर शेष[2] 'ध्रुव चरित्र' क नाम स प्रसिद्ध हैं।

नेपाली म भी ध्रुव को लेकर रचित भक्ति-काव्य-कृतियो की विरलता है। दो ध्रुवचरित्र गोपीनाथ लोहनी के नाम पर मिलत हैं। एक क प्रकाशक हैं विश्वराज हरिहर शर्मा बनारस और दूसर के प्रकाशक हैं बाबू माधवप्रसाद शर्मा सब सिनपी कम्पनी, बनारस। दोनो म पर्याप्त अन्तर है। श्रीकमल दीक्षित इस समय प्रचलित ध्रुवचरित्र को लोहनी की कृति मानने को तयार नहीं हैं।[3] हरिदास का ध्रुवचरित्र, माधवप्रसाद घिमिरे का ध्रुव की कथा गोपालप्रसाद पाण्डेय का सुनीति विरह भी नेपाली की ध्रुव चरित्र परिचायक भक्ति रचनाएँ हैं। पतञ्जलि और सुजा हामनाथ द्वारा भी एक एक 'ध्रुव चरित्र' रचित होने का विश्वास किया जाता है। श्री ईश्वर बराल एक ध्रुवचरित्र श्री शम्भुप्रसाद ढुगाना द्वारा लिखा हुआ मानते हैं।[4]

उपर्युक्त हिन्दी नेपाली ध्रुव चरित्रो का स्रोत श्रीमद्भागवत (च० स्क० अ० ८ ६) है। यद्यपि यह कथा विष्णुपुराण म भी आई है किन्तु हिन्दी और नेपाली कवियो न भागवतान्तर्गत वस्तु को ही कहीं कुछ त्यागकर तथा कहीं कुछ उसम जोडकर अपनी छाप लगान का प्रयत्न किया है। प्रमुख बात सब मे यही है कि सौतेली माँ स तिरस्कृत होकर ध्रुव अपनी माता के पास जाता है। माँ उसे बताती है कि उसक सच्चे माता पिता, भाई-बन्धु—सब-कुछ ईश्वर ही है। उसकी कृपा से मनोवाछा सिद्ध होती है। इस पर ध्रुव तपस्या करने जाता है। मार्ग म नारद मिलत

१ प्रह्लाद भक्ति कथा मोतीराम भट्ट, प० स० १३।

२ (क) ध्रुव-चरित्र परमानन्ददास (ख) ध्रुवचरित्र गोपाल (ग) ध्रुवचरित्र मधुकर दास (घ) ध्रुवचरित्र सोमनाथ।

३ बृहगल, पृ० ३१८।

४ नेपाली साहित्य को ऐतिहासिक क्रम विकास, नेपाली भाषा,' पृ० १०४ रत्न पुस्तक भण्डार, भोटाहिटी, काठमाडू।

हैं जिनसे वह मन्त्र प्राप्त करता है। तब वह विघ्न बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ घोर तपस्या करता है जिससे भगवान प्रसन्न होकर उसे अचल राज्य तथा अटल भगवदभक्ति प्रदान करते हैं।

हिन्दी के ध्रुवचरित्रों म गोपाल को छोडकर अन्य कवियो की दष्टि प्रबन्ध कौशल की ओर नही रही। श्रीमदभागवत कथा का सार छन्दोबद्ध कर देना ही उनका काम रहा। गोपाल भागवत की भूमिका को ध्रुवचरित्र के साथ सम्बन्ध कर देता है अर्थात परीक्षत और कलि के उपाख्यान के अनन्तर प्राप्तशाप राजा की मुक्ति के लिए श्री शुकदेवजी ध्रुवकथा को सुनाते है। कथा-कथन म गोपाल जैसा रमता है वसा अन्य कोई हिन्दी या नेपाली कवि रमता दष्टिगोचर नही होता है। ध्रुव की तपस्या को खण्डित करने के लिए उवशी से ध्रुवमाता का रूप धारण करवाना गोपाल के ध्रुवचरित्र की एक ऐसी विशेषता है जो कवि के बालमनोभावेतत्व को प्रकट करता है। इससे रोष और मोह के जिस पाश का निर्माण किया गया है उसे तोडना एक बच्चे के लिए सबसे अधिक कठिन है अतएव कठोरतम परीक्षा की इस योजना म कवि की सूक्ष्म सूझ बूझ स्पष्ट झलक उठती है। राजमहल से निष्कासित माँ पुत्र से रक्षा चाहे किन्तु पुत्र क्रोध और मोह से अछूता रहकर उधर ध्यान ही न दे।[1]

नेपाली ध्रुवचरित्रो म वस्तुगत परिवतन यही देखा जाता है कि कथा अत्यधिक स क्षेप म कह दी गई है और कुछ स्थलो को सवथा छोड दिया गया है। इन्ही को दष्टि म रखते हुए श्री कमल दीक्षित श्री हरिदास के ध्रुवचरित्र के नीचे लिख कुछ स्थलो को गिनाते हैं[1]

(१) लम्बी वस्तु का सक्षेपीकरण—(क) ध्रुव को नारद के मिलने नारद द्वारा ध्रुव की परीक्षा लेने तथा दीक्षा देने की सवाद पूण लम्बी कथा की सूचना इस तरह दे दी गई है

जान्दा वरी बाटामा मुनि छेउ नारद सित भयो भेट तिनका।
मन्त्र सुन्या ध्रुव ले द्वादशाक्षरी नारद गुरु भया मधुरा पुग्या ॥[2]

(ख) माँ-बाप को छोडकर ध्रुव को एकाकी स्वगारोहण अच्छा नही लगा। देवदूत समझ गय और उन्होंने जो कुछ किया उसे कवि ने स क्षेप म बता दिया

जादा घेरि बाटामा आमा नभया
देवदूतले देखाया विमान मा।[3]

---

१ हरिदास को ध्रुवचरित्र भूमिका भ' कमल दीक्षित जगदम्बा प्रस ललित पुर काठमांडू।

२ वही १६वां पद।

३ वही १६वें पद को प्रथम अर्द्धाली।

(२) वस्तु-परित्याग—कवि ने धुवेर ध्रुव युद्ध तथा सुमति और उत्तम की मृत्यु के वत्तान्त को सवथा छोड दिया। इस तरह वीर और करुण रस के उत्साह और शोक भावो को दिखाने का अवसर खो दिया।

हिन्दी नेपाली सभी ध्रुव चरित्रो म पौराणिकता' की पूरी पूरी योजना है। असम्भव घटनाओ तथा आकस्मिक सयोगो का प्राचुय है। बालक ध्रुव का घर त्यागकर वन प्रयाण और नारदोक्त गूढ नान ग्रहण करना एक पचवर्षीय शिशु को अप्सराओं द्वारा कामचेष्टाएँ दिखाना इत्यादि ऐसी बातें है जिनम काव्यात्मक सम्भाव्यता नहा दिखाई देती है। यथाथत भक्ति काव्यो म ऐसी बातें प्राय पाई जाती हैं यह दिखाने के लिए कि सवसमय ईश्वर के भक्तो के लिए असम्भव कुछ भी नही है। भक्तीतर काव्यो म जो बात सवथा अग्राह्य हैं व भक्ति काव्यो म सत्य बन जाती हैं। हा भगवत्कृपा प्राप्त करने से पहले ही जब भक्त चरित्रो को अदभुत वत्तान्तो से सवलित किया जाता है तब काव्यात्मक सत्य पर जो कुठाराघात होता है वह खटकने लगता है। गोपीनाथ लोहनी का ध्रुव नारद द्वारा तपस्या की असाध्यता प्रस्तुत करने पर उत्तर देता है

छनन असम्भव कुन पनि लोक माहा,
छन साध्य साधन भरे सब बात माहाँ
साहस लियो मन महा जति काम गछन,
सम्भव गरी कन तिन पछि पार तछन्।[1]

जिस तरह हिन्दी कवि मधुकरदास सामनाथ तथा सुन्दरदास के ध्रुवोपाख्यानो मे आदि म स्तुति तथा अन्त मे फल-कथन पाये जाते हैं उसी तरह नेपाली कवि हरिदास और गोपीनाथ लोहनी के ध्रुवचरित्रो मे भी वे देखे जाते हैं। इससे भी ध्रुवोपाख्यानो मे पौराणिकतत्व की प्रधानता प्रमाणित होती है।

ध्रुव को लेकर रचे गये हिन्दी नेपाली काव्यो मे भगवदभक्ति गौण रूप मे व्यजित होती है। प्रस्तुत एव प्रधान बन जाता है ध्रुव का चरित्र। रचनाओ के नाम भी ध्रुव पर रखे गये है। हिन्दी कवि सुन्दरदास ने अपनी रचना को 'ध्रुव लीला नाम दिया है जो तभी उपयुक्त माना जा सकता है जबकि लीला का अथ आख्यान माना जाय। ध्रुव को कहा से कहा पहुचा देना—यह भगवत्कृपा है जिसे कथचित भगवल्लीला कहा जा सकता है। ध्रुवलीला शब्द से ऐसा व्यजित होता है कि जसे ध्रुव ने जान बूझकर वह सब स्वाग रचा हो और इस नाम स निश्चित रूप से ध्रुव का महत्त्व अकित होता है न कि भगवान् का जो भक्ति काव्य का प्रतिपाद्य होता है। हिन्दी की अय ध्रुव सम्बन्धिनी रचनाओं म भी ध्रुव चरित्र की प्रधानता है और तदनुकूल उनका नाम भी ध्रुवचरित्र रखा गया है।

१ ध्रुव चरित्र गोपीनाथ स० मा० प्र० शर्मा, बनारस सिटी पृ० २२ सवहितषी क०)।

नेपाली में भी गोपाल पाण्डेय के सुनीति विरह और माधवप्रसाद घिमिरे की ध्रुव को क्या को छोड़कर सभी रचनाओं का नाम ध्रुव चरित्र या चरित है। सुनीति विरह में मा के हृदय की वात्सल्य भावनाओं पर अधिक बल दिया गया है। ध्रुव को क्या में शिशुओं में आत्म विश्वास तथा भक्ति भावना के सचार करने का प्रयत्न पाया जाता है। ध्रुव चरित्रों में ध्रुव के चरित्र की शक्ति तथा निष्ठा से भरी झाकी दिखाई गई है।

उपयुक्त विवेचन से यह निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि ध्रुवोपाख्यान चरित्र काव्य हैं किन्तु इससे यह नहीं मानना होगा कि उनके रचनाकारों का उद्देश्य भगवद्भक्ति नहीं है। उक्त सभी रचनाए भक्ति सम्बन्धी हैं। हा वर्णन कुछ इस तरह किया गया है कि उनमें भगवान की महिमा सीधी नहीं, भक्त के माध्यम से व्यजित हुई है।

हिन्दी नेपाली शिव-शक्ति-विषयक रचनाएँ

शिव शक्ति सम्बन्धी रचनाएँ न तो हिन्दी में विशेष मिलती है और न नेपाली में ही केवल शिव के विषय में तो और भी कम लिखा गया है। हिन्दी में शिव पार्वती के विवाह को दिखाने वाली चार रचनाएँ मिलती है। (१) तुलसीदास का पार्वती मगल (२) लखपति का शिव विवाह' (३) दयाराम का शिव विवाह (४) मधुनाल का 'पार्वती स्वयवर। नेपाली में शक्ति सहित शिव सम्बन्धी भक्ति-ग्रन्थों की बडी कमी है। रणदिल सिलवाल मन्त्री कृत शिव पार्वती सवाई तथा पूर्णप्रसाद लतिवडा कृत सतीचरित्र ही इस विभाग की दो रचनाए उपलब्ध हैं। केवल शिव भक्ति विषयक हिन्दी रचनाए स्तोत्रों तक सीमित हैं। गिरधरदास के शिवस्तोत्र नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह के (शिवा) शिवशतक रूप नारायण के शिव शतक के अतिरिक्त अन्य बहुत से भक्तों द्वारा रचित मौलिक और अनूदित शिव स्तोत्र-साहित्य हिन्दी में विद्यमान है। विद्यापति के पद शिव भक्ति काव्य के अलकार हैं। नेपाली में रेवतीरमण न्यौपाने की पशुपति लीला तथा द्विजराज अर्याल के पशुपति वर्णन को छोडकर शेष शिव भक्ति साहित्य स्तोत्रपरक है जिसमें अन्तर्गत मौलिक तथा अनूदित दोनों तरह की रचनाए देखी जाती है। केवल शक्ति की भक्ति वाली रचनाएँ दोनों भाषाओं में विद्यमान हैं। उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

हिन्दी— रचना का नाम	लेखक
दुर्गासिन्धुरानी	अमर सनाथ
दुर्गाभक्ति चन्द्रिका	कुलपति मिश्र
माया सतन्नी	नवलसिंह

हिंदी—रचना का नाम	लेखक
चरण चन्द्रिका	रामचन्द्र
चण्डीचरित्र	गुरु गोविन्दसिंह
चण्डीचरित्र उक्ति विलास	गुरु गोविन्दसिंह
सौन्दय लहरी	मनियार सिंह
भगवती शतक	रूपनारायण पाण्डेय
शिवा (शिव) शतक	नमदेश्वरप्रसाद सिंह (मिश्रबन्धु विनोद म जीवन लाल नागर की भी एक रचना 'दुर्गा चरित्र' का उल्लेख है।[1] अन्य छोटे-छोटे स्तोत्र भी इस विषय के पाये जाते हैं।)
नेपाली—सत्य दुर्गाकथा (दुर्गासप्तशती)	गोपीनाथ लोहनी
दुर्गा कवच	शिखरनाथ सुवेदी
चण्डी सप्तसती	श्री कृष्णप्रसाद धिमिर
दुर्गाभक्ति तरंगिणी	केशर शमशेर थापा
दुर्गा भक्ति तरंगिणी	वीरेन्द्र केशरी अर्ज्याल
दुर्गा सप्तशती	प० चन्द्रधर।

श्री निर्वाणानन्द (श्री ५ रण बहादुरशाह) प्रतापसिंह मल्ल जयजोगेन्द्र मल्ल आदि द्वारा रचित कुछ देवी भक्ति गीत भी नेपाली मे सुनाई देते हैं। रत्न शर्मा रिजाल और श्री नारायण शास्त्री ने क्रमश ज्वालादेवी और कालिका की स्तुति रचना की। इन रचनाओ के अतिरिक्त देवीभागवत का अनुवाद हिन्दी की ही तरह नेपाली म भी हुआ।

दयाराम के शिव विवाह को—जिसम कथा विधान सवथा कल्पना प्रसूत देखा जाता है—छोडकर शिव शक्ति सम्बन्धी हिन्दी रचनाओ का स्रोत रामचरितमानस शिव पुराण और कालिदासका कुमार-सम्भव है। इस विभाग की पूर्वोक्त नेपाली रचनाओ के स्रोत भी ये ही ग्रन्थ हैं फिर भी पूणप्रसाद खतिवडा के सतीचरित्र और एतद्विषयक हिन्दी रचनाओ की कथावस्तु म पर्याप्त अन्तर है। उदाहरणाथ तुलसीदास के पावती-मगल मे पावती के शिव विषयक प्रेम की परीक्षा करने के लिए कालिदास के कुमार सम्भव' के समान ही स्वय शिव को ब्रह्मचारी भेष म उपस्थित किया गया है जो शिव की निन्दा करता है। इससे पावती को क्रोध आता है। शिव सच्चे प्यार का परिचय पाकर छद्म भेष त्यागकर दशन देते हैं

१ मिश्रबन्धु विनोद १०२४ (गगा पुस्तक कार्यालय, लखनऊ, द्वि० स०)

और पीछे पार्वती का पाणिग्रहण करते हैं। पूर्णप्रसाद ब्रतिबडा के सती चरित्र मे पार्वती के शिव विषयक एकनिष्ठ प्रेम की परीक्षा मे नारद बीच मे पडते हैं। वे लगन शोधकर पार्वती परिणय के लिए विष्णु की बारात सजाते हैं। जब सखियो के मुह से पार्वती को पता चलता है कि उसे ब्याहने के लिए विष्णु चले आ रहे है तो वह शम्भु को पतिभाव से भजने की बात करती है अतएव विष्णु को दिए जाने पर मरने को तयार हो उठती है

हे साथीहरू हो म शम्भु प्रभु मा पाऊँपती भद छु।
विष्णूलाइ दिया भ‍या अब यहाँ हत्त गरी मद छु।।[1]

इस पर सखियाँ उसे छिपा लेती हैं, मरने नही देती। विष्णु की बरात बहस्पति के कथनानुसार वापस चली जाती है। पार्वती के पिता हिमाचल को इससे बडा खेद होता है। सती-चरित्र' म सती के अपने पिता दक्षप्रजापति के यज्ञ म भस्म होने तथा दूसरा जन्म हिमाचल के घर पार्वती के रूप म धारण करने की कहानी भी वर्णित है।

कथावस्तु की उक्त भिन्नता होने पर भी हिंदी रचना पार्वती मगल' तथा नेपाली रचना सतीचरित्र' का उद्देश्य एक ही है। जिस तरह पार्वती मगल म पार्वती की शिव निष्ठा तथा उसके पातिव्रत का परिचय दिया गया है उसी तरह सतीचरित्र मे भी। अपनी रचना द्वारा समान रूप से पाठको के हृदय मे शिव पार्वती की भक्ति का सचार करना दोनो कवियो का लक्ष्य रहा है।

शिव मात्र को आराध्य मानकर निर्मित रचनाओ का आधार शिवपुराण है। नेपाली रचना पशुपतिलीला तथा पशुपतिवर्णन की कतिपय बातें गोपाल वशावली से भी मिलती है। शिवस्तोत्र प्राय सस्कृत स्तोत्रो के अनुवाद हैं। नेपाली कवि श्रीकृष्ण प्रसाद ऐसी की हरस्तुति (हरिहर स्तुति नामक पुस्तिका म सग हीत) सस्कृत के शिवापराध-क्षमापन स्तोत्र का अनुवाद है। हिंदी कवि मनियार सिह का 'महिम्न स्तोत्र' पुष्पदन्तकृत सस्कृत स्तोत्र का अनुवाद है। इसी तरह नेपाली की 'चन्द्रचूड-वन्दना' तथा हिन्दी के अन्य शिवस्तोत्रो के विषय म देखा जाता है जो कही भावानुवाद तो कही शब्दानुवाद हैं। शिव भक्ति-काव्य म मथिल कोकिल विद्यापति का स्थान सर्वोपरि है। उन्होने शिव को नर-नारी तथा नारायण शूलपाणि[2] के रूप म चित्रित किया और इस तरह भक्ति के क्षेत्र म शवो शाक्तों और वष्णवो के बीच आराध्याभिन्नता स्थापित कर एकता स्थापित करने का जो प्रयत्न किया है वह तुलसीदास को छोडकर अन्य किसी हिन्दी या नेपाली कवि ने नहीं किया।

---

१ सतीचरित्र पूर्णप्रसाद ब्रतिबडा (सुहगल, पृ० १८६ मे उद्धृत)।
२ विद्यापति पदावली स० रामवृक्ष बेनीपुरी पृ० ३०१, पद सं० १३१ ३२।

केवल देवी की भक्तिभावना से रचित कृतियों में मार्कण्डेय पुराण का प्रभाव विशेष रूप से देखा जाता है। हिन्दी में अमर अनन्य की दुर्गासप्तशती, कुलपति मिश्र की दुर्गाभक्ति चन्द्रिका, नवलसिंह की भाषा-सप्तशती, रामचन्द्र की चरणचन्द्रिका, गुरु गोविन्दसिंह के चण्डीचरित तथा चण्डी चरित्र-उक्ति विलास में सर्वाङ्गमना मार्कण्डेय पुराण के देवीचरित्र को अपनाया गया है। रामचन्द्र की चरण चन्द्रिका में देवी की जो महिमा वर्णित है, वह देवी सम्बन्धी विभिन्न संस्कृत रचनाओं में स्वीकृत स्वरूप का कवि के अपने शब्दों तथा शैली में किया गया वर्णन है। मनियारसिंह की सौन्दर्यलहरी में देवी भागवत तथा अन्य शाक्त ग्रन्थानुमोदित देवी रूप चित्रण मिलता है।

नेपाली में गोपीनाथ लोहनी की दुर्गाक्रिया, श्रीकृष्ण घिमिरे की चण्डी सप्तशती, पं० चक्रधर की दुर्गासप्तशती मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती के अनुवाद मात्र हैं। श्री केदार शमशेर थापा की दुर्गाभक्ति-तरंगिणी में हिन्दू तन्त्रों में निर्दिष्ट शक्ति का बखान किया गया है। वीरेन्द्र केशरी अर्ज्याल की दुर्गाभक्ति तरंगिणी में भी यही बात पाई जाती है। यथार्थतः वह केदार शमशेर थापा की दुर्गाभक्ति-तरंगिणी का ही परिष्कृत रूप है। रत्नगमा रिजाल ने शंकराचार्य के देव्यपराध क्षमापन स्तोत्र के ढंग पर ज्वाला देवी की स्तुति रची है। शिखरनाथ सुवेदी के दुर्गाकवच का आधार संस्कृत का दुर्गाकवच है। कालिका स्तुति में श्रीनारायण-शास्त्री ने देवी के पुराणप्रथित चरित्र की ही महिमा गाई है किन्तु प्रधान उद्देश्य राष्ट्रजागरण होने से यह स्तुति सर्वथा मौलिक बन गई है। हिन्दी कवि हरिकृष्ण प्रेमी की कविता 'काली' से इसका अद्भुत साम्य है।

उक्त विश्लेषणानुसार यह स्पष्ट है कि देवी सम्बन्धित रचनाएँ हिन्दी नेपाली दोनों काव्यों में अधिकांशतः संस्कृत ग्रन्थों के रूपान्तर हैं, फिर भी मौलिक ही नहीं रूपान्तरित रचनाओं में भी हिन्दी और नेपाली भक्तिकाव्यों के बीच एक बड़ा अन्तर यह देखा जाता है कि हिन्दी रचनाओं में शौर्य के साथ सौन्दर्य-दृष्टि विद्यमान है जबकि नेपाली रचनाओं में शौर्यमात्र देखा जाता है। 'चरण-चन्द्रिका' में पार्वती के चरणों का वर्णन बड़े अनूठे ढंग से किया गया है। उपास्या के अंगों की विभूति प्रकट करने में कवि की दृष्टि एक ओर परमैश्वर्य पर तो दूसरी ओर परम माधुर्य पर लगी रही। निम्नलिखित पद में कवि की सौन्दर्य सृष्टि दर्शनीय है

नुपुर बजत मानि मग से अधीन होत
मौन होत आनि चरनामृत भरनि को।
खंजन से नचे देखि सुखमा सरद की सी,
सचु मधुकर से पराग के सरनि को।
रीझि रीझि तेरो पद छवि पै तिलोचन के,
लोचन ये अब धारें केतिक धरनि को

फूलत कुमुद से मयक से निरखि नैन
पकज से खिलत लखि तरखा तरनि को ।[1]

मनियारसिंह की सौन्दर्य लहरी में सम्पूर्ण दृष्टि और भी तीव्र हो उठी है। और तो और वीर रस को अधिपति महत्त्व देने वाले गुरु गोविन्दसिंह तक इस प्रवृत्ति का परिचय देने में नहीं चूकते। देवी की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं

मीन मुरझाने कज लजा खिसाने अलि,
फिरत दिवाने बन डोले जित तितही।
कीर औ कपोत बिम्ब कोकिला कलापी बन,
लूटे फूटे फिरे मन चैन हू न कितही।
दारम दरक गयो पेख दसननि पाति,
रूप की ही क्राति जग फैल रही सित ही।
ऐसी गुन सागर उजागर सुनागर है
लीनो मन मेरो हरि नैन कोर चित ही।[2]

दुर्गा सप्तशती के भाषानुवादक कुलपति मिश्र अनुवाद की सीमा को लाँघकर लक्ष्मी स्वरूपिणी देवी के रूपवर्णन में रम उठते हैं जब कि अन्य स्थलों पर हम उन्हें भाग दौड मचाते हुए पाते हैं। इससे उनके सौन्दर्य दर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। सस्कृत-दुर्गासप्तशती के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में जो देवी का ध्यान है[3] उससे सर्वथा भिन्न रूप माधुर्य सम्पन्न लक्ष्मी ध्यान का कवि सुझाव देता है। मनोरम वातावरण के बीच महालक्ष्मी रूप इस तरह चित्रित किया गया है

धनु मन भौंहे सर हैं कटाक्ष वर मोति मन छवि के गवाक्ष।
तिल कुसुम नाक शोभा अतुल तसु स्वास वास पूजे न फूल।
शशिभाल शालि मजरी हाथ विवि कमल कुन्त शुभकरनि साथ।
वग तीन नलिन फूले सुदेश, उर पीन उरज उन्नत सुदेश।

---

१ चरणचन्द्रिका रामचन्द्र, प्रथम कवित्त पृ० १, भारत जीवन प्रेस, काशी (१८६० ई०, प्र० स०)।

२ चण्डीचरित्र उक्तिविलास, श्रीदशम गुरु ग्रन्थ छन्द ८६, श्रीगुरु गोविन्द सिंह।

३ काला भ्रमा कटाक्ष रविकुलभयदां मौलिबद्ध दुरेखा।
शख चक्र कृपाण त्रिशिखमपि करे सदहन्तीं त्रिनेत्राम।
सिंह-स्कन्धाधिरूढा त्रिभुवनमखिल तेजसा पूरयन्तीं।
ध्यायेददुर्गा जयाख्या त्रिदशपरिवृता सेविता सिद्धकाम।

पद कमल मधुप नूपुर सुबोल बहु अग लख भूषण अमोल।
मृग नाभि तिलक अरगजा अग उज्ज्वल दुकूल छवि है अभग।
दुति तेज अवधि लक्ष्मी अनूप तिहुँ लोक धाम नहिं येह रूप।[1]

हिन्दी नेपाली दोनो देवी भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में शौर्य पर बल दिया गया है हिन्दी के मौलिक किंवा अशत मौलिक रचनाओं में तो भक्ति शक्ति की अनुगामिनी बन जाती है। सस्कृत दुर्गासप्तशती में धूम्रलोचन तो देवी हुंकार से ही समाप्त हो जाता है और दैत्यसेना का क्षय देवी वाहन सिंह कर देता है।[2] देवी के शौर्य का सम्मान एवं स्पष्ट रूप देखने को नहीं मिलता है किन्तु कुलपति मिश्र कालिका की युद्धवीरता को चित्रित किए बिना नहीं रहता है।[3] उसकी दुर्गाभक्ति चन्द्रिका में चण्ड मुण्ड तथा शुम्भ निशुम्भ के साथ देवी का घमासान युद्ध दिखाया गया है। गुरु गोविंद सिंह अपने चण्डीचरित्र उक्तिविलास और चण्डी चरित्र में देवी के युद्ध शौर्य का दिखाने में सर्वत्र रमते हुए दिखाई देते हैं। मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती के नवम अध्यायान्त में निशुम्भ मारा जाता है। दशम अध्याय में शुम्भ और देवी के बीच युद्ध होता है और अन्त में वह भी मारा जाता है। सारा युद्ध इतिवृत्तात्मक ढंग से वर्णित हुआ है जब गुरु गोविन्द सिंह उसका सुस्पष्ट चित्र खींचने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ दो पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं

(क) केते मार डारे और केतक चबाइ डारे,
केतक बजाइ डारे काली कोप तब ही।
बाज गज मारे तेतो नखन सो फार डारे
ऐसो रन भयो न भयो आगे कब ही।
भागे बहु बीर काहू सुध न रही सरीर,
हाल चाल परी मरे आपस मे दब ही।
देख सुरराइ मन हरख बढ़ाइ सुर,
पुजन बुलाइ करें जै जैकार सब ही।[4]

(ख) क्रोध मान भयो कह्यो राजा सम दैतन को,
ऐसो जुध कीनो कालि डारियो मारि कै।

---

१ दुर्गाभक्ति चन्द्रिका कुलपति मिश्र (ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई) चतुर्थ मयूख, पृ० स० २२ २५।

२ दुर्गासप्तशती छठे अध्याय के श्लोक स० १३, १५, १६ द्रष्टव्य।

३ द्रष्टव्य—दुर्गाभक्ति चन्द्रिका कुलपति मिश्र, षष्ठ मयूख पृ० स० ५ से ८ तक।

४ चण्डीचरित्र उक्तिविलास, *अध्याय सप्तम पृ०, २०६।*

बल को सभार कर लीनी करवार ढार,
पठो रन मधि मारि भारि छउ उचारि क।
सत्य भए सुभ के सुमहावीर धीर योधे,
लीने हथियार आप अपने सभार क।
ऐसे चले दानो रवि मडल छपानो मानो,
सलभ उडाको पुज पवन सुहार क ॥[1]

उक्त दो पद ही नही सारा अध्याय चण्डी के युद्ध-पराक्रम के वर्णन से भरा पडा है। अगी रस वीर तथा अग रस वीभत्स है जिसकी झाँकी दिखाने के लिए नीचे एक पद उदधत किया जाता है

सुभ चमू सग चडिका कुद्ध क जुद्ध अनेकन बार मच्यो है,
जबुक जुग्गन ग्रिध्र मजूर इकत्र को बीच मे ईस नच्यो है।
लुत्थ प लुत्थ सुनीत भई सित गूद अउ मेद तो ताहि गच्यो है,
भउन रगनि बसाई मनो करि भावि सचित्र वचित्र रच्यो है।[2]

गुरु गोविन्द सिंह बल पराक्रम प्राप्त करने के उद्देश्य से ही युद्ध देवी भगवती की उपासना करते हैं अतएव उन्होने उसके शौर्य सम्पन्न रूप को दिखाने में सर्वाधिक प्रयत्न किया। युद्ध म शत्रुओ के ऊपर विजय पाना या रण मे जूझ मरना यही वरदान वे ग्र था त मे देवी स चाहते है

देहि शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन तो कबहू न टरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं निसच करि आपनि जीत करौं।
अरु सिक्ख हौं आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तौ उचरौं
जब आयु की औध निदान बनें अतही रन मे तब जूझ मरौं।[3]

यथाथत सन्त शाखा स सम्ब ध रखन वाले गुरु गोविन्द सिंह ने रक्तपायिनी देवी की चर्चा के बहाने प्रकारान्तर से शक्ति या बल की उपासना की है इसलिए उनके चण्डीचरित्र उक्ति विलास तथा चण्डीचरित्र मे भक्त का एकान्तिक आत्म समर्पण नही—सामाजिक उपयोगिता प्रधान हो चली है डा० धर्मपाल अष्टा का यह विचार बिलकुल ठीक है कि गुरु गोविन्द सिंह सास छोडते हुए राष्ट्र को प्राचीन क्षात्र चेतना उदबुद्ध कर सप्राण बनाना चाहते थे इसीलिय उन्होने शक्ति को अपनी आराध्या बनाया।[4]

नेपाली म बल-पराक्रम की उपासना तथा उससे राष्ट्र की शक्ति जागरण

---

१ चण्डीचरित्र उक्तिविलास, अध्याय सप्तम, पृ० २१०।
२ वही पृ० २१६।
३ वही पृ० १३१।
४ The poetry of Dasam Granth p 53

को उद्देश्य बनाकर दुर्गाभक्ति करने वाले नारायण शास्त्री की 'कालिका स्तुति' आधुनिक काल के उन हिन्दी कवियों की रचनाओं से साम्य रखती है जो मूलत दवी भक्त नही—दश भक्त हैं। यह तथ्य आधुनिक युग की राष्ट्रीय भावना की तीव्रता को प्रकट करता है कि कवि इस समय की भक्ति रचनाएँ वैयक्तिक कल्याण कामना को लकर रचते नही दिखाई दते, किन्तु व दुर्गा, राम, कृष्ण भवानी आदि की स्तुति म समाज और दश की हितपिता प्रकट करते हैं। हिन्दी कवि बालमुकुन्द गुप्त लक्ष्मी की स्तुति करते हुए लिखते हैं

अब मात दया कर देहु वर लगी रहें तुम्हरे चरन
हिय सों न बिसारहि हम कबहुँ आपनो साँचो हिन्दुपन।[1]

हरिकृष्ण प्रेमी काली को उकसाते हुए कहते हैं

हो उन्मत्त पानकर आसव मूल देवि करुणा औ प्यार,
जाग उठे प्राणों म सहसा अब प्रतिशोध और प्रतिकार।
राजमुकुट भूलुंठित होवें सिंहासन हों चकनाचूर,
एक बार फिर दिखला जग को अपना बल विक्रम भरपूर,
रंग दे और छोर नभ भू के रिपुदल के लोहू की लाली।[2]

इसी तरह नेपाली कवि नारायण शास्त्री नेनमानी वस्तुत देशद्रोहियों को मिटाने की कामना करते हैं

यत्ता दुष्ट कदापि बढन न सकुन तिम्रा अगाडिकुन
नेता जी बनि देशनाश गरने कौही न पाउन छुन
तिम्रो खडग घुमाइ भस्म न गर बरी सब झुम्मने
देख्छौं हामि अवश्य हुन गतिलो नेपाल यो उठने।[3]

हरिकृष्ण प्रेमी की काली स्तुति म केवल विद्रोही स्वर है। समझौते तथा आत्म बलिदान की भावना को उन्होंने छुआ तक नही। व तो चाहते हैं

वज्रपात-सी, आँधी-सी विकराल बवडर-सी बेपीर,
आकर खण्ड खण्ड कर दे तू दुष्टों के दृढ़तम प्राचीर।
पदाघात से भूकम्पों को बुला हिलें भूगोल खगोल,
बन अभिशाप प्रलय वसुधा पर एक बार फिर करो किलोल !
कहाँ सूय को विस्मित करने वाली आखों की लाली !
उच्छृंखल, विध्वस भयकर अनियम, दावानल काली !।[4]

---

१ लक्ष्मीस्तोत्र बालमुकुन्द गुप्त (१८६७ स०) पृ० ५४।
२ काली हरिकृष्ण प्रेमी (पूर्णिमा पृ० ६४ से उदधृत)।
३ कालिका स्तुति नारायण शास्त्री, पद स० १२।
४ काली हरिकृष्ण प्रेमी (द्र०—पूर्णिमा, पृ० ६५)।

नारायण शास्त्री दुए। वे ही दुश्मन शरीर गिराने की बात नहीं करते, वरन् देश भक्तों को भी हुतात्मा होने की प्रेरणा देते हैं और विप्लव के बाद नवीन नव निर्माण की कामना करते हैं

> श्रामा! वीर शहीद को रगत ले निम्रो साथ स्नान होस
> हाम्रो कल्पलता समान मन ले श्रापत्ति को नाश होस।
> जाली भेलि न हुनु समाज गतिलो नेपालमा स्थायि होस,
> हाम्रो भजन ले प्रसस्त धनले ससार न पालियोस।[1]

वे कालिका चरित्र को देश की नारियों का आदर्श बनाना चाहते हैं

> तिम्रो शुम्भ निशुम्भ मा जति गन्यो सामर्थ्य को गजन
> पान्यो ध्वस्त मडारि मारि तिमिले पापिष्ट को क्रन्दन
> त्यस्त होल दिएर नारिहरूले अन्याय पर्याक (को) दिउन
> तिम्रो अदभुत साहसी गुणमय नारीहरूले सिकुन।[2]

स्पष्ट है कि नारायण शास्त्री ने नर नारी जागरण द्वारा राष्ट्रोद्बोधन करने के लिए ही कालिका स्तुति रची। इसम देवी भक्ति साध्य नही साधन बन गई है। नेपाली भक्ति काव्य म अपवाद स्वरूप होते हुए भी यह प्रवृति सवथा युगानुरूप है। इसम विशुद्ध भक्तिभावना को खोजने का प्रयत्न करना निरथक है।

रत्नशर्मा रिजाल देवी सम्बन्धी पौराणिक भावना को लेकर ज्वाला देवी की स्तुति करते हैं। उन्होने देवमण्डल मे देवी का स्थान उसी तरह सर्वोत्तम निर्धारित किया है जिस तरह वहमार्कण्डेय पुराण म मिलता है। देवी के तप्त होने पर समस्त सुर तथा पितर तप्त हो जाते हैं।[3] अवश्य ही कवि न अपनी सूझ बूझ से इसे मौलिक रूप देने का सफल प्रयास किया है। उसकी यह स्तुति न तो तात्रिकों की पारिभाषिकता से ग्रस्त है और न आधुनिक हिन्दी कवियो की तरह देशकाल से अभिभूत ही। वह भक्त हृदय की अपनी आराध्या के प्रति एक प्रगल्भ एव पाण्डित्यपूर्ण श्रद्धाजलि है और इसम कवि अप्रत्यक्ष रूप स अपने लिए भुक्ति और मुक्ति

---

१ कालिका स्तुति नारायण शास्त्री पृ० स० १६।

२ वही पृ० १६।

३ (क) *यस्या समस्त सुरता समुदीरणम तृप्ति प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि। स्वाहासि व पितगणस्य च तप्ति हेतु रुच्चायसे त्वमतएव जन स्वधा च॥*
—दुर्गासप्तशती च० अ० श्लोक स० ८।

(ख) हजूरे होताको मुख हजुरमा आहुति दिदा।
खुसी हुन्छन सारा स-सुर मरपित्रादिक सदा॥
—रत्नशर्मा रिजाल,—हिमवत्खण्ड परिशिष्ट से उद्धृत।

दोनो सुरक्षित कर लेना चाहता है

शिरो नाभी पाद स्थल भनि यहा जो तिम कुरा,
रहेका छन मुर्त्ती श्रय हजुरका जाँदछु पुरा।
सदा गर्छिन् सेवा जननि! जसले तो सकल को,
स्वय मुक्तो मुक्ती सहज करमा नाच्छ तिनको।[१]

नेपाली दुर्गाभक्ति काय मे तान्त्रिक प्रभाव की अतिशयता को वहन करने वाली भी एक रचना है जबकि हिन्दी म ऐसी रचना नही मिलती है। जिनम तान्त्रिकता है एसी हिन्दी रचनाएँ कायत्व स ही दूर नहीं है, उनम भक्ति का स्वरूप भी दुलभ है। नेपाली रचना दुगाभक्ति तरगिणी म तान्त्रिकता के साथ साथ भक्तिभावना भी विद्यमान है। कायत्व इसम भी कदाचित ही मिल पायेगा। इसम देवी का महत्व सर्वोपरि है। कवि शारदातिलक' के अनुसार[२] इस सार ससार का मूल कारण अम्बा को मानता है। वही अपनी त्रिगुणात्मिका शक्ति से ससार की उत्पत्ति, पालन तथा सहार करती है अम्बा के विन्दुरूप शिव और नादरूप शक्ति के समागम से विष्णु की उत्पत्ति होती है और तब उनके नाभिकमल म ब्रह्मा पदा होत हैं

अम्बा का अनि बिन्दुरूप शिव हुन नादरूप शक्ती भया।
नाद बि दू दुइको समागम हुदा श्री विष्णु यो नाम भयो।
निस्क्यो जल जब घेर तेहि जलमा श्रीविष्णु सुत्ता भया।
नाभी बाट कमल उठयो र तहि फेर ब्रह्माजि पदा भया।[३]

इस रचना म हठयोगियो की चक्र-स्थितियो को दिखाने का प्रयत्न किया गया है और शवागम दशन के आनन्दवाद का भी समथन है

अभ्यास ले गरि फेरि फेरि उहि रुप धारण जहाँ गद छन
शिर्मा जो छ सहस्रदल कमल त्यो गोचर अनी गदछन
तेसू बेला जब फेर सदा शिवजि का साथ मा रही शक्ति को
रुप छोडी अनि गनु हुछ अनुभव सत रूप आनन्द को।[४]

देवी भक्ति सम्बन्धी गीत और स्तुतिया हिन्दी और नपाली दोनो म समय समय पर बनते गय जिनम से कुछ आज भी कहे-सुने जाते हैं। नपाल के मल्ल राजाओ म स वहुतो के नाम पर दवी भक्ति सम्बन्धी दो एक पद आज भी मिल ही जाते हैं। इनका सग्रह रायल नपाल एकडेमी द्वारा किया जा रहा है।

१ रत्नशर्मा रिजाल—हिमवत्खड परिशिष्ट से उदघृत।
२ शारदातिलकम् लक्ष्मणदेशिकेन्द्र, टीका—राघव भट्ट, प्रथम पटल श्लोक ६ १६।
३ दुर्गाभक्ति तरगिणी केदार शमशेर थापा (बुइगल, पृ० १२५ से उदघृत)।
४ दुर्गाभक्ति तरगिणी केदार शमशेर थापा (बुइगल, पृ० १२६ से उदघृत)।

मिश्रित धारा के अन्तर्गत उक्त रचनाओं के अतिरिक्त अन्य भक्तिमय उपाख्यान भी हिन्दी नेपाली दोनों भाषाओं में पाए जाते हैं। गजेन्द्र मोक्ष, अज मिलो पाख्यानादि भक्तिपूर्ण वृत्तान्तों के अतिरिक्त गंगा, सरयू आदि नदियों की स्तुतियाँ दोनों भाषाओं में मिलती हैं। उन में कृष्णप्रसाद घिमिरे का 'अजामिल' मोतीराम भट्ट का गजेन्द्र मोक्ष', शिखरनाथ सुवेदी का 'गंगा माहात्म्य को सवाई' नेपाली में महत् रघुनाथ दास की सरयूलहरी जगन्नाथ दास के गंगावतरण पद्माकर की गंगालहरी' महाराज रघुराज सिंह के 'गंगाशतक' के अतिरिक्त गिरधरदास के विभिन्न कथामृत हिन्दी में प्रमुख हैं। हरि या ईश्वर से सम्बद्ध सामान्य भक्तिभावनापूर्ण रचनाएँ भी दोनों भाषाओं में मिलती हैं। नेपाली में भानुभक्त की भक्तमाला', भक्तिकुमारी राणा की भक्तिलहरी हरिहर की भगवदभक्ति विलासिनी कृष्णप्रसाद रेग्मी की भक्तिमाला, कृष्ण बहादुर की भक्ति को सवाई और हिन्दी में विश्वरूप स्वामी की 'हरिहर निर्गुण सगुण पदा वली चन्द्रशेखर का 'हरिभक्ति विलास ध्रुवदास का 'भजन सत' ग्वाल कवि का भक्तिभावन महाराज रघुराज सिंह का भक्ति विलास नागरीदास का भक्तिसार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के भक्ति सर्वस्व प्रेम मालिका विनय प्रेम पचासा तथा प्रेमाश्रु वर्षण इस दिशा में उल्लेखनीय है।

नेपाली में हनुमदभक्ति सम्बन्धी रचनाओं का सर्वथा अभाव है जबकि हिन्दी में इस विषय की बहुत सी रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें तुलसीदास के हनुमान बाहुक खुमान के हनुमान नखशिख हनुमान पचीसी भगवन्त खीची की हनुमत पचीसी सरदार के हनुमत भूषण छत्रसाल के हनुमत विनय, गणेश की हनुमत पचीसी मनियारसिंह की हनुमत छबीसी, हृदयराम के हनुमान बाहुक रायमल्ल पाण्डेय के हनुमच्चरित्र का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। नेपाली में नाथ-भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ अतिरिक्त हैं। पतंजलि गजुरेल की मत्स्येन्द्रनाथ की कथा, चक्रपाणि चालिसे की मत्स्येन्द्रनाथ की कथा नारायण शास्त्री की गोर्खा गोरख नाथ स्तुति के रूप में इसका अस्तित्व देखा जाता है। हिन्दी साहित्य में मत्स्येन्द्र नाथ तथा गोरखनाथ देवत मण्डल में स्थान नहीं पा सके, किन्तु नेपाली में उन्हें पूर्ण देवत्व प्राप्त है। मत्स्येन्द्रनाथ को शिव अवलोकितेश्वर सूर्यादि देवता के रूप में पूजा जाता रहा।[1] गोरखनाथ को भी शिव का अवतार समझा जाता

१ मत्स्येन्द्रनाथ कन पनी हुन बुद्ध भन्छन।
जो जान्ने शवहरू सूर्य भनेर भन्छन।
लोकपालना कन भया जब लोक नाथ।
जनहेरु नाम मिलदा गरे बुद्ध साथ।
—मत्स्येन्द्रनाथ की कथा पतंजलि गजुर्याल पृ० सं० २।
(पुराना कवि र कविता से उद्धृत)।

है।[१] उनकी स्तुति ग्रन्थारम्भ मे सम्भवत उसकी निर्विघ्न समाप्त्यर्थ की जाती है।[२] निर्वाणानन्द की गोरखनाथ की स्तुति में उनका देवत्व विद्यमान है। नेपाली महीप गोरखनाथ नाम अपने पत्र पृष्ठो म शीर्षांकित करते रहे।[3] व्यापारी अपनी गद्दी के ऊपर नाम अंकित करवाते रहे। भाडने फूकने वालो के व्यन्तर गोरखनाथ की दुहाई के बिना अपने शिकार नही छोडते। फलत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि नेपाली जन जीवन म गोरखनाथ शिवावतार के रूप मे विद्यमान हैं, जबकि हिन्दी क्षेत्र मे वे एक सिद्ध नाथ योगी के रूप म ही प्रसिद्ध रहे हैं। सम्भवत इसीलिए हिन्दी म उनकी भक्ति म रचनाएँ नही बनी।

मिश्रित धारा के नेपाली हिन्दी रचनाओ के कलापक्ष की तुलना

भक्तिकाव्य की मिश्रित धारा उन भक्त कवियो की सृष्टि है जिनके आराध्य भिन्न भिन्न हैं। इनकी कला म प्रथम वर्णित रामकृष्णोपासक भक्त कवियो की सम्प्रदायसीमित बातो को छोडकर शेष सभी विशेषताओ का सम्यक् योग है। इन भक्तो का आराध्य न केवल रहस्यवादी सन्तो का प्रियतम न केवल कृष्णोपासको का सखा और न केवल रामोपासको का प्रभु है, प्रत्युत पिता माता स्वामी, सखा—सब कुछ है। स्त्री देवता क उपासको म उपास्या के प्रति पाई जाने वाली जननी भावना भी सर्वथा नवीन नही है। रामसाहित्य म सीता विषयक मातृभावना विद्यमान है। अवश्य ही देवी गगा तथा सरयू की स्तुति करने वाले मिश्रित धारा के कवियो ने इस प्रतीक का पौन पुनिक प्रयोग किया है। नेपाली और हिन्दी दोनो भाषाओ म इसका उन्मुक्त प्रयोग हुआ है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

नेपाली—म जस्ता कोटीयौ जनजननि! जन्मे अरु कतो।[४]
सदागछन सेवा जननि! जसले तो सकल को।[५]

---

१ (क) बाबा गोरखनाथ सेवक सुख दाये भजहुँ तो मन लाये।
बाबा चेला चतुर मछिन्दरनाथ को अधबुध रूप बनाये।
शिव के अंग शिवासन काये सिद्धि माहा यनि आये॥
—जो० स० प० र सा० के परिशिष्ट ३ का भजन।

(ख) नवनाथ कथा मौक्तिकनाथ श्लोक ४ ६।

२ द्रष्टव्य—कुल चन्द्रिका (अर्ज्याल वंशावली) दवनकेसरी, योगप्रचारिणी गोरक्ष टिल्ला, काशी।

३ द्रष्टव्य—जो० स० प० र सा०, परिशिष्ट ४ पृथ्वीनारायण का पत्र, स० १।

४ ज्वालादेवी-स्तुति रत्नगर्भा रिजाल (हिमवत्खण्ड-परिशिष्ट से उद्धृत)।

५ वही।

आमा ! भट्ट उठाइ आज तिमिले हामी सुते का सब ।[1]
देवी दुर्गा जननी जगत का हितकारिणी ।[2]
भए माता गगा गरन मन चङगा अथम का ।[3]
यै नित्य यो छ रट नाम इसे सुना आ
माता दया अब त भवत उपरहोस्ह्याँ ।[4]

हिन्दी— जगजननि ! तुव गुण भेव नहिं लहै तीनों देव ।[5]
वदति जननि जगदीश जुवति विनिति सिरजहि ।[6]
अब मात दया कर देहु बर लगी रहै तुम्हारे चरन ।
हिय सौं न बिसारहिं हम कबहूँ अपनौ साँचो हिंदुपन ।[7]
जय जगजननि अनत छोहि सतति पर छावनि ।
मृतकहुँ ले निज गोद मोद सुख द दुलरावति ॥[8]
मधि कटभ नाम धर तिनके अति दीरघ देह भए जिनके,
तिन देख लुकेस डर्यो हिय म जग मात को ध्यान धर्यो जिय म ।[9]
जगमात प्रताप हने सुरताप सुदानव सेन गई जमक ।[10]

यद्यपि मिश्रित धारा के नेपाली और हिन्दी दोनो भाषाओ की रचनाओ मे अपने अपने इतर भक्ति काव्यो की तुलना म अधिक इतिवृत्तात्मकता है— नेपाली मौलिक कृतियो मे तो मोतीराम भट्ट की प्रह्लाद भक्तिकथा तथा नारायण शास्त्री की कालिका स्तुति को छोडकर अन्य रचनाओ म कवि भागदौड करते दृष्टिगत होते है—फिर भी हिन्दी म तुलसीदास के पार्वती मगल रामचन्द्र की 'चरण चन्द्रिका मनियारसिंह की सौंदय लहरी', गुरु गोविन्दसिंह क चण्डीचरित्र

---

१ कालिका स्तुति नारायण शास्त्री, प० स० १४ ।
२ नेपाली जन साहित्य काजीमान कन्दङवा (रायल नेपाल एकेडेमी २०२० वि० स०), पृ० ७६ से उदधत ।
३ उत्तर वाहिनी गगा स्तुति मोतीराम भट्ट (ने० सा० की भूमिका यज्ञराज सत्याल, पृ० ४२ से उदधत) ।
४ दक्षिण कालिका स्तुति मो० भ०, पाँचवाँ पद ।
५ दुर्गाभक्ति चन्द्रिका कुलपति मिश्र, चतुथ मयूख, श्लोक स० ६ ।
६ पार्वती मगल तुलसीदास तुलसीग्र थावली, दूसरा खण्ड (ना० प्र० सभा), पृ० २६ ।
७ लक्ष्मीस्तोत्र बालमुकुन्द गुप्त (१८९७), पृ० ५४ ।
८ गगावतरण सग १३ प० स० ७ ।
९ चडीचरित्र उक्ति विलास गुरु गोविन्द सिंह, अ० १, प० ६ ।
१० वही, अ० २—५० ।

उक्ति विलास' पदमाकर की गगा लहरी' तथा रत्नाकर के 'गगावतरण' मे रम णीयता भी पाई जाती है। उक्त कवि अभिव्यजनापूण काव्यावली प्रयुक्त करन म चूक नही करते। उन्होन अलकृत भाषा मे अपनी काव्यवस्तु की योजना की है। उनकी रचनाओ म उत्प्रेक्षा, उपमा रूपक, उदाहरणादि अलकारो द्वारा निष्पन चामत्कारिक अभिव्यक्ति के दशन होते हैं। नीचे उनकी अलकार योजना के कुछ उत्तम उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं।

उत्प्रेक्षा—सुमुखि सुलोचनि वद मद मुसकात कलोलत
दर विकसित अरविद मनौ बीचिन बिच डोलत ॥[1]
पितमातु प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं।
सित पाख बढति चन्द्रिका जनु चन्द्र भूषन माल ही।[2]
तत्छवि की अति ही उपमा कवि जिउ चुन ली तिस को चुन काढे।
मानहु पावस की रुत मे चपला चमकी घन सावन गाढे ॥[3]

रूपक गभ काव्यलिंग का अगागिभाव सकर—

आप क्या आसव पियत तासु नशा तन छाय
मैं 'फिरि हौं' अतिशय अभय दुख सुख सब बिसराय ॥[4]

अनुप्रास और उपमा की ससृष्टि—

द्रुत ही दलान मे दिगीशन के देखत।
दराज दत्यराज वीर दीप-सौ बुताइगो।[5]

× × × ×

अवसि होई सिधि साहस फल सुसाधन।
कोटि कल्पतरु सरिस समु अवराधन।[6]

निरग माला रूपक—

विधि के कमण्डल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरिपद पकज प्रताप की लहर है।

---

१ गगावतरण रत्नाकर, स० ६ प० १।
२ पावतीमगल तुलसीदास (तु० ग्र० द्वि० ख०—ना० प्र० सभा), पृ० २५।
३ चडीचरित्र गु० गो० सिंह, छ० स० २४।
४ विश्रामसागर (ध्रुव चरित्र) ज्वालप्रसाद, पृ० १५२।
५ वही, पृ० १७२।
६ पावतीमगल तुलसीदास, (तु० ग्र० द्वि० ख०), पृ० २६।

लगाइ पटटी दुइ तर्फ नेत्रमा घोडा सरी प्रेरित लक्ष्य भेटून मा,
भयो उनी को पनि चित्त त्यो अब हाके सरी ने हरिभक्त ले दृढ।[1]

अर्थापत्ति—

हत्यारा हरु मह पातकि अधम मछन र पछन जस
साम्पात थो निवरूप लिए र सहज जा छन विमा मा तस
यस्ता पापि अधम हरु पनि सहज तछन फगत वासले
नानी को धुन बात फेरि कहनू गगाजिका स्नान ले।[2]

दृष्टा त—

ज मी सुनीति सुत धुन रित ले कहायो
उस्त भयौक्न यहा पनि वास पायो
जस्तो अघी जमीनमा पनि रुख लगायो
उस्त समस्त फलि फलहरु आज खायो।[3]

निदर्शना—

कोही गछन रण्डीबाजी कोई गछन चोरी
कोई मूख जनले राम्छन अपना छोरी।
बुझनू सबले ससार झूटटा
यम-लोक मा जानलाइ उचाल्छन खुट्टा।[4]

उपयुक्त उदाहरणो म अप्रस्तुत विधान सवथा परम्परागत है। हिन्दी उदा हरणो म मुख का अरविन्द दिनादिन बढती हुई बाला का शुक्ल पक्ष की चन्द्रिका कृष्ण धरातल पर पीत वस्तु के विलास को धनमध्यगत विजुली, कथा-जनित आनन्द को शराब का नशा किसी की मृत्यु की अनायास अनिवार्यता का दीप निर्वाण मनोवाछित फल दन वाल को कल्पतरु, मत्युकारण युवति को ठग का विषगम लडडू किसी के समूल सहार को हनुमान का रावणोद्यानविध्वस कहना तथा एक ही प्रस्तुत को उसके उद्भव विकास प्रभावादिक्रमानुसार अभेद रूप स

१ अजामिल कृष्णप्रसाद शर्मा घिमिरे, सग ५ पद ८।
२ गगास्तुति मोतीराम भटट (मो० भ० को स० जी० नरदेव शर्मा पृ० २६ से उदधृत)।
३ ध्रुवचरित्र गोपीनाथ लोहनी (बाबू माधवप्रसाद शर्मा बनारस सिटी), पृ० ६।
४ भक्ति को सवाई सुखवीर गुरग (सवाई पचक से उदधृत)।

तत्तत नाना उपमान देना—यह सब चिर प्रतिष्ठित अप्रस्तुत योजना है। यही बात नेपाली उदाहरणो म देखी जाती है। इद्रियो को डाकू, ससार को सागर, वरदात्री को कल्पलता लक्ष्य साधक को आच्छन्नाग्नि युगलपार्श्व रथाश्व कमारुमार भोग को वक्ष रावणानुसार फल प्राप्ति और पापाचार को यमलोक की सीढी का रूप देना नवीन योजना नही है। अर्थापत्ति का जो उदाहरण दिया गया है वह भी पौराणिक कथाओ के आरम्भ या समाप्ति पर माहात्म्य वणन म प्राय मिल जाता ह। वस्तुत इस धारा की नेपाली रचनाओ म अप्रस्तुत विधान पहले तो मिलता ही नही। जो कुछ कदाचित कही देखा भी जाता है वह या तो पिष्टपेषण है या उसम वह सूझ बूझ नही दिखाई देती जो इसी धारा के हिन्दी कवियो की अप्रस्तुत योजना म पाई जाती है। उदाहरणाथ—मोतीराम भटट दैत्यवश म भक्त प्रह्लाद के जन्म को दिखाने के लिए इस तरह अप्रस्तुत योजना करते हैं

मोती ले हुनु पछ गेहिृ जलमा हीरा हुन्या खानिमा
जस्तो हुन्छ असल् कमल सुजन हो गहृहिलो पानिमा,
तस्तो यस अति दुष्ट कुलमा प्रह लाद जन्म्या मनो,
सन्तोष यो मनमा गरन सकल ल यस्त विधाता भनी।[1]

यहा तीन अप्रस्तुत योजनाएँ हैं—प्रह्लाद गहरे पानी का मोती है, खान का हीरा है और कीचड का कमल है। कवि यह कहकर दुष्ट कुल म पैदा होने पर भी उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहता है। यहाँ प्रथम उदाहरण मे प्रह्लाद की महत्ता तो सिद्ध होती है, किन्तु दत्यवश की नीचता—जो कवि को अभीष्ट है—व्यजित नही होती। गहरा पानी तो गम्भीरता को व्यक्त करने के कारण श्लाघ्य है। इसी तरह दूसरी अप्रस्तुत योजना म असदिग्ध रूप से प्रह्लाद की उत्तमता प्रमाणित नही होती है। खान का हीरा अपनी सहजावस्था म अनाविद्धता के कारण पवित्रता का ध्वनन करता है किन्तु साथ साथ विद्रूपता तथा मद्योग को भी प्रकट करने के कारण शाणोल्लीढ हीरा की तुलना म हीन सिद्ध होता है। अवश्य ही अन्तिम अप्रस्तुत विधान म कवि क अभीष्ट की पूणत सिद्धि देखी जाती है। नीच वश के उत्तम व्यक्ति को कदजम कमन का रूप प्रदान करना सवथा उपयुक्त है किन्तु काव्य ग्र थो म प्राय प्रयुक्त होने के कारण इसस कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचय नही मिलता है।

दूसरी ओर हिन्दी कवि रत्नाकर की अप्रस्तुत योजना का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है जिसम कवि के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उसकी काव्य प्रतिभा की झलक मिल बिना नही रहती

कहूँ तरल कहूँ मद कहूँ मध्यम गति धारे
दरति कूल द्रुम भूल ढहावति कठिन करारे,

१ प्रहलाद भक्ति कथा मोतीराम भटट पृ० स० १०।

द गिरि स्र ननि बीच बढति उमडति इमि ग्रावति,
ज्यों बादर की जोह बिसद बीथिन मे धावति।[1]

पहाडा से आगे बढती हुई गगा को अवरोधो का सामना करना पडता है। इसस उसकी गति म दामन्द है। अवरोधो को पारकर दौडन वाला की चाल की ऐसी अवस्था स्वाभाविक ही है। जब वह दो पहाडा के बीच आगे बढती है तो कवि उसे उस चादनी के समान मानता है जो ऐसे बादल के बीच हो जिसकी छाया गलियो म पड रही हो। बादल पवन द्वारा परिचालित हो चाद को छोडकर जितना ही आगे बढता है उतनी ही चादनी धरती मे दौडती मालूम पडती है। पवन की म दाम द गति के अनुरूप चादनी की चाल भी घटती बढती प्रतीत होती है।

एक और उदाहरण गुरु गोविन्दसिह के चण्डीचरित्र उक्ति विलास से उदधत किया जाता है

चड सभार तब बलुधार लयो गहि नारि धरा पर मारियो
जिउ धुबिया सरिता तट जाइके ल पटकौ पट साथ पछारियो।[2]

धोबी के नदी के किनारे जाकर कपडो के पटकने से चण्डी के असुरो को पछाडने के अप्रस्तुत विधान म चण्डी का प्रबल पराक्रम प्रकट होता है, क्योकि धोबी को कपडे धोने म कोई कठिनाई नही होती शक्ति की समर निष्ठुरता पर प्रकाश पडता है क्याकि धोबी की कपडे पटकने म निममता बहुचर्चित है साथ-साथ देवी के हृदय की दया भी व्यजित हुए बिना नही रहती क्योंकि धोबी कपडो को निमल करन के लिए पटकता है देवी असुरा को सदगति देने के लिए अपने हाथो मारकर निष्पाप बनाती है। देवी के एतादृश गुण—हृदय की कृपा और समर-निष्ठुरता—का बखान मार्कण्डेयपुराण मे भी किया गया है।[3] किन्तु वहाँ वह वाच्य है यहाँ व्यग्य।

शब्दालकारो काकूक्तिया एव वक्रोक्तियों की भी हिन्दी की इस मिश्रित भक्तिधारा मे योजना है। पद्माकर की गगालहरी, रत्नाकर के गगावतरण तथा विष्णु गगालहरी, मनियार सिह की सौदय लहरी तथा गुरु गोविन्दसिह की रच नाओ मे शब्दालकारो की छटा दर्शनीय है। गुरु गोविन्दसिह तो कहीं-कही चमत्कार के पीछे पडे दिखाई देते हैं।

खडि अखडन खड के चडि सु मुड रहे छित मडसगाहो,
दडि अदडन को भुजदडन भारी घमण्ड कियो बलबाही।

---

१ गगावतरण रत्नाकर ६२० (इडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग षष्ठ सस्करण)।

२ च० च० उ० वि० गु० गो० सिह। अ० २ छ० ३४ (श्रीदमगुरु ग्रन्थ)।

३ दुर्गासप्तशती अध्याय ४, श्लोक स० ११ २२।

थापि अखण्डल को सुरमण्डल नाद सुन्यो ब्रह्मण्ड महाहीं,
क्रूर कुवण्डल कोरन मण्डल तो सम सूर कोऊ रहू नाहीं।[1]

वीर रस के वर्णन में नादौज की सृष्टि के लिए वे कादड दग, तागड दग, आगर दग, नागड दग, वागड दग जसे निरर्थक शब्दों तक की सृष्टि कर लेते हैं।

इस धारा की नेपाली कविता में शब्दालंकारों में क्वचित अनुप्रासमात्र की योजना कहीं कहीं पाई जाती है। यहाँ तक ध्वन्यर्थ व्यंजना जो नेपाली भाषा की प्रमुख विशेषता है इस धारा में कहीं खोजने पर ही मिल पाती है। यथार्थत अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग नेपाली कवि प्रकृति चित्रण में करता है और इस धारा में कवियों को प्रकृति चित्रण का अवसर ही नहीं मिला। जहाँ कदाचित् वह मिल पाया वहाँ ध्वन्यर्थ व्यंजना भी अपनाई गई है। पशुपति-वर्णन में वन प्रान्त की शोभा को दिखाते हुए द्विजराज अर्ज्याल लिखते हैं

मग मग चल्द छ वास खुप
पवन ले ढण्डा बहुत धरी
भुमु भु गरि घुम्द छन तिभमरा
खुप पुष्प रस ले भरी।[2]

हिंदी कवि पद्माकर, गुरु गोविन्दसिंह तथा रत्नाकर की रचनाओं में ध्वन्यर्थ व्यंजना प्राय पाई जाती है। रत्नाकर की कला में इसकी स्वाभाविक योजना देखी जाती है।

हरहराति हरहार सरिस धाटी सों निकरति,
भय भय भेक अनेक एक सर्गाह सब निगरति।
अखिल हंस बरयस घेरि साकर अरधारे,
भर भराइ इक संग कढ़त मनु खुलत किवारे॥[3]

मिश्रित धारा के हिंदी काव्य की उपभाषा ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली है—किसी की ठेठ तो किसी की अन्य भाषा के शब्दों से मिली जुली। तुलसीदास के पार्वती मंगल की अवधी संस्कृत की तत्सम शब्दावली से भरपूर है। उसी का प्रभाव विश्राम सागरादि अवधी रचनाओं पर भी परिलक्षित होता है। देवसिंह सहजराम तथा लोकनाथ की भाषा सामान्य अवधी है। ब्रजभाषा की रचनाओं में पदमाकर की भाषा सबसे अधिक मीठी और अकृत्रिम है। रदास की ब्रज मँजी हुई है। दयाराम की ब्रज ठेठ है। गोपाल की ब्रज अनगढ़ है। रामचन्द्र

---

१ श्री चरित्र पाख्यान चण्डी चरित्र प्र० अ० (प्र० स०) ४४।
२ पशुपति वर्णन द्विजराज अर्ज्याल (बनारस से प्रकाशित नेपाली पत्रिका, सुन्दरी १८ से उद्धृत)।
३ गंगावतरण रत्नाकर स० प० ८२८।

की चरण चन्द्रिका तथा मनियार सिंह की सौन्दय लहरी की भाषा माधुय गुण सम्पन्न है। गुरु गोविन्दसिंहजी की भाषा मे ओज तथा फारसी पजाबी का पुट है। वे वीर रस की निष्पत्ति मे अपनी भाषा को सशक्त बनाने के लिए सस्कृत स्वरूप प्रदान करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं

भरें जोगनी पत्र चौसठ चारो,
चली ढाम डाम डकार डकार।
भरे नेह गेह गए कक बक,
सले सूरबीर अहाड निसक।[1]

लखपति, मधूलाल और रत्नाकर की भाषा परिमार्जित ब्रज है। रत्नाकर की भाषा म जो सस्कृत निष्ठता देखी जाती है वही नेपाली कवि रत्न शर्मा रिजाल की भाषा म भी मिलती है। इन दोनो कवियो की शब्दावली कही कही सवथा सस्कृतमय हो चली है जैसे

गो ब्राह्मण प्रतिपाल ईस गुरु भक्ति अदूषित
बल विक्रम बुधि रूप धाम सुभ गुन गन भूषित।[2]
जलज्ज्वाला माला कुलित कपिलाकार कुटिल,
दिगन्तव्यालम्बो जलद पटलोच्छेद कुशल।[3]

मिश्रित धारा के मध्यकालीन हिन्दी कविया ने हरिगीतिका, दोहा सोरठा चौपाई कवित्त अरुण, रोला पद्धरि छन्दो का प्रयोग किया है। गुरु गोविन्दसिंह न नराज रसावल, मधुभार, सग्रामल, सग्राल विजय मनोहर, वेलिविद्रुम मधुरा कुल्क आदि छन्दो का भी प्रयोग किया है। आधुनिक कविया ने एक ओर तो पुराने छन्दो का प्रयोग किया—जसे दोहा चौपाइ सोरठा, सवया, कवित्त मनहरण, घनाक्षरी, भुगगप्रयात मत्तगयन्द, तोटक, तातक छप्पय बरवै आदि दूसरी ओर नवीन छन्द—ख्याल, लावनी, कजली रेखता गजल मलार भी उनकी भक्ति रचनाओ म प्रयुक्त हुए।[4]

मिश्रित धारा के नेपाली कवियो ने अन्य भक्त कविया की तरह वर्णिक वत्तो का ही अधिकाशत प्रयोग किया। मन्दाक्रान्ता भुजगप्रयास शिखरिणी इन्द्रवज्रा शार्दूल विक्रीडितादि सस्कृत काव्य दष्ट छन्द विशेषत प्रयुक्त हुए हैं। हरिदास न ध्रुवचरित्र और पतजलि गजुर्याल न 'मत्स्येन्द्रनाथ की कथा' म ग्यारह वर्णो क 'स्वागता छन्द का प्रयोग किया है। कुछ कवियो न नेपाली छन्द सवाइ

---

१ चण्डीचरित्र, प० स० २५७ (श्री दशमगुरु ग्रन्थ)।
२ गगावतरण रत्नाकर १ ७।
३ ज्वाला देवी स्तुति रत्न शर्मा रिजाल (हिमवत्खण्ड, परिशिष्ट से उदधृत)।
४ द्र०—आधुनिक हिन्दी साहित्य डा० ल० श० वार्ष्णेय, पृ० ३७२।

को भी अपनाया है। आधुनिक कवियों के भक्ति-काव्य तथा स्तुति गीतों में भी छन्द के विषय में किसी तरह नवीनता नहीं दिखाई देती है। उदाहरण स्वरूप नवैद्य में जो मूलतः देश प्रेम की रचना मानी जाती है, कविवर धरणीधर कोइराला ने कुछ गीतों में नवीन छन्दों का प्रयोग किया, किन्तु भक्तिमय गीतों में वे वर्णिक वृत्त का मोह न छोड़ सके। रामचरितमानस का प्रभाव मानिए कि उन्होंने अपनी 'अर्ती' रचना को मात्रिक छन्द चौपाई में लिखा। हिन्दी की देखा-देखी कुछ भक्तिमय गजल भी इस काल रचित दिखाई देते हैं। नीचे एक गजल की कुछ पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं

> प्रभु का भक्ति प्रेम का मन सदा लागी रहोस भन्छौं,
> चरण को ध्यान मा यो मन सदा लागी रहोस भन्छौं।
> जपौंला नाम की माला हरौंला पाप को ज्वाला,
> भनि भगवत चरण मा मन सदा लागी रहोस भन्छौं।[1]

ऐसी रचनाएँ नेपाली में बहुत कम हैं। मात्रिक छन्दों की सरलता के मोह में न पड़कर छन्दोविधान के क्षेत्र में समस्त नेपाली भक्ति काव्य ने वर्णिक वृत्तावलम्बन की अपनी परम्परागत विशेषता की अब तक रक्षा की है किन्तु इसके लिए उन्हें नई उद्भावना का बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है।

---

१ गीतमाला (आशुकवि शम्भुप्रसाद ढुंगेल का गीत), पृ० ४८।

उपसहार

प्रस्तुत प्रबन्ध मे सवप्रथम उन स्रोता को खोजने का प्रयत्न किया गया है जिनसे नेपाल और हिन्दी भाषी भारत म सम्पक स्थापित हुआ। इनमे सास्कृतिक आदान प्रदान प्रमुख है। बहुत प्राचीन समय स दोनो देशो के व्यक्ति इसके कारण परस्पर मिलते रह हैं। राजनीतिक सम्पक से भी जिसमे शरण लेना या सहायता देना विशेष रूप से हेतु बना, नेपाल और हिन्दी भाषी भारत को एक दूसरे से प्रभावित हाने का अवसर मिला। परस्पर व्यापार विनिमय, अध्ययनार्थ नेपालियो का हिन्दी क्षेत्र म जाना लिपि की एकता तथा ववाहिक सम्बन्धो ने भी दोना देशा की जनता को एकान्वित किया जिसका प्रभाव साहित्य सगीत कला आदि पर पडे बिना नही रह सका।

दूसरे अध्याय म दोनो देशा के उस समय की राजनीतिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक स्थितियो को दिखाया गया है जिस समय वहाँ प्रमुखरूप से भक्ति काव्य की सष्टि हुई और यह स्थिर किया गया कि राजनीतिक स्थिति उनके भक्ति काव्य के सजन मे हेतु नही रही है। यह सास्कृतिक विकास क्रम था कि नेपाल और भारत मे अल्प समय भेद के साथ उसकी निर्मिति हुई। इसी अध्याय मे हिन्दी-नेपाली भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताओं के साम्य वषम्य को दिखाते हुए तुलना की गई है। नेपाली म सूफी धारा नहा मिलती अतएव प्रसिद्ध चार धाराओ म से शेष तीन भक्ति धाराओ का ही विवेचन किया गया है। चौथी मिश्रित भक्ति धारा की उदभावना की गई है।

तीसरे अध्याय म भारतीय और नेपाली सन्तो की विचार और शिल्प को लेकर तुलना की गई है। नेपाली सन्तशाखा का नाम जोस्मनी है। अच्छी तरह ध्यान न दिया जाय तो जोस्मनिया को भक्तमात्र माना जा सकता है। नाथों का भ्रम हो जाना भी सम्भव है अतएव इन्ह सन्तशाखा मे प्रतिष्ठित करने के लिए सन्त के लक्षणा का परीक्षण कर प्रमुख एव उपयुक्त लक्षण स्थिर किया गया है। 'जोस्मनी शब्द का अथ स्पष्ट कर नेपाली सन्तो की एतिहासिक परम्परा को खोजने का प्रयत्न किया गया है। प्रारम्भिक नेपाली सन्त, कविता हिन्दी म ही करते रहे। उन्ही की छाप पीछे नेपाली भाषा के सन्तो पर पडी। परिणामस्वरूप

मुझे पहले नेपाल और भारत के हिन्दी सन्तो की, पीछे हिन्दी भाषा के सन्तो और नेपाली भाषा के सन्त ज्ञानदिलदास की वस्तु और शिल्प दोनो दृष्टियो से तुलना करनी पडी।

चतुर्थ अध्याय म रामभक्ति काव्य के हिन्दी नेपाली-कवियो की परस्पर तुलना है। नेपाल के आलोचको ने भानुभक्त को बडा महत्त्व प्रदान किया है। उनकी काव्य प्रतिभा का अनुमान उनकी मौलिक और अनूदित रचनाओ के आधार पर सहज ही लगाया जा सकता है। भानुभक्त की मुख्य कृति— रामायण अध्यात्मरामायण का अनुवाद है। कही शब्दानुवाद तो कही भावानुवाद। अनूदित कृति के विचारो और भावो की तुलना करने म मैंने अपना समय नष्ट नही किया है। हा जहा ऐसा कवि भी कही भूले भटके दूसरे के प्रभाव म आकर छन्दो बन्धन की विवशता या किसी अन्य कारण से नवीन बात कह गया है उसकी हिन्दी कवियो के भावो विचारो से अवश्य तुलना की गई है। भानुभक्त के विषय म भी मैंने यही दृष्टिकोण अपनाया। एतदर्थ मौलिक भाव और शिल्प को निर्धारित करने के लिए मुझे संस्कृत रामायणो विशेषत अध्यात्मरामायण को यत्र-तत्र उदधृत करना पडा है। इस अध्याय म प्रमुख नेपाली कवियो की तुलना अलग अलग की गई क्योकि तत्तत्कवि के अनुरूप ही कुछ कवि हिन्दी म मिल जाते रहे।

पचम अध्याय म कृष्णभक्ति रचनाओ की तुलना है। नेपाली म इस शाखा की रचनाएँ प्राय सीधी संस्कृत से आई हैं फिर भी हिन्दी की रचनाओं से इनका साम्य है। यह सम्भवत बहुत कुछ आधार ग्रन्थो की अभिन्नता के कारण हो। वैषम्य भी कम नही है। कृष्ण भक्ति रचनाओ को कथावस्तु की दृष्टि से तीन विभागों म बाटकर उनके भाव और शिल्प का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। ये विभाग इस तरह हैं —(१) कृष्णचरित (सम्पूर्ण), (२) सुदामा चरित्र (३) रुक्मिणी विवाह।

अन्तिम अध्याय म उन भक्ति रचनाओं को लिया गया है जो रामभक्ति कृष्णभक्ति तथा सन्तो की शाखा के अन्तर्गत नहीं होते। इन्हें उपास्य भेदानुसार मुख्यत तीन भागो म बाटा गया है—(१) नृसिंह भक्तिकाव्य (२) ध्रुवचरित्रात्मक भक्तिकाव्य (३) [illegible] भक्तिकाव्य। हनुमद्भक्तिकाव्य हिन्दी म ही नाम भक्तिकाव्य नेपाली म ही अल्प होने से उन्हें तुलना का विषय नहीं बनाया जा सकता था। ईश्वर को अवतार रूप से भजन करने वालों की रचनाओं पर एक दृष्टि डाली गई है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस अध्याय का नाम 'मिश्रित भक्तिकाव्य' रख लिया गया है। इस धारा के कवियों की रचनाएँ छोटी हैं और तात्विक पृथक् वैशिष्ट्य भी नहीं है अतएव इनके कथानक का तुलनात्मक विवेचन सामूहिक रूप म कर दिया गया है।

साहित्यिक भाषा के रूप म नेपाली की अपेक्षा हिन्दी का प्रचार कुछ पहले

हो गया। उसम भक्ति साहित्य की निर्मिति भी कुछ पहले हो गई। फलस्वरूप नेपाली साहित्य के ऊपर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। अथ च हिन्दी का यह सौभाग्य रहा कि उसमे सूर, तुलसी और कबीर मध्यकाल मे, राधेश्याम कथावाचक, मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल मे कुछ ऐसी प्रतिभा लेकर भक्ति-काव्य म अवतरित हुए कि उन्होंने समकालीन तथा परवर्ती कवियो पर अपना अक्षुण्ण प्रभाव छोडा। जिस तरह सूर, तुलसी और कबीर ने अपनी अपनी शाखा निश्छल भक्ति तथा आध्यात्मिक विचारो की उच्चता के कारण नेतत्व प्राप्त किया उसी तरह कथावाचन की दृष्टि से भक्तिरचना करने वालो को राधेश्याम ने, भक्तिरचना म सामयिकता भरने वालो को मथिलीशरण न माग दिखाकर अग्रणी पद पाया। प्रेममार्गी धारा के प्रमुख हिन्दी कवि जायसी का प्रभाव कुछ ही कवियो तथा एक विशिष्ट समाज तक सीमित रहा किन्तु पूर्वोक्त पाँच कवि आज भी अपने क्षेत्र का नेतृत्व कर रहे हैं। नेपाली भक्तिकाव्य पर भी इन कवियो का प्रभाव देखा जाता है। तुलसी का प्रभाव हिन्दी क्षेत्र म सब से अधिक है तो नेपाल म भी वह अधिकतम ही है। सूर क काव्य की कथात्मकता शिथिल होने के कारण उसका प्रभाव अपने सम्प्रदाय से बाहर अधिक नही रहा। रामभक्ति क्षेत्र म लोगो ने वाल्मीकि रामायणादि संस्कृत रामोपाख्यानो को त्यागकर सर्वात्मना रामचरितमानस को अपना लिया किन्तु कृष्णभक्ति के क्षत्र म श्रीमदभागवत को लोग अब भी नही भूले हैं। इससे सूर के काव्य की हीनता सिद्ध नही होनी बल्कि लोगो का कथा मोह प्रकट होता है। इसी की पूर्ति करने के कारण गद्य ग्रन्थ पेमसागर और सुखसागर बाजी मार जाते हैं जबकि मधुरतम भाषा मे छन्दोबद्ध होने पर भी सूरसागर श्रीमदभागवत का स्थान न ले सका। नपाली कवियो ने रामभक्ति क्षेत्र म 'मानस स जितना ही अधिक ग्रहण किया कृष्ण भक्ति क्षेत्र म 'सागर से उतना ही कम। वस्तुत नेपाली कृष्णभक्ति काव्य का सीधा स्रोत श्रीमदभागवत है।

सन्त साहित्य मे कबीर ने अपनी स्पष्टवादिता क्रान्तिकारिता तथा आडम्बरहीनता के कारण सत्यान्वेषियो के मध्य मे जिस तरह हिन्दी क्षेत्र मे प्रसिद्धि प्राप्त की उसी तरह नेपाल मे भी उनकी ख्याति हुई। वे राजनीतिक सीमाओ को छोडकर नेपाल और भारत दोनो के बन गए। राधेश्याम की शैली को हिन्दी क्षेत्र और नेपाल के उन कवियो ने जो अपन काव्य को अधिकाधिक कथावाचनोपयोगिता से मण्डित करना चाहते रहे समान रूप से अपनाया। इसी तरह अपने आराध्यो को पौराणिकता से मुक्त कर कान्यात्मक युगानुरूप सत्य की भूमि पर उतारने वाले नपाली-कवि ने ऐसी इच्छा रखने वाल हिन्दी कवि की ही तरह मैथिलीशरण गुप्त को अपना आदश बनाया।

बहुत प्राचीन समय से अनेक दृष्टिकोणो से सुसम्बद्ध भारत के हिन्दी क्षेत्र

ग्रौर नेपाल की जनता के रीतिरिवाज, रहन सहन सभ्यता सस्कृति, इतिहास-मितिहास देवी-देवता ग्रादि सब एक समान हैं। ग्रतएव उनके काव्य की एकरूपता ग्राश्चय का विषय नही विशेषत भक्तिकाव्य की,जिसके स्वरूप निर्धारणमे देश ग्रौर राजनीति नही, प्रत्युत धम एव सस्कृति का महत्त्व रहा ग्रौर प्रबल साम्य ग्रवश्यम्भावी बन गया। इसलिए नेपाली ग्रौर हिन्दी के भक्तिकाव्य के भाव ग्रौर शिल्प मे जो ग्रद्भुत समानता है वह सवथा स्वाभाविक है। यत्किंचित विषमता का कारण देशकाल, राजनीति, वैयक्तिक विलक्षणता ग्रादि तत्त्व बन सकते हैं।

• • •

परिशिष्ट

प्रस्तुत प्रबन्धागत नेपाल के भक्तिकाव्य-प्रणेताओं का संक्षिप्त परिचय

१ अगमदिलदास—इनका पहला नाम मेवाकण था। भोजपुर इलाके के छिना मखु गाव के एक राई परिवार म १८५० वि० म इनका जम हुआ। जोस्मनी सन्त वदिकदिल से प्रेरित होकर इन्होंने ज्योनि दिलदास से जोस्मनी मत की दीक्षा ली। माझ किरात लिम्बुवान मे इनका बडा प्रभाव है। १६२५ वि० के लगभग इनका देहान्त हुआ।

२ अञ्जनाथ ओझा—ये पक्नाजोल, काठमाडू निवासी थे। इनकी एक लघु-रचना गोपिकास्तुति भाषा' उपलब्ध है। इसका प्रकाशन सवत १६५८ है। श्री ओझाजी के विषय मे अन्य बातें अभी अज्ञात हैं।

३ अभयानन्द (भयदिल, प्रथम)—जनरल भीमसेन थापा के भाई जनरल रणवीरसिंह थापा सन्त शशिधर से दीक्षित होकर अभयानन्द कहलाये। इनका जन्म १८३७ ४७ के बीच माना जाता है। मृत्यु स० १६१६ है।

४ अखडदिलदास—माझ किरात इलाके म इनका जन्म विक्रम सवत १८६८ के करीब हुआ। ये राई थे। इनके गुरु का नाम अगमदिलदास था। लिम्बुवान और माझ किरात प्रदेश मे इन्होंने जोस्मनी मत का प्रचार किया। रुपये लेकर जोस्मनी मत की दीक्षा दिया करते थ। ज्ञानदिलदास ने इनके इस कृत्य की कडी आलोचना की।

५ इन्दिरस—इनका समय वि० १६वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध अनुमित होता है। इनकी एक लघु रचना 'गोपिका स्तुति' प्राप्य है।

६ कुलचन्द्र गौतम (१६३२ २०१५ वि०)—अलकार चन्द्रोदय राघवा लकार आदि ग्रन्थो के प्रणेता कुलचन्द्र गौतम न रामचरितमानस की नपाली टीका की है। ये हिन्दी, सस्कृत और नेपाली विद्वान थ।

७ कृष्णदास—माझ किरात प्रदेश मे राई परिवार म स० १८७२ के करीब

ज्योतिदिलदास के शिष्य थे जो प्रेम दिलदास के चेले थे। चूँकि प्रेमदिल दास पृथ्वीनारायणशाहकालीन थे इसलिए उनके तीसरी पीढ़ी के शिष्य धरणीदास का समय लगभग १८५० वि० से उत्तर ठहरता है। इनके गुरुभाई अगमदिलदास थे जिनका जन्म संवत १८५० वि० माना जाता है। इससे भी इनके समय को निर्धारित करने में सहायता मिलती है। ये जोस्मनी मत का प्रचार करते रहे।

१६ नरेन्द्रनाथ रिमाल (१६३८ २००७)—ये पश्चिम नं० १ त्रिशूली के इलाके में पैदा हुए। इन्होंने १८ पर्व का 'महाभारत' लिखा। इस बृहद ग्रन्थ को लिखने में बड़ा समय लगा। ये काशी में रहते हुए रचना करते रहे और वहीं २००७ वि० में इनका देहान्त हुआ।

२० निर्वाणानन्द—श्री ५ रणबहादुर शाह का जोस्मनी सम्प्रदाय का नाम निर्वाणानन्द था। इनका जन्म १८३२ में हुआ। ये शशिधर के शिष्य थे। ये गोरख नाथ के भी श्रद्धालु थे। इनका देहावसान सं० १८६३ में हुआ।

२१ पतंजलि गजुरेल (१६८० १६४४ वि०)—ये कमांडर इन चीफ धीर शमशेर के दरबार से सम्बन्ध रखते थे। इनके पिता का नाम अरविन्द गजुरेल था। ये ललितपुर से आधा कोस पूर्व की ओर इमाडोल गाँव में रहते थे। इनकी शिक्षा दीक्षा काशी में हुई। इनकी रचनाओं में 'तीर्थावली का प्रमुख स्थान है। मत्स्येन्द्रनाथ की कथा, हरिभक्तमाला तथा बालगोपालवाली—इनकी भक्तिभावपूर्ण रचनाएँ हैं।

२२ पद्मप्रसाद ढुंगाना—ये इलाम निवासी थे। इनकी शिक्षा काशी में हुई। विक्रमीय बीसवीं शती के अन्तिम वर्ष में इनका निधन हुआ। इनकी रचित पुस्तकों में से रामायण शिक्षा सदन' और 'रामायण सप्तरत्न केवल दो ग्रन्थ ही सुलभ है।

२३ पूर्णप्रसाद खतिवडा—हाडीगाँव निवासी पूर्णप्रसाद खतिवडा की एकमात्र रचना—जिसे उन्होंने सं० १६७२ वि० में पूर्ण किया—सतीचरित्र है जिसमें शिव और सती के विवाह की कहानी वर्णित है।

२४ प्रेमदिल—जोस्मनी मत की दीक्षा लेने से पहले ये पृथ्वीनारायण शाह के दरबार में लिपिक थे। अनुमानतः ये उपाध्याय ब्राह्मण थे। इन्होंने शशिधर से दीक्षा लेकर पूर्वी नेपाल में जोस्मनी मत का प्रचार किया। इनका समय विक्रम की उन्नीसवीं शती का पूर्वार्द्ध अनुमित होता है।

२५ बद्रीदास—ये काठमाडू के रहने वाले प्रतीत होते हैं। इनकी रुक्मिणी हरण लीला-छन्द नामक एक रचना प्राप्य है। अन्य कुछ भी इनके विषय में ज्ञात नहीं है।

२६ बसन्तशर्मा—ये भक्तपुर के निवासी माने जाते हैं। इन्होंने अपने कृष्णचरित्र

को १८८४ वि० मे तथा 'समुद्रलहरी' को १६०० वि० मे लिखा इन रचनाओ के आधार पर इनका समय विक्रमीय उन्नीसवी शती का उत्तरार्द्ध अनुमित होता है।

२७ बजनाथ सेढाई—ये बहुत बडे समय तक गोरखापत्र के सम्पादक रहे। 'चन्द्रमयूख,' 'भूचन्द्र चन्द्रिका' 'गोरखा भाषा' मे ये एक सहयोगी लेखक के रूप मे देखे जाते हैं। उपदेशमणिमाला और कालाप्रतापमाला इनकी मौलिक कृतियाँ हैं। इनका २०१२ वि० म स्वर्ग-वास हुआ।

२८ *भक्तिकुमारी राणा*—ये जनरल जगतजग की धर्म पत्नी थी। स० १६४२ म पति की मृत्यु हो जाने पर इन्हे वैराग्य हो गया और भगवान का भजन करने लगी। इनकी भक्तिरचना म १६५८ वि० तक की रचनाए सकलित हैं। इनके अधिकाश भजन ब्रजभाषा म हैं। कुछ भजन नेपाली मे भी हैं।

२६ भानुभक्त आचार्य—ये श्रीकृष्ण आचार्य के पौत्र तथा धनजय आचार्य के पुत्र थे और वि० स० १८७१ के आषाढ मास मे पश्चिम न० ३ तनहु के रमघा नामक गाव म इनका जन्म हुआ। कहा जाता है कि इन्ह कविता करने की प्रेरणा एक घसियारिन से मिली जो घास बेचकर अपनी आजी विका करती थी। बचे हुए धन से उसने अपना नाम चलाने के लिए कुआँ खुदवाया। यह बात जब उसने भानुभक्त से कही तो उनके मन म भी कुछ रचना कर अमर बनने की अभिलाषा जाग्रत हो उठी। उसका परिणाम हुआ—भानुभक्तीय रामायण की रचना। १८६८ म उन्होने बालकाण्ड पूर्ण *किया। १६०६ म भानुभक्त को सरकारी हिसाब को चुकता न कर* सकने के कारण कुछ महीनो के लिए कुमारी चौक म बन्द किया गया। इसी समय उन्होने रामायण के अन्य काण्डो की रचना प्रारम्भ की। *१६१० तक* रामायण के सारे काण्ड लिख लिये गए। इनके लिखे ग्रन्थो मे स *बधूशिक्षा तथा भक्तमाला* मौलिक रचनाएँ हैं। रामायण' अध्यात्म रामायण का नेपाली रूपान्तर है। इसी तरह प्रश्नोत्तरमाला भी शकराचार्य के सुभाषित का अनुवाद है। बहुत स आलोचको की दृष्टि म भानुभक्त ही नेपाली के आदिकवि हैं। १६२५ वि० म वे स्वर्गवासी हुए।

३० मगलदास—ज्ञानमदिरदास (१८५० १६२५ वि०) के शिष्य होन के कारण इनका समय उन्नीसवी शती के अन्तिम चरण स लेकर बीसवी शती पूर्वार्द्ध तक निर्धारित किया जा सकता है। इन्होने माझ किरात प्रदेश म जोस्मनी मत का प्रचार किया।

३१ मोतीराम भट्ट—मानीराम भट्ट का जन्म कान्तिपुर के मोसिकोटोल मे स० १६२३ म हुआ। ये अपने पिताजी के साथ १६२८ म काशी गये।

काशी मे ही उनका अध्ययन पूर्ण हुआ। इन्होंने वहाँ रामकृष्ण वर्मा के साथ 'भारत जीवन' प्रेस खोला। वहीं इनका सम्पर्क भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से हुआ। गजेन्द्रमोक्ष और प्रह्लादभक्ति कथा इनकी भक्ति रचनाएँ हैं। १९५३ मे इनका देहान्त हो गया।

३२ मोक्ष मण्डल—ये पृथ्वीनारायण शाह के दरबारी थे। इनका जन्म मगर कुल म हुआ और इन्होंने शशिधर से जोस्मनी मत की दीक्षा ली। इनका समय विक्रम की उन्नसवी शती का पूर्वार्द्ध अनुमित होता है।

३३ यदुनाथ पोखरयाल—ये विक्रम की बीसवी शती के उत्तरार्द्ध म विद्यमान थे। बाबूराम आचार्य के मतानुसार इनका स्तुतिपद्य' स० १९९० ९४ म रचित है। इसम इन्होंने भीमसेन थापा की वीरता के वर्णन के माध्यम से लोगो म देशभक्ति को भरने का प्रयत्न किया है। इस रचना के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि पोखरयालजी सप्तरी के बिर्तांभोगी' ब्राह्मण थे। इनकी भक्ति रचना का नाम कृष्णचरित्र' है जिसम केवल २१ पद हैं।

३४ रघुनाथ पोखरयाल—इनका जन्म वि० स० १८६८ म नेपाल के प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल मे हुआ। बालकृष्ण पोखरेल ने नेपाली भाषा र साहित्य (पृ० २११) म इनका जन्म सवत १८६० वि० लिखा है। पिता की मृत्यु के बाद ये अपने जन्मस्थान नक्साल (काठमाडू) को छोडकर अपने ससुर के आश्रम मे सप्तरी मे रहने लगे। पत्नी के देहावसान के बाद १९१५ वि० में घर त्याग कर काशीवासी हुए। वहीं इन्होंने अध्यात्मरामायण के सुन्दरकाण्ड का नेपाली मे अनुवाद किया। दीनानाथ सापकोटा के कथनानुसार इन्होंने पूरे अध्यात्मरामायण का अनुवाद किया किन्तु इस समय केवल सुन्दरकाण्ड ही उपलब्ध है। इनका निधन काशी म १९१८ वि० में हुआ।

३५ रत्नशर्मा रिजाल—पश्चिम नेपाल देलेख विलासपुर निवासी थे। रचना ज्वालादेवी गोरक्ष टिल्ला बनारस द्वारा प्रकाशित हिमवत्खण्ड के परिशिष्ट म छपी है। ये ४१ वर्ष की अवस्था म १९९५ वि० म स्वर्गधाम सिधारे।

३६ रेवतीरमण चौपाने—ये विक्रम की बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान रहे। इनके पिताजी का नाम धर्मानन्द था जो '[illegible]' के रहने वाले थे। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१—विश्वजित लीला, २—तुलसी के रामचरितमानस के कुछ काण्डों का अनुवाद, ३—विवाहलीला ४—[illegible], ५—[illegible] लीला।

पहुच। वहाँ विष्णुमती के किनारे धूनी रमाई और नेपाल मे जोस्मनी मत का प्रचार किया। इन्होंने अपने गद्योपदेश नेपाली और पद्यबद्ध उपदेश भजन हिन्दी मे लिखे। नेपाली सन्तशाखा के य गुरु माने जाते हैं।

४३ श्यामदिलदास—प्रेमदिलदास के शिष्य श्यामदिलदास का जन्म पाचथर लिम्बुवान म हुआ। इनका समय विक्रम की उन्नीसवी शती का उत्तरार्द्ध अनुमित होता है। ये ज्ञानदिलदास (१८७८ १९४० वि०) के गुरु थे। इनका जन्म ब्राह्मण कुल म हुआ।

४४ सतदिलदास—इनका जन्म माझ किरात क्षेत्र म ब्राह्मण कुल म हुआ था। इन्होने प्रेमदिलदास से जोसमनी मत की दीक्षा ली थी। इनका समय उन्नीसवी शती का मध्यकाल अनुमित होता है।

४५ सीतारामदास—इनका जन्म सवत् १८७५ माना जाता है। ये माझ किरात क्षेत्र के थे। इन्होंने अगमदिलदास स जोस्मनी मत की दीक्षा ली थी। इनकी मत्यु लगभग स० १९५० म हुई।

४६ हरदयालसिंह हमाल—इनके पिता का नाम तीयरामसिंह था। ये १९०१ वि० म काठमाडू म पैदा हुए। इनकी शिक्षा दीक्षा काशीवासी अपने पिता की देखरेख म काशी मे हुई। पहले य मिर्जापुर म पत्रकार रहे। फारसी की जानकारी होन के कारण इन्ह १९२५ वि० नेपाल बुला लिया गया। स० १९९९ म इनकी मत्यु हुई। इनकी रचना का नाम 'श्रीरामबाल विलास' है।

४७ हरिदास श्रेष्ठ—कहा जाता है कि हरिदास का जन्म नक्साल मे हुआ था। इनका जन्म १९०० वि० स० १९१० के बीच हुआ माना जाता है। इनकी रचना का नाम ध्रुवचरित्र' है।

४८ हरिहर शर्मा लामिछाने—बीसवी शती म विद्यमान रहे। उनकी भगवद-भक्ति विलासिनी' १९४६ वि० म छपी। सुदामा चरित्र इनका दूसरा भक्तिग्रन्थ है। ये नेपाली साहित्य के प्रकाशक विश्वराज शर्मा के भतीजे थे।

४९ होमनाथ खतिवडा—(१९११—१९४८)—ये श्री ५ महाराज त्रैलोक्य विक्रम की धाय के लडक थे। बनारस जाकर इन्होने नेपाली मे लिखना प्रारम्भ किया और रामाश्वमेघ' महाभारत (विराट पर्व सभापर्व) कृष्ण-चरित्र और नृसिंह चरित्र की रचना कर ये १९८४ वि० म स्वर्गवासी हो गये।

५० ज्ञानदिलदास—इनका जन्म १८७८ वि० म इलाम जिला के फिक्कल नामक गाँव म हुआ। कुछ लोग इनका जन्म स्थान धनकुट्टा भी मानत हैं। य जोसमनी सन्त थे। इनके गुरु का नाम श्यामदिलदास था। इन्होंने उदय

लहरी' नेपाली भाषा मे लिखी और कुछ भजन हिन्दी म तथा कुछ नेवारी मे भी रचे। इन्होने 'रमजाटार' जाकर जोस्मनी मत का प्रचार किया। दार्जिलिंग मे इन्होने शास्त्राथ मे पादरियो को हराया था—यह बात इनके विषय मे नेपाल म प्राय सवत्र कही जाती है। इन्होने जोस्मनी सम्प्रदाय को खागी और त्यागी दो भागो मे बाटा। इनकी मत्यु १६४० म हुई।

उक्त कवियो के अतिरिक्त सोमनाथ शर्मा सिग्दयाल, तुलसीप्रसाद ढुग्याल, धरणीधर कोइराला नारायणदत्त शास्त्री आदि जीवित कवियो की, जिन्होने नेपाली भाषा के भक्तिकाव्य को बनाने म अपना योग दिया है रचनाओ का तुलनात्मक विश्लेषण इस प्रबन्ध मे हुआ है। उन्हे वर्तमान पीढी जानती ही है, अतएव अनावश्यक समझकर उनका परिचय यहाँ नही दिया गया है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

हिन्दी ग्रन्थ

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय डॉ० दीनदयालु गुप्त, (स० २००४) हिन्दी सा० स०, प्रयाग। (सूरदासादि कवियों की कृतियों में वल्लभ सम्प्रदाय के स्वरूप की विवेचना)।

२ आदिग्रन्थ १९५१ ई०, गुरु ग्रन्थ साहिब शिरोमणि गुरु द्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर।

३ आधुनिक हिन्दी साहित्य लक्ष्मीशंकर वार्ष्णेय, संशोधित संस्करण, (सं० १९४८ ई०), हिन्दी परिषद प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

४ उदयपुर राज्य का इतिहास महामहोपाध्याय गौरीशंकर (भाग १) हीराचन्द ओझा अजमेर।

५ उद्धवशतक जगन्नाथदास रत्नाकर (१९५८ ई०), इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

६ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार प्रयाग (२००८ वि०)।

७ कबीर वचनामृत मुंशीराम, प्र० आ० २००७ वि०।

८ कबीर सं० विजयेन्द्र स्नातक (१८६५ ई०), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली। (कबीर के विषय में विभिन्न आलोचकों के लेखों का संग्रह)।

९ कबीर का रहस्यवाद डॉ० रामकुमार वर्मा, (सन् १९६१), साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद।

१० कबीर आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई।

११ कबीर बीजक शबद ना० प्र० सभा काशी (२०१६ वि०)।

१२, कबीर ग्रन्थावली सं० श्याम सुन्दरदास (सातवाँ संस्करण, सं० २०१६) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१३ कबीर साहब की शब्दावली (१९४६ ई०), बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

१४ कबीर साहित्य की परख परशुराम चतुर्वेदी भारती भण्डार, प्रयाग सं० २०१२।

१५ कबीर वचनावली स० अयोध्यासिंह उपाध्याय, (२०१५ वि०) ना० प्र० सभा काशी।
१६ कल्याण (उपनिषद् विशेषांक) गीता प्रेस गोरखपुर।
१७ काव्य के रूप गुलाबराय आत्माराम एंड संस दिल्ली (१९५८ ई०)।
१८ कुम्भनदास की पदावली कुम्भनदास (१९५३) कांकरोली।
१९ कृष्णायन श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, (१९६४ ई०) भारती साहित्य मंदिर दिल्ली। (महाकाव्य)
२० गंगालहरी पदमाकर, पदमाकर पंचामृत स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, (स० १९९२)।
२१ गंगावतरण रत्नाकर (षष्ठ संस्करण), इंडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग।
२२ गरीबदास की बानी बे० प्रे० प्रेस, इलाहाबाद।
२३ गोविन्दस्वामी विद्या विभाग कांकरोली।
२४ गोरखबानी स० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (१९९९ वि०)।
२५ चरणचन्द्रिका रामचन्द्र (प्र० स० १८०९ ई०) भारत जीवन प्रेस काशी। दुर्गादेवी की स्तुति में लिखे गये पद्य,
२६ चण्डीचरित उक्ति विलास गुरु गोविन्दसिंह श्री दशम गुरुग्रन्थ, स० २०१३।
२७ चण्डीचरित गुरु गोविन्द सिंह श्री दशम गुरुग्रन्थ स० २०१३। दुर्गा सप्तशती के आधार पर रचित चरित काव्य।
२८ जायसी ग्रन्थावली स० रामचन्द्र शुक्ल २०१७ वि० (पदमावत, अखरावट, आखिरी कलाम) ना० प्र० स०, काशी।
२९ तिब्बत में बौद्ध धर्म राहुल सांकृत्यायन (१९४८ ई०), किताब महल इलाहाबाद।
३० तुलसी ग्रन्थावली स० माता प्रसाद गुप्त (१९४९ ई०) हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी इलाहाबाद।
३१, तुलसीदास एक समालोचनात्मक अध्ययन डा० मानाप्रसाद गुप्त, प्रयाग विश्व विद्यालय हिन्दी परिषद इलाहाबाद।
३२ दसमेश रचित चौबीस अवतार सग्रह ग्रन्थ स० २२२४ और २५६२ (गुरु गोविन्द सिंह रचित अवतार वर्णन) केन्द्रीय पुस्तकालय पटियाला।
३३ दादू की बानी वेलवडियर प्रेस इलाहाबाद।
३४ दुर्गासप्तशती (मार्कण्डेय पुराण) गीता प्रेस गोरखपुर।
३५ दुर्गाभक्तिचन्द्रिका कुलपति मिश्र (१९६३ वि०) भारती सदस्य जयपुर (रा० पु०)।

३६ धरनीदास की बानी बे० व० प्रेस, इलाहाबाद।
३७ ध्रुव चरित्र परमानन्ददास, गोपाल मधुवरदास सोमनाथ।
३८ नन्ददास ग्रंथावली स० व्रजरत्नदास, (२०१८ वि०) ना० प्र० सभा काशी।
३९ नाथ सम्प्रदाय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, (१९५०) हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद।
४० निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ० मोती सिंह (प्र० स०), ना० प्र० स० काशी।
४१ नेपाल की कहानी काशीप्रसाद श्रीवास्तव (प्र० स०) आत्माराम एंड सन्स दिल्ली। (नेपाल के इतिहास राजनीति तथा संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली रचना।
४२ पंचदश लोकभाषा निबन्धावली बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना (१९६० ई०)।
४३ पंजाब का पवनीय साहित्य प्रो० मोहन मनैय, (प्र० स०) कीर्ति प्रकाशन, गोविन्दगढ जालन्धर।
४४ पंजाब हरण और महाराज दलीपसिंह नन्दकुमार देव शर्मा हिं० पु० ए० १२६ हरिसन रोड कलकत्ता स० १९७९ प्र० स०।
४५ परमानन्द सागर परमानन्ददास, स० गोवर्धननाथ शुक्ल भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ (१९५८ ई०)।
४६ पद्मपुराण स० महादेव चिमणाजी आप्टे, (१८९४ ई०), आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना।
४७ पूर्णिमा स० डा० सरनदास मनोन पंजाब यूनिवर्सिटी। पब्लिकेशन ब्यूरो चण्डीगढ (१९६२ ई०)। (कविता संकलन)
४८ प्रियप्रवास अयोध्यासिंह उपाध्याय, हिं० सा० कुटीर वाराणसी (२०१६ वि०)।
४९ बीजक कबीरदास स० मुन्शी जितनाल दास।
५० भक्ति का विकास डा० मुंशीराम शर्मा १९५८ ई० चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी १।
५१ भक्तिमार्गी बौद्धधर्म नमदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी। (श्री नगेन्द्रनाथ वसु के 'Madern Buddhism & its Followers in orisa' का हिन्दी रूपान्तर)।
५२ भागवत सम्प्रदाय बलदेव उपाध्याय नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
५३ भारतेन्दु ग्रंथावली : स० व्रजरत्नदास, ना० प्र० स० काशी प्रथम द्वितीय खण्ड (प्र० स० २००७ वि०)।

५४ भारत का इतिहास ईश्वरीप्रसाद (१९४९ ई०), इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग।

५५ भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास एस० आर० शर्मा, अनुवादक सत्यनारायण दुबे, प्र० स०, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, हास्पिटल रोड, आगरा।

५६ मध्यकाल के खण्डकाव्य मूल्याकन—डा० सियाराम तिवारी, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली पटना।

५७ मध्यकालीन प्रेमाख्यान डा० श्यामनोहर पाण्डेय, प्र० श्रीकृष्णदास, मित्र प्रकाशन इलाहाबाद।

५८ मध्यकालीन धर्मसाधना डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन, प्राईवेट लिमिटेड इलाहाबाद, (द्वि० स० १९५६ ई०)।

५९ मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास डा० रामरतन भटनागर (१९६२ ई०), हिन्दी साहित्य ससार पटना।

६० *मिश्रबन्धु विनोद (हि० स०) गगा पुस्तक कार्यालय, लखनऊ।*

६१ मुगल कालीन भारत आशीर्वादी लाल श्री वास्तव (ततीय सस्करण) शिवलाल अग्रवाल एड क०, प्राईवेट लिमिटेड आगरा।

६२ राधेश्याम रामायण राधेश्याम, कथावाचक।

६३ रामचरितमानस मझला साइज, सटीक, गीता प्रेस गोरखपुर, (२०१८ वि०)।

६४ रामचन्द्रोदय काव्य रामनाथ जोतिसी, (प्र० स० १९३६ ई०) हिन्दी मन्दिर, प्रयाग।

६५ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना त्रिभुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव (२०१४ वि०)।

६६ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय डा० भगवती प्रसाद सिंह, (२०१४ वि०) अवध साहित्य मन्दिर बलरामपुर।

६७ रामराज्य डा० बलदेवप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य ससार (प्र० स० २०१७ वि०) गगाप्रसाद रोड लखनऊ।

६८ रामकथा कामिल बुल्के प्रयाग १९५० इ०)।

६९ रामचरित चिन्तामणि रामचरित उपाध्याय (१९३० ई०)।

७० रामचन्द्रिका केशवदास स० लाला भगवानदीन ना० प्र० स०, काशी।

७१ लक्ष्मीस्तोत्र बालमुकुन्द गुप्त (१८६७ इ०)।

७२ लिखनावली विद्यापति।

७३ विनयपत्रिका स० वियोगीहरि पाठ स० २००७ वि० साहित्य सदन काशी।

७४ विश्राम सागर ज्वालाप्रसाद मिश्र, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई (२००८ वि०)। (पद्यबद्ध पौराणिक कथाएँ)
७५ विश्राम सागर रघुनाथ राम सनेही (स० १९११)। (पद्यबद्ध पौराणिक कथाएँ)
७६ विद्यापति पदावली स० रामवृक्ष बेनीपुरी, पुस्तक भण्डार लहेरिया सराय और पटना।
७७ विद्यापति पदावली कुमुद विद्यालंकार और जयवंशी झा रीगल बुक डिपो दिल्ली (२०१७ वि०)।
७८ वेलि क्रिसन रुकमणी री प्रिथीराज (२०१० वि०) स० कृष्णा शंकर शुक्ल साहित्य निकेतन, कानपुर।
७९ वैदेही वनवास अयोध्यासिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस (२००७ वि०)।
८० ब्रजमाधुरी सार स० वियोगीहरि।
८१ मनसई सप्तक स० श्याम सुन्दर दास प्र० स० हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग (१९३१ ई०)
८२ सन्त कबीर की साखी—स० श्री युगलानन्द जी, स० २००९ वि० श्री वेंकटश्वर प्रेस बम्बई ४।
८३ सन्त रविदास और उनका काव्य स० स्वामी रामानन्द नवभारत प्रेस, लखनऊ (प्र० स०)।
८४ सन्तबानी सग्रह—द्वि० स० वे० प्रे० इलाहाबाद (१९३८ ४६ २ भाग)।
८५ सन्त कवि दरिया एक अनुशीलन धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना (१९५४ ई०)।
८६ सन्त चरणदास त्रिलोकी नारायण दीक्षित (१९६१ वि०) हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद।
८७ सन्तमत का सरभग सम्प्रदाय डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी (१९५९ ई०) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना।
८८ सन्त साहित्य डा० प्रेमानारायण शुक्ल (१९६१ ई०) ग्रन्थम कानपुर।
८९ सन्त सुधा-सार स० वियोगीहरि (१९५३ ई०) सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन नई दिल्ली।
९० साकेत मैथिलीशरण गुप्त (२०१९ वि०) साहित्य सदन चिरगाव (झासी)।
९१ साकेत सत बलदेव प्रसाद मिश्र (१९४६ ई०) विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली।
९२ सुदामा चरित्र आलम, प्र० स०, ना० प्र० स० काशी।

९३ सुदामा चरित्र नरोत्तमदास स० बद्रीदास सारस्वत, साहित्य रत्न भण्डार आगरा।

९४ सुदामा चरित्र वीर वाजपेयी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ।

९५ सुदामा चरित्र हलधर प्र० स०, खड्ग विलास प्रेस, पटना।

९६ सूरसागर सूरदास स० नन्ददुलारे वाजपेयी, ना० प्र० स०, काशी (प्र० स०) २००७ वि०।

९७ सूरदास ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद प्रयाग (१९५० ई०)।

९८ शिवसिंह सरोज शिवसिंह सेंगर।

९९ श्रीकृष्ण चरित या रुक्मिणी मगल रूपनारायण पाण्डेय (प्र० स०) हिन्दी सा० भण्डार गगा प्रसाद रोड लखनऊ।

१०० श्री दशमगुरु ग्रन्थ श्री गुरुगोविन्द सिंह भाग १ २ (स० २०-१३ वि०)।

१०१ हरियाणी लोक नाट्य सगीत डा० शकरलाल यादव भाषा विभाग, पजाब (१९५९ ६० ई०)।

१०२ हिन्दी और मराठी का निर्गुण सन्त काव्य डा० प्र० माचवे (१९६२) चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी।

१०३ हिन्दी काव्य पद्धतियों का विकास डा० हरदेव बाहरी (१९५७ ई०) भारती प्रेस, इलाहाबाद

१०४ हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य डा० सियाराम तिवारी (१९६४ ई०) हिन्दी साहित्य ससार दिल्ली ६।

१०५ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि। डा० प्रेम सागर जैन भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन (सन १९६४)।

१०६ हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास अयोध्यासिंह उपाध्याय १९५७ वि०) तहरिया सराय।

१०७ हिन्दी वाड्मय का विकास डा० सत्यदेव चौधरी महरचन्द्र लक्ष्मणदास दरियागज दिल्ली ७ (सन १९५७)।

१०८ हिन्दी सन्त काव्य सग्रह श्री गणेशप्रसाद हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश।

१०९ हिन्दी सन्त साहित्य डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९६३ ई०।

११० हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास रामकुमार वर्मा च० स०, प्रा० रामनारायण लाल इलाहाबाद।

१११ हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल, स० २००७ ना० प्र० स० काशी।

११२ हिंदी साहित्य का उदभव और विकास रा० व० शुक्ल और भगीरथ मिश्र (१९५६ ई०) हिंदी भवन जालधर इलाहाबाद।
११३ हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास मू० ले० ग्रियसन अनुवादक किशोरी लाल गुप्त हिंदी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी।
११४ खूनी पनरे प्यारा सिह (पजाबी) (स० १९४७) गुलाबसिंह एण्ड सस, दिल्ली (क्रान्तिकारी आदोलन की एक झाकी)
११५ बागला साहित्येर इतिहास खण्ड १ डॉ० सुकुमार सन (बगला) (द्वि० स०) माडन बुक एजेंसी कलकत्ता (१९३८)।

नेपाली-ग्रन्थ

११६ अजामिल कृष्ण प्रसाद शर्मा धिमिरे (प्र० स०) पद्यबद्ध अजामिलोपाख्यान) प्र० कृष्णकुमारी टगाल नरेन्द्रयन्त्रालय काठमाडू (नेपाल)।
११७ अर्ज्याल कुलचन्द्रिका दवन केशरी २०१३ वि० (अर्ज्याल वश की पद्यबद्ध वशावली) योग प्रचारिणी गोरक्ष टिल्ला काशी।
११८ अपण गीता गगानाथ अर्ज्याल (२०१७ वि०) जगदम्बा प्रेस ललितपुर (नेपाल)।
११९ आदश राघव आचाय सोमनाथ शर्मा सोमाश्रम, दिल्ली बाजार १।२२६ काठमाडू। (रामभक्ति धारा का महाकाव्य)
१२० आदिकवि भानुभक्त आचाय मोतीचन्द्र प्रधान (प्र० स० १९५२ ई०) (कवि और उनकी रचनाओं की आलोचना)। प्र० रत्नकुमार प्रधान, बी० काम, ४ रामनीदास अढ़िया लेन कलकत्ता ७।
१२१ इतिहास प्रकाश योगी नरहरि मृगस्थली गोरक्षपीठ काठमाडू (२०१३ वि०)।
१२२ कल्याण वशावली नर भूपालशाह (२०१३ वि०) योग प्रचारिणी गोरक्ष टिल्ला काशी।
१२३ कविवर मोतीराम भट्ट को सचित्र जीवनी नरदव पाण्डेय शर्मा, (१९९५ वि० बनारस) पता—नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति नेपाल।
१२४ कृष्ण-चरित्र बसन्त शर्मा, (कृष्ण चरित्र काव्य) प्रकाशक—सुब्बा हीमनाथ केदारनाथ पुराना कवि र कविता म सगृहीत कृष्ण-चरित्र भी अपनाया गया है।
१२५ कृष्णक्रीडा निकुज जोतिप्रसाद गौतम (२००५ वि० द्वि० स०) काठमाडू।
१२६ गीतमाला स० विश्वनिदेव उपाध्याय देवाश्रम (गीता का सकलन) विराट नगर (नेपाल)।

१२७ गोर्खा गोरखनाथ स्तुति नारायण शास्त्री (साल २०१५, प्र० स०) प० ३ न० तह्लो चूदी रम्था।
१२८ चण्डी सप्तशती कृष्णप्रसाद घिमिरे (प्र० स०), नरेन्द्र यन्त्रालय, काठमाण्डू नेपाल। दुर्गा सप्तशती का पद्यबद्ध अनुवाद।
१२९ चित्रकूटोपाख्यान वाणी विलास पाण्डे, प्र० लोकनाथ कालाभैती बनारस, राम चित्रकूट गमन का पद्यबद्ध आख्यान।
१३० जनरल भीमसेन थापा र तत्कालीन नेपाल—चित्त रजन नेपाली प्र० स० रत्न पुस्तक भण्डार भोटाहिटी काठमाडू नपाल (भीमसेन थापा कालीन नपाल की भाँकी)।
१३१ जमिनी भारत अनु हरिविक्रम थापा, (१९६४ वि०) प्रो० विश्वराज शर्मा, बनारस।
१३२ जोस्मनी सन्त परम्परा र साहित्य स० जनकलाल (प्र० स० २०२० वि०) रायल नेपाल एकेडेमी काठमाडू (नेपाल)। (नेपाल की सन्तशाखा जोस्मनी के सन्तो की कविताओं का सग्रह)।
१३३ तुलनात्मक सुन्दरकाण्ड स० बाबूराम आचार्य। ने०भा० प्र०स० काठमाडू (२००२ वि०) भानुभक्त और रघुनाथ द्वारा रचित रामायण के सुन्दर काण्डो की तुलना।
१३४ दशावतारको बालुन देवदत्त, प्र० विश्वराज हरिहर शर्मा बनारस (दशावतार की पद्यबद्ध कथा)।
१३५ दुर्गाभक्ति तरगिणी—केदार शमशेर थापा। पशुपति यन्त्रालय, काठमाडू।
१३६ दुर्गाभक्ति तरगिणी नीरेन्द्र केशरी अज्यात्र।
१३७ दुर्गासप्तशती—चन्द्रधर प्र० विश्वराज हरिहर शर्मा (१९८० वि०) बनारस।
१३८ धम एव सस्कृति मुरलीधर भट्टराय विश्व मत्री सघ काठमाण्डू।
१३९ ध्रुवचरित्र हरिदास जगदम्बा प्रस ललितपुर नपाल (२०१५ स०)।
१४० ध्रुवचरित्र गोपीनाथ (प्र० स०)।
१ सम्पादक मा० प्र० शर्मा सर्वहितैषी कम्पनी, बनारस सिटी।
२ मोतीराम भट्ट भारत, जीवन प्रेस (१९४६ वि०) बनारस।
१४१ नृसिंह चरित्र—प्रह्लाद उद्धार—मुख्या हामनाथ (स० १९६३) दुर्गाप्रेस।
१४२ नपाल को एतिहासिक रूप रेखा बालचन्द्र शर्मा (२००८ वि० बनारस)।
१४३ नपाली जन-साहित्य वालेमान कन्ना (२०२० वि०), रायल नपाल एकेडमी काठमाडू।
१४४ नपाली भाषा र साहित्य प्रा० बालकृष्ण पोखरेल (नपाली भाषा और साहित्य-सम्बन्धी लेख)। २०२१ वि० रत्न पुस्तक भण्डार भोटाहिटी

काठमाडू (नेपाल)।
१४५ नेपाली भाषा स० महानन्द सापकाटा (द्वि० स० २०२१) रत्न पुस्तक भडार भोटाहिटी काठमाडू नेपाल।
१४६ नेपाली साहित्य को भूमिका यनराज सत्याल, (नेपाली साहित्य का इतिहास) (प्र० स० २०१७ वि०), प्रकाशन विभाग नेपाल सरकार।
१४७ नवेद्य—धरणीधर कोइराला, नया सस्करण, (कविता सग्रह) जगदम्बा प्रकाशन श्रीदरबार ललितपुर (नेपाल)।
१४८ पुराना कवि र कविता बाबूराम आचाय (स० २०१७) (प्राचीन नेपाली कवियो का परिचय तथा उनकी रचनाएँ) नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति नेपाल द्वि० स०।
१४९ प्रह्लादभक्ति कथा मोतीराम भट्ट (स० १९४४ वि०) भारत जीवन प्रेस काशी।
१५० बुइगल कमल दीक्षित, प्र० स० २०१८ (कवियो का परिचय तथा उनकी रचनाएँ) जगदम्बा प्रकाशन, श्री दरबार पुलचौक ललितपुर नेपाल।
१५१ भानुभक्त को जीवन चरित्र मोतीराम भट्ट, ने० भा० प्र० स०, दार्जिलिंग १९५७ ई०)।
१५२ भक्तमाला भानुभक्त भानुभक्त मणिमाला वि० स० १९९८, प्र० विष्णुमाया देवी, काठमाडू।
१५३ भानुभक्त आचाय को सच्चा जीवन चरित्र नरनाथ शर्मा आचाज तनहूँ।
१५४ भानुभक्त बालचन्द्र शर्मा, ने० सा० स०, दार्जिलिंग (२०१४ वि०)।
१५५ भानुभक्त एक समीक्षा हृदयचन्द्रसिंह प्रधान, २०१३ वि० काठमाडू।
१५६ भानुभक्त ग्रन्थावली पारसमणि, भारती कार्यालय दार्जिलिंग।
१५७ भानुभक्त को रामायण स० सू० वि० नवाली (१९५४ ई० द्वि० स०) नेपाली साहित्य सम्मेलन, दार्जिलिंग।
१५८ भानुभक्त स्मारक ग्रन्थ स० सूय विक्रम नवाली वि० स० १९९७, दार्जिलिंग।
१५९ भाषा सप्तरत्न—नवीन सस्करण प्र० भक्तबहादुर काठमाडू (नेपाल)।
१६० महिन्द्रनाथ की कथा चक्रपाणि चालिसे (१९०७ ई०), प्रभाकरी प्रिंटिंग वक्स बनारस।
१६१ महाभारत कृष्णप्रसाद उपाध्याय (१९०६ ई०) दुर्गा प्रेस काशी।
१६२ महाकवि देवकोटा नित्यराज पाण्डेय (२०१७ वि० स०) (कवि का आलोचनात्मक परिचय) मदन पुरस्कार गुठी श्रीदरबार पुलचौक ललितपुर, नेपाल।
१६३ मरा राम नेत्रनाथ, २०११ वि० प्र० स०, प्र० अनन्तराम शर्मा

जोरगणेश प्रेस नेपाल। (पद्यबद्ध रामायण)
१६४ रामनीति वणन ऋषि भक्तोपाध्याय, स० २००३ काठमांडू।
१६५ रामायण सप्तरत्न पदमप्रसाद ढुगाना ग्रमम।
१६६ रुक्मिणी विवाह कृष्णप्रसाद घिमिरे, (२०१६ वि०) नरेन्द्र मन्त्रालय काठमाडू (नेपाल)।
१६७ रुक्मिणी हरण लीला छन्द, वद्रीदास (खण्डित)।
१६८ श्रीमदभागवत कथासार—मुरारी ढगाना (२००५ वि) जोरगणेश छापा खाना नेपाल।
१६९ श्रीराम कथा—गणेनमान श्रेष्ठ।
१७० सगीत रामायण—तुलसीप्रसाद ढुगाल (२०१६ वि०) विश्वबन्धु प्रस, काठमाडू।
१७१ सवतहरी गोविन्द बहादुर (१९३७ वि०) बनारस।
१७२ सवाई पचक वि० ह० नर्मा बनारस १९१४ वि० (त० स०)।
१७३ सवाई पचीसा प्र० विश्वराज हरिहर नर्मा बनारस (१९५६ ५७ वि०)।
१७४ सुदामा चरित्र कृष्णनाथ सिग्देल (स० १९८९), हितपो प्रिंटिंग वक्स, नीची वाग बनारस सिटी।
१७५ सुदामा को भापा श्लोक दल बहादुर कार्की (१९६३ ६४ वि०), पशुपति प्रेस काठमाडू।
१७६ सु ग्रा खडगप्रसाद श्रेष्ठ का राधेश्याम रामायण स० १९८८ प्र० स० विश्व नेपाली भापा पुस्तक भण्डार काठमाडू।
१७७ हरिहर स्तुति कृष्णप्रसाद रग्मी (२००२ वि०) प्रकाशक—गोविन्द प्रसाद ढुगाना बौद्ध महाकाल नेपाल।
१७८ हिमवत्खण्ड (स्कन्ध पुराण) योगप्रचारिणी, गोरक्ष टिल्ला बनारस (२०१३ वि०)।

सस्कृत ग्रन्थ

१७९ अथर्ववेद स० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल, पारडी (१९५७ ई०)।
१८० अध्यात्मरामायण २००८ वि०, स० स० गीताप्रेस गोरखपुर।
१८१ अनघराघव (१८८७ म०) निणय सागर प्रेस बम्बई।
१८२ कालिदास ग्रन्थावली स० सीताराम चतुर्वेदी अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी (२०१६ वि०)।

१८३ कौटिलीय अर्थशास्त्रम स० डा० आर० शाम शास्त्री (१९२४), ग० ब्राच प्रेस, पूना।
१८४ गोरक्ष पद्धति (१९६० वि०), भाषानुवाद—महीधर शर्मा, बम्बई।
१८५ ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धनाचार्य (प्र० स० १९५२ ई०), व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, गौतम बुक डिपो दिल्ली।
१८६ नवनाथ कथा मौक्तिकनाथ (द्वि० स० २००० वि०)।
१८७ नीतिशतकम—भर्तृहरि (सुभाषित त्रिशती) स० वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, पाण्डुरंग जावजी बम्बई (१९२२)।
१८८ मनुस्मृति सम्पादक गोपाल शास्त्री नेने तथा चिन्तामणि वहरे, (१९३५ ई०) चौखम्बा, बनारस।
१८९ महाभारत महर्षि वेदव्यास अनु० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल पारडी (१९५२ ई०)।
१९० मीमांसा सूत्र जैमिनि स० मेजर बी० डी० बसु आई० एम० एस०।
१९१ मेरुतन्त्रम्—सम्पादक—रघुनाथ शास्त्री श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई।
१९२ राजतरंगिणी कल्हण स० एम० ए० स्टीन (द्वि० स० १९६० ई०) प्र० मुन्शीराम मनोहरलाल दिल्ली ६।
१९३ रामचरित अभिनन्द १९३० ई०। ओरियंटल इंस्टिट्यूट बड़ौदा।
१९४ वाल्मीकि रामायण—अनुवादक द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी (द्वि० स०) प्रकाशक—रामनारायण लाल इलाहाबाद।
१९५ सर्वदर्शन संग्रह माधवाचार्य (स० १९०६) आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना।
१९६ शारदा तिलकम—श्रीलक्ष्मणदेशिकेन्द्र टीका—राघव भट्ट (सन १ ३४), चौखवा संस्कृत सीरीज बनारस।
१९७ शिशुपाल वध माघ चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी (१९५८ ई०)।
१९८ श्रीमदभगवदगीता—भाषा टीका सहित प्र० बाबू बैजनाथ प्रसाद, *राजादरवाजा बनारस (१९१४ ई०)।*
१९९ श्रीमदभागवत अष्टम सस्करण (सन १९३८) निर्णय सागर प्रेस बम्बई।
२०० हठयोग प्रदीपिका पाणिनि आफिस इलाहाबाद (१९१५ ई०)।
२०१ हनुमन्नाटक —मेधातिथि। लक्ष्मी वेंकटेश्वर, (१९७० वि०)।

पत्र-पत्रिकाएँ

२०२ आजकल (नवम्बर १९६३), पब्लिकेशन डिविजन, भारत सरकार दिल्ली।

२०३ खोज रिपोर्ट नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२०४ गोरखा ससार—(१९०३ स०), देहरादून।
२०५ प्रगति द्वमासिक पत्रिका, शिक्षा विभाग नेपाल सरकार।
२०६ नेपाल त्रिभुवन विश्वविद्यालय सास्कृतिक परिषद् २०१९ चत्र २०२० २०२१ २०२२।
२०७ नेपाल को सस्कृति र स्वातन्त्र्य प्रेम स० जी० सी शास्त्री त्रि० वि० वि० सा० परिषद।
२०८ हिमानी स० केशरमान व्यथित आदि नेपाली साहित्य सस्थान, काठमाडू (वर्ष १ अक ३, १) २०१९ वि०।
२०९ हिमवत्खण्ड—जगदम्बा प्रकाशन श्री दरबार, ललितपुर नेपाल।
२१० हिमाल—नेपाली छात्रसघ नई दिल्ली।
२११ सुन्दरी (बनारस)।

अंग्रेजी ग्रन्थ

212 Ancient India R K Mukarji (1966) Indian Press Allahabad
213 A Winter in Nepal John Mon s Rupert Hart Davis, SOHD Square, London (1963)
214 Alberuni s India Dr Edward C Sachan London Paul (1910)
215 Description of Nepal Kirk Patrick London 1811
216 East of Kathmandu, Tom Weir (1955) Oliver and Bayd Edinburgh, Tweeddale Court London
217 History of the Freedom Movement in India Dr Tara chand (Vol I Jan 1961) Publications Division Govt of India
218 Kuka Movement Fauja Singh Bajwa (1965) Moti Lal Banarsi Dass Delhi 6
219 The Khas Family Law Dr L D Joshi Govt Press, Allahabad (1929)
220 Linguistic Survey of India, George Grierson, Calcutta C P B (1927)
221 Le Lepal (About History of Nepal) Sailvan Levi Paris (1905),

222 Manual of Indian Buddhism H Kern Strassburry (1876)
223 Mediaeval History of Nepal, Luceiano Petech (750 1480) Roma, I S M E (1958)
224 Modern Nepal, Dr D R Regmi Firma K L Mukhopadhyaya, Calcutta (1961)
225 Modern Buddhism and Its Followers in Orissa N N Basu, Calcutta (1911)
226 Nepal P Landon, 2 Volumes 1928 (Constable London)
227 Nepali Dictionary, R L Turner London (1931)
228 Nepal—The Discovery of Malla G Tucci Translated *from The Italian "Nepal Allaseoperta Dei,* Malla by Lovett Edwards (1962) George Allen & Unwin Ltd, London
229 Outlines of The Religious History of India Calcutta (1920) J N Furquhar
230 Religions Sects of The Hindus H H Wilson, Ed by Ernst R Rost 2nd ed Calcutta (1958)
231 Sketches from Nepal H A Oldfield W H Allen and Co London (1880)
232 Selections from The Sanskrit Inscriptions Part I D B Diskalkar Curater Watson Museum Rajkot
233 The Buddhism of Tibet Dr L A Waddell 2nd ed, Cambridge Heffer (1959)
234 The Himalayan Kingdoms Pradyumna (1963) P Karan and William M Jenkins D Van Nostrand Co INC Princeton New York
235 The Heart of Nepal Duncan Forbes Robert Hale Limited 63 Old Bromptor Road, London
236 The Poetry of Dasham Granth, Dr Dharma Pal Ashta, 1959 Arun Prakashan New Delhi
237 The Decline of Buddhism in India R C Mitra Vishwa Bharati

238 The Study of Critical Situation in Nepal, D R Yami, 1st Edition 1958 Mahabir Singh & Sons, Makhan Tob, Kathmandu (Nepal)

239 Unknown Nepal, R N Bishop, ed by G E Cunning Law London Lusac, 1952

240 Vaishnavism Shavism & other Minor Religions System R G Bhandarkar, ed by Narayan Bapuji, Bhandarkar Institution, Poona, 1929

• • •